पश्चिमी राजनीतिक चिंतन में विषय

बी.ए. (ऑनर्स) राजनीति विज्ञान/बी.ए. (प्रोग्राम)

सेमेस्टर-VII

अनुशासन विशिष्ट कोर पाठ्यक्रम (DSC-19)/DSC

पाठ्यक्रम क्रेडिट-4

यूजीसीएफ-2022 एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार

READING NOTES

विषय-सूची

क्र. सं.	शीर्षक	पृ. सं.
इकाई-I	आधुनिकता और उसके विमर्श: ज्ञानोदय के विचारक के रूप में कांट; तर्क में आस्था; स्वायत्तता; नैतिकता और राजनीति	1-42
इकाई-II	**स्वच्छंदतावादी (रोमांटिक्स)**	
(a)	ज्यां जैक्स रूसो: आधुनिक सभ्यता की आलोचना; असमानता की उत्पत्ति; प्राकृतिक अवस्था और अनुबंध; सामान्य इच्छा; लोकतंत्र और स्वशासन	43-58
(b)	मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट: महिलाएँ और पितृसत्तावाद; भावना और तर्क; कानूनी अधिकार और प्रतिनिधित्व	59-68
इकाई-III	**उदारवादी (जॉन स्टुअर्ट मिल)**	
अध्याय 4	उदारवादी उपयोगितावाद; स्वतंत्रता, मताधिकार और लोकतंत्र का समर्थन; महिलाओं की पराधीनता	69-100
इकाई-IV	**कट्टरपंथी (रैडिकल्स)**	
अध्याय 5	हेगेल का नैतिक जीवन: परिवार, नागरिक समाज और राज्य	101-120
अध्याय 6	कार्ल मार्क्स — ऐतिहासिक भौतिकवाद और मूल्य की अवधारणा	121-135

© दूरस्थ एवं सतत शिक्षा विभाग, कैंपस ऑफ़ ओपन लर्निंग,
स्कूल ऑफ़ ओपन लर्निंग, दिल्ली विश्वविद्यालय

इकाई-I

आधुनिकता और उसके विमर्श: ज्ञानोदय के विचारक के रूप में कांट; तर्क में आस्था; स्वायत्तता; नैतिकता और राजनीति

1.1 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अंत तक विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. **यह स्पष्ट करना कि आधुनिक समाज ने ऐतिहासिक रूप से किस प्रकार आकार लिया**, जिसमें राष्ट्र-राज्यों का उदय, पूँजीवाद, औद्योगीकरण, नगरीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण तथा उपनिवेशवाद का वैश्विक प्रभाव शामिल है।
2. **बहुविध आधुनिकताओं के विचार को समझना**, यह पहचानते हुए कि विभिन्न समाज किसी एक पश्चिमी मॉडल का अनुसरण करने के बजाय आधुनिक परिवर्तन का अनुभव विविध तरीकों से करते हैं।
3. **ज्ञानोदय के मूल मूल्यों का वर्णन करना**, विशेष रूप से तर्क, आलोचनात्मक चिंतन, सार्वजनिक वाद-विवाद और बौद्धिक स्वतंत्रता पर दिए गए बल का।
4. **यह पहचानना कि इमैनुएल कांट आधुनिक नैतिक चिंतन के केंद्र में क्यों हैं**, और यह समझना कि उनके विचार आधुनिकता के सामाजिक परिवर्तनों को स्वायत्तता तथा नैतिक उत्तरदायित्व की एक नई समझ से किस प्रकार जोड़ते हैं।
5. **कांट की प्रमुख नैतिक अवधारणाओं की व्याख्या करना** — शुभ संकल्प (गुड विल), कर्तव्य, नैतिक स्वायत्तता, निरपेक्ष आदेश (कैटेगोरिकल इम्पेरेटिव), सार्वभौमीकरण, तथा व्यक्तियों को स्वयं में साध्य मानने का सिद्धांत।
6. **यह विश्लेषण करना कि कांट नैतिकता को राजनीति से किस प्रकार जोड़ते हैं**, जिसमें सामाजिक अनुबंध, विधिसम्मत स्वतंत्रता, गणतंत्रात्मक शासन, विधि का शासन और तर्क का सार्वजनिक उपयोग शामिल हैं।
7. **कांट के दंड के प्रतिशोधात्मक सिद्धांत को समझना**, जिसमें यह भी शामिल है कि वे इस बात पर क्यों बल देते हैं कि दंड अपराध-दोष पर आधारित होना चाहिए, और वे यह तर्क क्यों देते हैं कि सिद्धांततः हत्या के लिए मृत्युदंड आवश्यक है।
8. **अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर कांट के विचारों की चर्चा करना**, विशेष रूप से स्थायी शांति सुनिश्चित करने के लिए गणतंत्रात्मक संविधानों, राज्यों के एक संघ तथा विश्वनागरिक अधिकारों की आवश्यकता की।

9. **विश्वनागरिक अधिकार (कॉस्मोपॉलिटन राइट) के अर्थ की व्याख्या करना**, विशेष रूप से आतिथ्य के कर्तव्य और औपनिवेशिक प्रभुत्व की कांट द्वारा की गई आलोचना की।
10. **सामाजिक दर्शन पर कांट के चिंतन का परीक्षण करना**, जिसमें परिवार, बाज़ार, धर्म, शिक्षा तथा समाज के भीतर नागरिकों के एक-दूसरे के प्रति नैतिक कर्तव्य शामिल हैं।
11. **कांट के दर्शन की शक्तियों और सीमाओं, दोनों का मूल्यांकन करना**, जैसे उनके नैतिक सिद्धांतों की सार्वभौमिकता तथा उनकी कुछ अनुभवजन्य टिप्पणियों में उपस्थित ऐतिहासिक पूर्वाग्रह।
12. **अध्याय के समग्र तर्क को जोड़कर देखना**, यह समझते हुए कि आधुनिक समाज का ऐतिहासिक उद्भव और कांट का नैतिक-राजनीतिक दर्शन मिलकर आधुनिक परियोजना को किस प्रकार परिभाषित करते हैं: स्वायत्तता, समानता, विधि और तर्कसंगत स्वशासन पर आधारित एक विश्व।

1.2 प्रस्तावना

यह अध्याय एक व्यापक क्रम का अनुसरण करता है: यह आधुनिक समाज के लंबे ऐतिहासिक निर्माण से आरंभ होता है और उन दार्शनिक विचारों पर समाप्त होता है जो आधुनिकता को उसका सबसे गहरा नैतिक अर्थ प्रदान करते हैं। स्टुअर्ट हॉल और ब्रैम गीबेन की पुस्तक *फ़ॉर्मेशन्स ऑफ़ मॉडर्निटी* के आधार पर, यह अध्याय सबसे पहले यह स्पष्ट करता है कि राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति और वैश्विक संबंधों में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों के माध्यम से कई शताब्दियों में आधुनिक विश्व ने किस प्रकार आकार लिया। विद्यार्थियों को राष्ट्र-राज्य के उदय, पूँजीवाद के प्रसार, औद्योगीकरण, नगरीय जीवन, धर्मनिरपेक्षीकरण तथा औपनिवेशिक विस्तार से उत्पन्न वैश्विक पदानुक्रमों से परिचित कराया जाता है। ये रूपांतरण किसी सीधी रेखा में घटित नहीं हुए; वे बहु-कारणात्मक, अंतर्विरोधी थे और विचारों, अर्थों तथा आत्म-व्याख्याओं द्वारा निरंतर आकार लेते रहे — जिससे किसी एक समरूप पश्चिमी मार्ग के बजाय बहुविध आधुनिकताओं का जन्म हुआ। इस सामाजिक आधार से आगे बढ़कर, अध्याय भीतर की ओर ज्ञानोदय की ओर मुड़ता है, जहाँ इमैनुएल कांट जैसे विचारकों ने आधुनिकता की नैतिक और बौद्धिक भावना को अभिव्यक्त किया: अपने स्वयं के तर्क का उपयोग करने का साहस, आलोचनात्मक चिंतन की माँग, और यह विश्वास कि प्रगति विचारों के स्वतंत्र सार्वजनिक आदान-प्रदान पर निर्भर करती है। कांट सामाजिक आधुनिकता और नैतिक आधुनिकता के बीच सेतु बन जाते हैं। इसके बाद अध्याय कांट की नीतिशास्त्र का अन्वेषण करता है और दिखाता है कि उनका स्वायत्तता का विचार — तर्क के माध्यम से स्वयं को नैतिक नियम देना — आधुनिक नैतिक जीवन को किस प्रकार परिभाषित करता है। विद्यार्थी शुभ संकल्प, निरपेक्ष आदेश, सार्वभौमिक और सापेक्ष (हाइपोथेटिकल) सिद्धांतों के बीच अंतर, तथा प्रत्येक मनुष्य को स्वयं में साध्य मानने के विचार जैसी केंद्रीय अवधारणाओं से परिचित होते हैं। यहाँ से चर्चा कांट के राजनीतिक और सामाजिक दर्शन की ओर बढ़ती है, जहाँ वे तर्क देते हैं कि न्यायपूर्ण कानून, गणतंत्रात्मक शासन और तर्क का सार्वजनिक उपयोग प्रत्येक व्यक्ति की

विधिसम्मत स्वतंत्रता को सुरक्षित करते हैं। सामाजिक अनुबंध, दंड, अधिकार, संपत्ति और क्रांति की सीमाओं पर कांट का चिंतन यह दर्शाता है कि स्वतंत्रता किस प्रकार मात्र एक आदर्श न रहकर एक राजनीतिक संरचना बन जाती है। अंत में, अध्याय कांट की वैश्विक दृष्टि के साथ समाप्त होता है — राज्यों के एक संघ, विश्वनागरिक आतिथ्य और शांति की ओर क्रमिक प्रगति के पक्ष में उनके तर्क — ऐसे विचार जो आधुनिक मानवाधिकारों और अंतरराष्ट्रीय कानून का पूर्वानुमान करते हैं। समग्र रूप से, यह अध्याय विद्यार्थियों को दिखाता है कि आधुनिक समाज का बाहरी निर्माण और तर्क का आंतरिक प्राधिकार एक ही कहानी के अंग हैं: आधुनिकता एक नैतिक क्रांति द्वारा समर्थित ऐतिहासिक रूपांतरण है, जिसमें मनुष्य स्वतंत्र रूप से सोचना, स्वायत्त रूप से जीना और राजनीतिक जीवन को उन सिद्धांतों पर संगठित करना सीखते हैं जिन्हें वे तर्कसंगत रूप से स्वयं के लिए चाह सकते हैं।

1.3 आधुनिकता को समझना

"आधुनिक" शब्द का प्रयोग रोज़मर्रा की बातचीत में बहुत अधिक होता है - अधिकांश लोग इसका प्रयोग किसी नई या वर्तमान वस्तु के अर्थ में करते हैं। परंतु सामाजिक सिद्धांत में इसका अर्थ कुछ अधिक विशिष्ट है। आधुनिकता एक विशेष प्रकार के समाज की ओर संकेत करती है जिसने अनेक वर्षों के परिवर्तनों के माध्यम से आकार लिया। इस समाज ने तर्क और विज्ञान में अपनी आस्था रखी, धार्मिक प्राधिकार से हटकर धर्मनिरपेक्ष सत्ता की ओर बढ़ा, और वस्तुओं के उत्पादन के तरीकों को संगठित किया। अपनी पुस्तक फ़ॉर्मेशन्स ऑफ़ मॉडर्निटी में स्टुअर्ट हॉल और ब्रैम गीबेन सुझाव देते हैं कि हम आधुनिकता को एक भिन्न दृष्टि से देखें। उनका कहना है कि हमें इसे ऐसी चीज़ के रूप में नहीं देखना चाहिए जो पूरी होकर समाप्त हो चुकी है, बल्कि एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखना चाहिए - मानो यह इस बात की एक निरंतर कहानी हो कि समाज कैसे अस्तित्व में आए और कैसे वे लगातार बदलते रहते हैं।

अधिकांश इतिहास-पुस्तकें 1800 के दशक की औद्योगिक क्रांति को उस क्षण के रूप में इंगित करती हैं जब आधुनिकता आरंभ हुई। परंतु स्टुअर्ट हॉल का मानना है कि हमें और पीछे देखने की आवश्यकता है - उस समय तक, जब 1400 के दशक के यूरोप में सामंतवाद बिखरने लगा था। यही वह समय था जब मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्थाएँ विकसित होने लगीं, देश उस रूप में बनने लगे जैसा हम उन्हें आज जानते हैं, और लोग हर विषय पर कम धार्मिक दृष्टि से सोचने लगे। जब हम इन परिवर्तनों पर पीछे मुड़कर दृष्टि डालते हैं, तो यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि ये न तो सरल थे और न ही पूर्वानुमेय। इन्होंने किसी एक मार्ग का अनुसरण नहीं किया, और यूरोप ही एकमात्र स्थान नहीं था जहाँ ये घटित हुए। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों ने इन बदलावों का अनुभव अपने-अपने अनूठे ढंग से किया - कुछ ने तेज़ी से, कुछ ने धीरे-धीरे, और कुछ ने बिल्कुल भिन्न क्रम में। स्टुअर्ट हॉल और ब्रैम गीबेन फ़ॉर्मेशन्स ऑफ़ मॉडर्निटी में इस जटिल इतिहास को दो दृष्टिकोणों से देखते हैं, और यह समझने का प्रयास करते हैं कि विभिन्न समाज अपने-अपने विशिष्ट तरीकों से कैसे विकसित हुए। पहला, वे यह रेखांकित करते हैं कि समाज पारंपरिक से आधुनिक कैसे बने, कुछ-कुछ ऐतिहासिक बिंदुओं को जोड़ने की तरह। दूसरा, वे और गहराई में जाकर यह समझाते

हैं कि ये परिवर्तन उसी तरह क्यों हुए जिस तरह वे हुए, और इन सभी परिवर्तनों ने एक-दूसरे को किस प्रकार प्रभावित किया।

समाज के बारे में पूर्ववर्ती सिद्धांतों ने कहानी के महत्त्वपूर्ण भागों को अनदेखा कर दिया। स्टुअर्ट हॉल ने देखा कि लोग प्रायः दो में से एक गलती करते थे। कुछ **एक-कारणवादी (मोनो-कॉज़ल)** थे - वे ऐसी बातें कहते थे कि "सब कुछ प्रौद्योगिकी पर निर्भर है" या "यह केवल पैसे का मामला है" (यह कहने के समान कि कार केवल अपने इंजन के कारण चलती है, बाकी सब कुछ भूलकर)। अन्य **उद्देश्यवादी (टेलीओलॉजिकल)** थे, जो सोचते थे कि प्रत्येक समाज स्वाभाविक रूप से पश्चिमी देशों जैसा बन जाएगा। लेखकों ने चीज़ों को देखने का एक बेहतर तरीका खोजा, जिसे वे **बहु-कारणात्मक और संबंधात्मक दृष्टिकोण** कहते हैं। समाज कुछ-कुछ एक विद्यालय जैसा है - आपके पास शिक्षक, विद्यार्थी, संसाधन और सामुदायिक सहयोग होते हैं, जो सभी अलग-अलग ढंग से आगे बढ़ते हैं, परंतु प्रत्येक इस बात को प्रभावित करता है कि विद्यार्थी कितनी अच्छी तरह सीखते हैं। एक **अंतर्विषयक दृष्टि** का उपयोग हमें पूरी तस्वीर देखने में सहायता करता है - हम परीक्षा के अंकों के साथ-साथ विद्यालय की भावना को भी देखते हैं, यह भी देखते हैं कि शिक्षण-पद्धतियाँ कैसे बदलीं, और आज कुछ विशेष तरीके सबसे अच्छा काम क्यों करते हैं। सब कुछ आपस में जुड़ा है - बेहतर संसाधन शिक्षकों को पढ़ाने में मदद करते हैं, जिससे विद्यार्थियों को सीखने में मदद मिलती है, जिससे सामुदायिक समर्थन बढ़ता है, जो और अधिक संसाधन लाता है। समाज में भी, ठीक विद्यालयों की तरह, हर चीज़ हर दूसरी चीज़ को प्रभावित करती है।

आधुनिक समाज ने चार प्रमुख बदलावों के माध्यम से आकार लिया, जिन्होंने मिलकर काम किया। राजनीतिक परिवर्तन हमें राष्ट्र-राज्य तक लाया, जहाँ सरकारों ने कानून बनाए और नागरिकता को परिभाषित किया, तथा धार्मिक नियंत्रण के बिना एक केंद्रीय सत्ता का निर्माण किया। अर्थशास्त्र में, पूँजीवाद अपने बाज़ारों और मज़दूरी-श्रम के साथ उभरा, और एक ऐसी व्यवस्था बनी जो मुनाफ़े के माध्यम से निरंतर बढ़ती रह सकती थी। सामाजिक रूपांतरण ने वर्ग, लिंग और समुदायों के कार्य करने के ढंग को बदल दिया, क्योंकि उद्योग ने लोगों की भूमिकाओं और संबंधों को नया रूप दिया। सांस्कृतिक बदलावों ने लोगों को धार्मिक चिंतन से तर्कसंगत चिंतन की ओर अग्रसर किया, जिससे अधिक व्यक्ति-केंद्रित और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित हुए।

ये चारों प्रक्रियाएँ कार्य करने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर हैं:

- राज्य वे स्थिर परिस्थितियाँ निर्मित करता है जो अर्थव्यवस्था को कार्य करने देती हैं
- आर्थिक परिवर्तन इस बात को प्रभावित करते हैं कि लोग एक-दूसरे से किस प्रकार संबंध रखते हैं
- सांस्कृतिक विश्वास और मूल्य लोगों को राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं को स्वीकार करने में सहायता करते हैं

आधुनिकता को जो चीज़ अनूठा बनाती है, वह यह नहीं है कि किसी एक प्रक्रिया का प्रभुत्व रहा - बल्कि यह है कि इन सभी परिवर्तनों ने एक-दूसरे को किस प्रकार प्रभावित और सुदृढ़ किया।

आज के समाजों में कई प्रमुख विशेषताएँ समान हैं जो उन्हें पूर्ववर्ती कालों से अलग करती हैं। राजनीतिक सत्ता अब धार्मिक प्राधिकार के बजाय कानूनों और समझौतों से उत्पन्न होती है। अर्थव्यवस्था क्रय-विक्रय पर चलती है, जिसमें लोग निजी संपत्ति के स्वामी होते हैं और व्यवसाय मुनाफ़ा कमाने के लिए कार्य करते हैं। सामाजिक जीवन भी बदल गया है - हम विभिन्न सामाजिक वर्ग, लिंग के आधार पर विभाजित काम, और शहरों में रहने वाले अधिक लोग देखते हैं। लोगों के विश्वास धार्मिक परंपराओं की तुलना में तथ्यों और व्यक्तिगत अधिकारों को महत्त्व देने की ओर स्थानांतरित हो गए हैं। ज्ञान अब इस विचार पर आधारित है कि मानवीय तर्क समस्याओं का समाधान कर सकता है और प्रगति ला सकता है। और लोग राष्ट्रों का अंग होने की अनुभूति, साझा संस्कृतियों और स्वयं को देखने के साझा तरीकों के माध्यम से अपनी पहचान बनाते हैं।

इतिहास को देखना हमें आज के विश्व को बेहतर ढंग से समझने में सहायता करता है - हॉल हमें यही बताते हैं। परिवर्तन किस प्रकार हुए, इसकी बड़ी तस्वीर देखने के लिए हमें अलग-अलग घटनाओं से आगे देखने की आवश्यकता है। हमारे विश्व का प्रत्येक भाग अपनी गति से विकसित हुआ। **राजनीतिक संप्रभुता** का मार्ग बहुत पहले तब आरंभ हुआ जब यूरोप पर राजा और रानियाँ शासन करते थे। बाद में, 1700 के दशक में **पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ** स्थापित हुईं, जो काम और व्यापार के नए तरीके लेकर आईं। 1800 के दशक तक, जब कारखाने शहरों में फैल गए, तो **औद्योगिक वर्ग** उभर आए। इस बीच, **सांस्कृतिक धर्मनिरपेक्षीकरण धर्मसुधार (रिफ़ॉर्मेशन)** के समय से धीरे-धीरे बढ़ रहा था, जब लोगों ने चर्च की सत्ता पर प्रश्न उठाने आरंभ किए। याद रखने योग्य मुख्य बात क्या है? हमारा आधुनिक विश्व रातों-रात नहीं बना - ये परिवर्तन अनेक वर्षों में आपस में घुले-मिले, और प्रत्येक ने दूसरों को प्रभावित किया।

समाज किस प्रकार बदलते हैं, इस संबंध में पुराने विचार पूरी तरह सही नहीं थे। लोग सोचा करते थे कि प्रत्येक समाज पुराने तरीकों से नए तरीकों तक एक ही मार्ग का अनुसरण करेगा, मानो सभी सीढ़ियों के एक ही क्रम पर चढ़ रहे हों। परंतु हॉल इस सरल दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करते। परिवर्तन इतना सुव्यवस्थित और साफ़-सुथरा नहीं होता - यह उलझा हुआ होता है और अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग ढंग से घटित होता है। जापान, भारत और यूरोप को देखिए। प्रत्येक अपने ढंग से आधुनिक बना क्योंकि प्रत्येक ने राजनीति, धन और संस्कृति को अलग-अलग ढंग से मिलाया। मानो प्रत्येक स्थान ने अपनी कहानी स्वयं लिखी हो। कभी-कभी इन परिवर्तनों ने स्थितियों को बेहतर बनाया, तो कभी-कभी नई समस्याएँ उत्पन्न कीं। बस यही इसका स्वभाव है - प्रगति अपने साथ जटिलताएँ लाती है, और प्रत्येक समाज उनसे अलग-अलग ढंग से निपटता है।

अपने आधुनिक विश्व को देखने पर हम पाते हैं कि यह कोई एक मार्ग नहीं है जिसका अनुसरण प्रत्येक समाज करता है। यहाँ तक कि यूरोप के भीतर भी, जहाँ बहुत-से लोग दावा करते हैं कि आधुनिक विचारों की शुरुआत हुई, हमें

विचित्र संयोजन मिलते हैं - वैज्ञानिक प्रगति औपनिवेशिक नियंत्रण के साथ-साथ विद्यमान रही, नई स्वतंत्रताएँ दूसरों पर प्रभुत्व जमाने के तरीकों के साथ मिश्रित रहीं। हॉल हमें इस विषय पर अलग ढंग से सोचने की चुनौती देते हैं। हर चीज़ को यूरोपीय दृष्टि से देखने या यह सोचने के बजाय कि सब कुछ धन से जुड़ा है, वे हमें दिखाते हैं कि बहुल इतिहासों ने किस प्रकार बहुविध आधुनिकताओं का निर्माण किया। विभिन्न समाज - चाहे एशिया में हों, यूरोप में हों या कहीं और - अपने-अपने ढंग से विकसित हुए, फिर भी एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे। कुछ धनी हुए जबकि अन्य संघर्ष करते रहे, कुछ ने स्वतंत्रताएँ प्राप्त कीं जबकि अन्य को नए प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा। आधुनिक बनने के ये भिन्न मार्ग अलगाव में घटित नहीं हुए - वे सभी परस्पर जुड़े हुए थे, और उन्होंने आधुनिक होने के अर्थ के विविध रूपों का निर्माण किया।

1.4 *फ़ॉर्मेशन्स ऑफ़ मॉडर्निटी* की मुख्य सैद्धांतिक अवधारणाएँ

बहु-कारणात्मकता

आधुनिक समाज किसी एक स्रोत से उत्पन्न नहीं हुआ - हम केवल **अर्थशास्त्र** या **प्रौद्योगिकी** की ओर इशारा करके यह नहीं कह सकते कि "यही इसका कारण था।" इसके विपरीत, विभिन्न प्रक्रियाओं ने सैकड़ों वर्षों तक मिलकर कार्य किया। **राजनीतिक** परिवर्तनों (जैसे राष्ट्र स्वयं का शासन कैसे करते हैं), **आर्थिक** बदलावों (हम व्यापार और काम कैसे करते हैं, इसमें), **सामाजिक** रूपांतरणों (लोग एक-दूसरे से कैसे संबंध रखते हैं, इसमें), और **सांस्कृतिक** विकासों (लोग किन बातों में विश्वास करते हैं, इसमें) — सभी ने अपनी-अपनी भूमिका निभाई। ये प्रक्रियाएँ एक ही गति से आगे नहीं बढ़ीं - कभी राजनीति तेज़ी से आगे निकल गई जबकि संस्कृति पीछे रह गई, जिससे तनाव और संघर्ष उत्पन्न हुए। इसीलिए आधुनिकता को समझने के लिए हमें विभिन्न दृष्टिकोणों का उपयोग करने की आवश्यकता है। हमें यह देखना होगा कि ये प्रक्रियाएँ आपस में कैसे जुड़ीं, एक-दूसरे को कैसे प्रभावित किया, और समय के साथ कैसे बदलीं। अध्ययन का कोई एक क्षेत्र पूरी कहानी नहीं बता सकता - यह समझने के लिए कि हम यहाँ तक कैसे पहुँचे, हमें उन सभी को एक साथ लाना होगा।

चार प्रमुख प्रक्रियाएँ

जब हम यह देखते हैं कि हमारे आधुनिक विश्व को किसने आकार दिया, तो हमें चार मुख्य शक्तियाँ मिलकर कार्य करती दिखाई देती हैं। **राजनीतिक**, **आर्थिक**, **सामाजिक** और **सांस्कृतिक** प्रक्रियाएँ परिवर्तन को आगे बढ़ाने वाले इंजनों की तरह कार्य करती रहीं। कल्पना कीजिए कि सरकारें, बाज़ार, समुदाय और विश्वास किस प्रकार एक-दूसरे को धकेलते और खींचते हैं। नए कानून इस बात को प्रभावित करते हैं कि लोग व्यवसाय कैसे करते हैं, जिससे समुदायों के कार्य करने का ढंग बदलता है, जिससे लोगों के विश्वास बदलते हैं - और फिर वे विश्वास नए कानूनों को प्रभावित करते हैं। इनमें से कोई भी शक्ति अकेले कार्य नहीं करती - सरकार को कार्य करने के लिए जन-समर्थन चाहिए, व्यवसायों को संचालन के लिए स्थिर नियम चाहिए, समुदायों को एकजुट रहने के लिए साझा मूल्य चाहिए।

प्रत्येक प्रक्रिया को सार्थक बने रहने और चलते रहने के लिए दूसरों की आवश्यकता होती है। मिलकर, ये जीवन के उस जटिल मिश्रण का निर्माण करती हैं जिसे हम आज देखते हैं।

निर्माण बनाम इतिहास

जब हम इस बारे में बात करते हैं कि आधुनिक समाज कैसे अस्तित्व में आया, तो "निर्माण (फ़ॉर्मेशन)" शब्द हमें कुछ महत्त्वपूर्ण बताता है। यह केवल इस बारे में नहीं है कि अतीत में क्या हुआ - यह सतत परिवर्तन के बारे में है। जहाँ इतिहास हमें बताता है कि क्या घटित हुआ, वहीं निर्माण हमें दिखाता है कि चीज़ें किस प्रकार निरंतर विकसित होती रहती हैं। आधुनिक समाज कोई ऐसी चीज़ नहीं था जो एक दिन पूरी तरह बनकर अचानक प्रकट हो गई, जैसे हमारे दरवाज़े पर पहुँचाया गया कोई पैकेट। बल्कि यह एक नदी की तरह है जो निरंतर बहती रहती है और अपना मार्ग बदलती रहती है। हमारी सामाजिक संरचनाएँ - हम कैसे शासन करते हैं, कैसे काम करते हैं और कैसे साथ रहते हैं - निरंतर बदलती और अनुकूलित होती रहती हैं। ये पिछले परिवर्तनों से आकार लेती हैं, परंतु एक स्थान पर स्थिर नहीं रहतीं। समाज के इस निरंतर पुनर्निर्माण का अर्थ है कि आधुनिकता पूर्ण नहीं हुई है - यह अभी भी बन रही है, अभी भी बदल रही है, अभी भी कुछ नया बनती जा रही है।

उद्देश्यवाद-विरोधी (एंटी-टेलीओलॉजिकल) इतिहास

इतिहास किसी पूर्वनिर्धारित मार्ग का अनुसरण नहीं करता, जैसा कि कुछ लोग पहले सोचते थे। **सामंतवाद** से आधुनिक काल की ओर बदलाव कोई सीधी सड़क नहीं थी जिस पर प्रत्येक समाज को चलना पड़ा। वास्तव में जो हुआ वह अधिक उलझा हुआ और कम पूर्वानुमेय था। मानवीय चुनावों, अप्रत्याशित घटनाओं और सामाजिक संघर्षों - सभी ने यह आकार देने में अपनी भूमिका निभाई कि विभिन्न समाज किस प्रकार बदले। कुछ परिवर्तन अच्छे सिद्ध हुए, कुछ ने समस्याएँ उत्पन्न कीं, और बहुत-से परिवर्तन योजना के बजाय संयोग से हुए। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें दिखाता है कि पश्चिमी समाजों का आधुनिक बनने का मार्ग ही एकमात्र "सही" मार्ग नहीं है। विभिन्न समाजों ने आधुनिकता तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग खोजे, और प्रत्येक मार्ग उनकी अपनी परिस्थितियों और चुनावों से आकार लेता रहा। **उद्देश्यवाद-विरोधी** होने का अर्थ यह समझना है कि इतिहास किसी एक निश्चित लक्ष्य की ओर एक सरल यात्रा नहीं है - यह उससे कहीं अधिक जटिल और खुला हुआ है।

विमर्शात्मक मोड़ (डिस्कर्सिव टर्न)

हॉल ने समाज के प्रति हमारी समझ में वास्तव में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण जोड़ा। उन्होंने दिखाया कि हमारा विश्व केवल भौतिक वस्तुओं के बारे में नहीं है - यह **विमर्श (डिस्कोर्स)** द्वारा भी आकार लेता है, अर्थात् हम चीज़ों के बारे में कैसे बात करते हैं और उन्हें कैसे समझते हैं। जब लोग **संपत्ति**, **मूल्य**, **विज्ञान** या **प्रगति** जैसे विचारों पर चर्चा करते हैं, तो वे केवल यथार्थ का वर्णन नहीं कर रहे होते - वे उसके निर्माण में सहायता कर रहे होते हैं। **संस्कृति** केवल ऐसी चीज़ नहीं है जो घटना के बाद घटित होती है - यह सक्रिय रूप से यह आकार देती है कि राजनीति और अर्थशास्त्र किस प्रकार कार्य करते हैं।

सोचिए कि आधुनिक समाज स्वयं को किस प्रकार देखता है - आगे बढ़ने के बारे में, समस्याओं के समाधान के लिए तर्क के उपयोग के बारे में, और किसे सभ्य माना जाए इसके बारे में हमारे विचार। ये केवल वर्णन नहीं हैं - ये सोचने के शक्तिशाली तरीके हैं जो हमारे कार्य करने और निर्णय लेने के ढंग को प्रभावित करते हैं। यहाँ तक कि आधुनिक होने के बारे में हमारे सोचने का ढंग भी प्रगति और सभ्यता से संबंधित इन्हीं साझा विचारों से आकार लेता है।

आत्मचिंतनशीलता (रिफ़्लेक्सिविटी) और आख्यान

जब हम यह समझाने का प्रयास करते हैं कि समाज कैसे कार्य करता है, तो वास्तव में हम अपने स्वयं के दृष्टिकोण से एक कहानी सुना रहे होते हैं। यहाँ तक कि जब विद्वान चीज़ों का अध्ययन और विश्लेषण करते हैं, तब भी वे अपनी समझ के माध्यम से अर्थों का निर्माण कर रहे होते हैं। **आत्मचिंतनशील** होने का अर्थ है इस बारे में ईमानदार होना - यह स्वीकार करना कि हम उस संवाद का हिस्सा हैं जिसका हम अध्ययन कर रहे हैं, केवल बाहर से देखने वाले नहीं। सोचिए कि हम स्वयं उन्हीं चीज़ों में किस प्रकार सम्मिलित हैं जिन्हें हम समझने का प्रयास कर रहे हैं। परंतु हॉल यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं - केवल इसलिए कि हम कहानी का हिस्सा हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि सभी व्याख्याएँ समान रूप से अच्छी हैं। चीज़ों को समझने के कुछ तरीके अधिक तर्कसंगत होते हैं और उस बात से बेहतर मेल खाते हैं जिसे हम प्रमाणित कर सकते हैं। यह मानो कहानीकार और कहानी का एक पात्र, दोनों एक साथ होने जैसा है, जबकि हम फिर भी उसे यथासंभव सटीक ढंग से कहने का प्रयास कर रहे होते हैं।

आधुनिकता का अंतर्विरोधी तर्क

आधुनिक समाज का यह विचित्र दोहरा व्यक्तित्व है जिसे समझना वास्तव में महत्त्वपूर्ण है। आगे बढ़ाया गया प्रत्येक कदम अपने साथ एक कदम पीछे भी लाता प्रतीत होता है। **ज्ञानोदय** नया ज्ञान लेकर आया, परंतु साथ ही लोगों को नियंत्रित करने के नए तरीके भी लाया। समाज में **तर्कसंगत व्यवस्था** के निर्माण से ऐसे कठोर नियम और कागज़ी कार्यवाही उत्पन्न हुई जो हमें जकड़ सकती है। **औद्योगिक प्रगति** ने जीवन को आसान बनाया, परंतु हमारे ग्रह को हानि पहुँचाई। यही बात आधुनिक जीवन को इतना जटिल बनाती है - यह हमें एक ही समय में मुक्त भी करता है और सीमित भी। किसी ऐसे व्यक्ति की कल्पना कीजिए जो ज़ंजीरें घसीटते हुए आगे चल रहा हो - हमने नई स्वतंत्रताएँ प्राप्त की हैं, परंतु नई समस्याएँ भी उत्पन्न की हैं। प्राचीन रोमन मिथकों के दो मुख वाले देवता जानूस की तरह, आधुनिक समाज अपनी समस्याओं की छाया साथ लिए हुए एक उज्ज्वल भविष्य की ओर देखता है। हम अच्छे को बुरे से अलग नहीं कर सकते - वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

"पश्चिम" का सांस्कृतिक निर्माण

हॉल इस बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात उजागर करते हैं कि यूरोप ने स्वयं को आधुनिक के रूप में कैसे देखना आरंभ किया। पश्चिम ने अपनी पहचान अकेले नहीं गढ़ी - उसने इसे बाकी सभी से अपनी तुलना करके निर्मित किया। **उपनिवेशवाद** और विश्व भर में विस्तार के माध्यम से, पश्चिमी समाजों ने एक विशेष चित्र प्रस्तुत किया। उन्होंने

अन्य समाजों को पिछड़ा बताकर स्वयं को **तर्कसंगत**, **सभ्य** और **प्रगतिशील** के रूप में प्रस्तुत किया। मानो स्वयं को उन्नत दिखाने के लिए उन्हें दूसरों को आदिम दिखाने की आवश्यकता थी। यह केवल यूरोप के भीतर हो रहे परिवर्तनों के बारे में नहीं था - यह पूरे विश्व में फैले शक्ति-संबंधों के बारे में था। पश्चिम ने स्वयं को जिस प्रकार देखा और दूसरों को जिस प्रकार चित्रित किया, उसने ऐसे प्रतिरूप बनाए जिन्हें हम आज भी **वैश्वीकरण** में देखते हैं। इसलिए आधुनिक समाज केवल इस बारे में नहीं है कि यूरोप में क्या हुआ - यह इस बारे में है कि विश्व के विभिन्न भाग एक-दूसरे से किस प्रकार संबंधित हुए।

सैद्धांतिक ढाँचे का सारांश

अवधारणा	मूल अंतर्दृष्टि	किसे चुनौती देती है
बहु-कारणात्मकता	आधुनिकता परस्पर क्रियाशील प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती है	आर्थिक या एक-कारणवादी दृष्टिकोण
चार प्रक्रियाएँ	राजनीतिक + आर्थिक + सामाजिक + सांस्कृतिक मिलकर समाज को आकार देती हैं	एक-आयामी विश्लेषण
निर्माण	इतिहास का प्रक्रियात्मक, गतिशील दृष्टिकोण	"आधुनिक विश्व" की स्थिर धारणाएँ
उद्देश्यवाद-विरोध	आधुनिकता तक पहुँचने का कोई अनिवार्य मार्ग नहीं	रैखिक आधुनिकीकरण सिद्धांत
विमर्शात्मक मोड़	भाषा और अर्थ सामाजिक यथार्थ का निर्माण करते हैं	केवल भौतिकतावादी दृष्टिकोण
आत्मचिंतनशीलता	ज्ञान व्याख्यात्मक और संदर्भ-स्थित होता है	पूर्ण वस्तुनिष्ठता के दावे
अंतर्विरोध	प्रगति और संकट साथ-साथ विद्यमान रहते हैं	विशुद्ध आशावादी ज्ञानोदय विचार
पश्चिम और शेष विश्व	आधुनिकता वैश्विक "अन्यीकरण" के माध्यम से निर्मित हुई	विकास की यूरोकेंद्रित संकीर्णता

मूल संदेश

आधुनिकता एक **बहुस्तरीय, अर्थपूर्ण निर्माण** है जिसे ऐतिहासिक, संरचनात्मक और विमर्शात्मक रूप से समझा जाना चाहिए।

यह **रूपांतरणों** का एक समूह (समाज कैसे बदले) और एक **सांस्कृतिक कहानी** (उन्होंने उस परिवर्तन की व्याख्या कैसे की), दोनों है।

आधुनिकता का अध्ययन करना यह अध्ययन करना है कि मनुष्यों ने स्वयं को *आधुनिक* के रूप में देखना कैसे सीखा — प्रगति और तर्क के माध्यम से, परंतु प्रभुत्व और बहिष्करण के माध्यम से भी।

1.5 आधुनिक निर्माण के आयाम

बौद्धिक आधार: ज्ञानोदय और आधुनिक दृष्टिकोण का जन्म

आधुनिक चिंतन की शुरुआत विश्व को देखने के लोगों के ढंग में एक पूर्ण बदलाव के साथ हुई। 1700 के दशक के यूरोप में **ज्ञानोदय** ने धार्मिक प्राधिकार पर आधारित पुराने विचारों से एक विच्छेद को चिह्नित किया। **मॉन्टेस्क्यू**, **दिदरो**, **रूसो**, **ह्यूम**, **स्मिथ** और **वॉल्टेयर** जैसे प्रमुख विचारकों ने समाज को समझने और सुधारने के लिए **तर्क** और **विज्ञान** के उपयोग पर बल दिया। उन्होंने कुछ नया प्रस्तुत किया– यह विचार कि हम मानवीय व्यवहार और सामाजिक संस्थाओं का एक व्यवस्थित ढंग से अध्ययन कर सकते हैं। तर्कसंगत चिंतन पर इस बल ने **सामाजिक विज्ञानों** की नींव रखी और स्वतंत्रता तथा समानता संबंधी विचारों पर आधारित राजनीतिक परिवर्तनों को प्रेरित किया। परंतु सब कुछ सहज नहीं था। उस समय भी लोगों ने शुद्ध तर्क और मानवीय भावनाओं के बीच एक तनाव को देखा, जो बाद में इस रूप में सामने आया कि **स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज़्म)** ने शुष्क **तर्कवाद** का किस प्रकार प्रतिरोध किया। बड़ा परिवर्तन यह विश्वास था कि मनुष्य अपने विश्व को समझने और उसे नया रूप देने के लिए तर्क का उपयोग कर सकते हैं।

राजनीतिक रूपांतरण: आधुनिक राज्य का उदय

नए विचारों के प्रसार के साथ स्वयं पर शासन करने का हमारा तरीका पूरी तरह बदल गया। पुरानी व्यवस्थाएँ बिखर गईं– अपने सामंतों और किसानों वाला **सामंतवाद** क्षीण हो गया, और चर्च की सत्ता पर पकड़ ढीली पड़ गई। उनके स्थान पर हमें कुछ नया मिला: स्पष्ट सीमाओं वाले राज्य, जो धार्मिक नियमों के बजाय कानूनों द्वारा संचालित थे। ये नए राज्य युद्ध, कर-संग्रह और नियंत्रण की संगठित व्यवस्थाओं के निर्माण के माध्यम से अधिक शक्तिशाली होते गए। बड़े विचारकों ने इन परिवर्तनों को आकार दिया - **हॉब्स** ने सत्ता के बारे में लिखा, **लॉक** ने लोगों के अधिकारों का अन्वेषण किया, और **रूसो** ने यह प्रश्न उठाया कि शासन किसे करना चाहिए। बाद में, **मिल** ने स्वतंत्रता पर विचार किया, **मार्क्स** ने पूरी व्यवस्था को चुनौती दी, और **वेबर** ने अध्ययन किया कि आधुनिक प्राधिकार कैसे कार्य करता है।

1800 के दशक तक, **राष्ट्र-राज्य** समाज को संगठित करने का मुख्य तरीका बन गया। इसने व्यवस्था बनाए रखने और लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करने का वचन दिया, परंतु इससे बड़े युद्ध और साम्राज्य-निर्माण भी हुए। इस नई राजनीतिक व्यवस्था ने अच्छाई और बुराई, दोनों दीं - इसने हमें नागरिकता के अधिकार और साझा पहचान दी, परंतु साथ ही ऐसी शक्तिशाली नौकरशाहियाँ भी बनाईं जो लोगों के जीवन को नए तरीकों से नियंत्रित कर सकती थीं।

आर्थिक रूपांतरण: आधुनिक अर्थव्यवस्था का निर्माण

राजनीति के बदलने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था ऐसे ढंग से रूपांतरित हुई जैसा पहले कभी किसी ने नहीं देखा था। 1700 और 1800 के दशकों के दौरान, यूरोप ने **वाणिज्य**, **बाज़ारों** और **उद्योग** को कुछ नए रूप में विकसित होते देखा– अपने स्वयं के नियमों वाला एक पृथक आर्थिक संसार। यह उन पुराने दिनों जैसा नहीं था जब धर्म और नैतिकता क्रय-विक्रय को नियंत्रित करते थे। इसके स्थान पर, **मुनाफ़ा**, **दक्षता** और **प्रतिस्पर्धा** नई प्रेरक शक्तियाँ बन गईं। आधुनिक **पूँजीवाद** का मार्ग कृषि और व्यापार में परिवर्तनों से आरंभ हुआ, और फिर औद्योगिक विकास के साथ तेज़ी से विस्तृत हुआ। **एडम स्मिथ** ने एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था का वर्णन किया जिसमें व्यक्तिगत लाभ और स्वतंत्रता स्वाभाविक रूप से धन का सृजन करेंगे। उनका मानना था कि मुक्त बाज़ारों में व्यक्तिगत चुनाव सभी को लाभ पहुँचाएँगे। परंतु अन्य लोगों ने इसमें समस्याएँ देखीं - नई व्यवस्था ने समृद्धि और निर्धनता, विकास के दौर और विनाशकारी मंदी, दोनों को जन्म दिया। इस नई आर्थिक व्यवस्था ने यह बदल दिया कि लोग कैसे काम करते थे, वस्तुओं का मूल्य क्या था, और धन का सृजन कैसे होता था। यह केवल धन के बारे में नहीं था - यह बाज़ारों और मुनाफ़े के इर्द-गिर्द समाज को संगठित करने का एक बिल्कुल नया तरीका था।

सामाजिक रूपांतरण: वर्ग, लिंग और दैनिक जीवन

राजनीतिक और आर्थिक उथल-पुथल ने समाज के कार्य करने के ढंग को पूरी तरह बदल दिया। **औद्योगीकरण** ने बड़ी संख्या में लोगों को शहरों की ओर खींचा, और ऐसे नए सामाजिक समूह बनाए जो पहले कभी नहीं देखे गए थे - व्यवसायों के स्वामी **बुर्जुआ वर्ग**, कारखानों में श्रम करने वाला **श्रमिक वर्ग**, और इन दोनों के बीच बढ़ता हुआ **मध्यम वर्ग**। काम के बदलने के साथ नए विभाजन प्रकट हुए। **पूँजी** और **श्रम** अलग हो गए, जबकि पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाएँ अधिक कठोर हो गईं। पुरुषों का सार्वजनिक जीवन और काम पर प्रभुत्व रहा, जबकि महिलाओं को घर और पारिवारिक जीवन की ओर धकेल दिया गया। इन परिवर्तनों को बिना चुनौती के स्वीकार नहीं किया गया – **नारीवादी** आंदोलनों ने महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष किया, जबकि **समाजवादी** आंदोलनों ने वर्गीय असमानता का प्रतिरोध किया। आधुनिक समाज ने एक विचित्र मिश्रण बनाया– लोग जीवन में आगे बढ़ सकते थे, परंतु उन्हें नियंत्रण के नए रूपों का सामना करना पड़ा। उनके पास अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी, परंतु उन्हें कठोर सामाजिक नियमों से भी जूझना पड़ा। शहरों, कारखानों और कार्यालयों ने जीने, काम करने और एक-दूसरे से संबंध रखने के नए तरीके बनाए।

सांस्कृतिक रूपांतरण: धर्मनिरपेक्षीकरण, तर्कसंगतीकरण और अर्थ की खोज

आधुनिक समाज ने केवल राजनीति और अर्थशास्त्र से भी गहरे परिवर्तन किए - इसने लोगों के अपने विश्व को समझने के ढंग को रूपांतरित कर दिया। जैसे-जैसे **धार्मिक प्राधिकार** कमज़ोर हुआ, सोचने के नए तरीकों ने स्थान ले लिया। **धर्मनिरपेक्ष नैतिकता** ने धार्मिक नियमों का स्थान लिया, जबकि **कला**, **दर्शन** और **विज्ञान** ने मानवीय क्षमता के बारे में नए विचारों का अन्वेषण किया। **मैक्स वेबर** ने इस बदलाव को **तर्कसंगतीकरण (रैशनलाइज़ेशन)**

कहा - पुराने विश्वासों ने गणनात्मक चिंतन और संगठित व्यवस्थाओं के लिए स्थान छोड़ दिया। परंतु प्रगति की ओर यह यात्रा सरल नहीं थी। लोगों ने स्वयं को एक-दूसरे से कटा हुआ अनुभव किया (**अलगाव**), उद्देश्य खोजने के लिए संघर्ष किया, और नए मानसिक दबावों का सामना किया। **फ़्रायड** ने बाद में इन संघर्षों को आधुनिक सभ्यता के **असंतोष (डिसकंटेंट्स)** के रूप में वर्णित किया - वह मूल्य जो हम प्रगति के लिए चुकाते हैं। आधुनिक संस्कृति दो छोरों के बीच झूलती रहती है: तर्क की उपलब्धियों का उत्सव मनाना, और साथ ही गहरे आध्यात्मिक अर्थ के लिए लालायित रहना। हमने नया ज्ञान प्राप्त किया परंतु पुरानी निश्चितताएँ खो दीं, जिससे प्रगति और जो हम पीछे छोड़ आए, उसके बीच एक निरंतर तनाव बना रहता है।

वैश्विक मुठभेड़ें: पश्चिम, शेष विश्व और एक विश्व-व्यवस्था का निर्माण

आधुनिक समाज किसी बंद दायरे में विकसित नहीं हुआ। 1400 और 1800 के दशकों के बीच, यूरोपीय **उपनिवेशवाद** अन्वेषण, व्यापार और साम्राज्य-निर्माण के माध्यम से फैला, जिससे ऐसे संबंध बने जिन्होंने इसमें शामिल सभी को बदल दिया। पश्चिम ने दूसरों से अपनी तुलना करके **सभ्यता** का अपना विचार निर्मित किया - अन्य समाजों को आदिम चित्रित करके स्वयं को **तर्कसंगत** और उन्नत होने का दावा किया। ये विचार केवल विचार नहीं थे - इन्होंने **दासता** और उपनिवेशित भूमियों से संसाधन छीनने जैसे भयानक कृत्यों को उचित ठहराया। यूरोपीय जब दूसरों पर प्रभुत्व जमा रहे थे, तब भी उन्होंने अपनी प्रौद्योगिकी, बाज़ारों और विचारों को विश्व भर में फैलाया। इस मिश्रण ने उसका निर्माण किया जिसे हम अब आधुनिक विश्व-व्यवस्था कहते हैं। यद्यपि आधुनिकता यूरोप में आरंभ हुई, परंतु इसके प्रभाव हर जगह पहुँचे। आज भी जब हम **नस्ल**, **विकास** और **उत्तर-औपनिवेशिक** मुद्दों की बात करते हैं, तो हम इन्हीं पुराने शक्ति-संबंधों से जूझते हैं। आधुनिक समाज की कहानी केवल यूरोप के बारे में नहीं है - यह इस बारे में है कि विश्व के विभिन्न भागों को किस प्रकार एक-दूसरे के साथ नए संबंधों में बाध्यतापूर्वक बाँधा गया, जिससे शक्ति के ऐसे प्रतिरूप बने जो आज भी हमारे विश्व को आकार देते हैं।

आधुनिक निर्माण की परस्पर संबद्ध प्रक्रियाएँ

आयाम	मूल रूपांतरण	पारस्परिक संबंध
बौद्धिक	तर्क और विज्ञान दैवी प्राधिकार का स्थान लेते हैं	अन्य सभी के लिए वैचारिक आधार प्रदान करता है
राजनीतिक	संप्रभु राष्ट्र-राज्य का उदय	अर्थव्यवस्था और नागरिकता के लिए संस्थागत ढाँचा
आर्थिक	पूँजीवाद और उद्योग का विस्तार	सामाजिक परिवर्तन को प्रेरित करता है; राज्य की स्थिरता पर निर्भर
सामाजिक	नए वर्ग और लैंगिक संबंध	आर्थिक शक्तियों का परिणाम; राजनीतिक माँगों को आकार देता है

सांस्कृतिक	धर्मनिरपेक्ष और तर्कसंगत विश्वदृष्टि	आधुनिक जीवन को अर्थ और नैतिक सुसंगति प्रदान करता है
वैश्विक	पश्चिम और गैर-पश्चिम की अंतःक्रिया	आधुनिकता को एक क्षेत्रीय घटना नहीं, बल्कि एक विश्व-व्यवस्था के रूप में प्रकट करता है

⟶ **अंतर्दृष्टि:** ये आयाम साथ-साथ विकसित होते हैं — प्रत्येक दूसरों को सक्षम बनाता है और उन्हें नया रूप देता है। आधुनिकता कोई एक मार्ग नहीं, बल्कि **रूपांतरणों का एक जाल** है जो चिंतन, सत्ता, उत्पादन, पहचान और वैश्विक संपर्क को आपस में जोड़ता है।

मूल संदेश

आधुनिकता मानवता की सबसे महत्त्वाकांक्षी परियोजना का प्रतिनिधित्व करती है: तर्क के अनुसार जीना, प्रकृति पर स्वामित्व प्राप्त करना, और सामूहिक रूप से स्वयं पर शासन करना।

इसने ज्ञान, स्वतंत्रता और भौतिक कल्याण में उल्लेखनीय प्रगति उत्पन्न की है — परंतु साथ ही नई असमानताएँ, अलगाव और वैश्विक विभाजन भी उत्पन्न किए हैं।

आधुनिकता को समझने का अर्थ है उसकी **सृजनात्मक और विनाशकारी, दोनों संभावनाओं** को समझना: प्रगति में वह आस्था जिसने हमारे विश्व का निर्माण किया, और वे अंतर्विरोध जो आज भी उसे परिभाषित करते हैं।

1.6 आधुनिकता के निर्माण से कांट के ज्ञानोदय तक

स्टुअर्ट हॉल और ब्रैम गीबेन की *फ़ॉर्मेशन्स ऑफ़ मॉडर्निटी* यह रेखांकित करती है कि आधुनिकता एक जटिल ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रिया के रूप में कैसे उभरी। वे दिखाते हैं कि "आधुनिकता" कोई एक घटना नहीं, बल्कि लोगों के विश्व और स्वयं को समझने के तरीकों में एक गहन रूपांतरण है। हॉल और गीबेन के अनुसार, आधुनिक युग परस्पर गुँथे हुए विकासों के माध्यम से उभरा: पूँजीवाद और औद्योगिक उत्पादन का विकास, राष्ट्र-राज्यों और धर्मनिरपेक्ष राजनीति का उदय, वैज्ञानिक क्रांति, तथा मानवीय तर्क और व्यक्तिगत कर्तृत्व (एजेंसी) पर नया बल। उनका अध्ययन उन *परिस्थितियों* को रेखांकित करता है जिन्होंने आधुनिक विश्व को संभव बनाया, और उन सांस्कृतिक विमर्शों—प्रगति, तर्कसंगतता और मानवीय प्रभुत्व—का अन्वेषण करता है जो उसे परिभाषित करते हैं।

अपने अध्ययन के इस बिंदु पर, हमारे पास इस बात का एक स्पष्ट समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक चित्र है कि आधुनिकता कैसे प्रकट हुई। परंतु हमें अभी भी यह पूछने की आवश्यकता है:

इन रूपांतरणों को उनका आंतरिक बौद्धिक और नैतिक औचित्य किसने प्रदान किया?

जहाँ हॉल और गीबेन आधुनिकता के **बाहरी निर्माण** का वर्णन करते हैं, वहीं **इमैनुएल कांट** उसके **आंतरिक सिद्धांत**—ज्ञानोदय के विचार—को अभिव्यक्त करते हैं।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के प्रशा में, यूरोपीय ज्ञानोदय के चरम काल में लिखते हुए, कांट उन्हीं विषयों को दार्शनिक अभिव्यक्ति देते हैं जिन्हें हॉल और गीबेन आधुनिक जीवन के केंद्र में मानते हैं: तर्क, स्वायत्तता, स्वतंत्रता और प्रगति। फिर भी, आधुनिक समाजशास्त्री या इतिहासकार के विपरीत, कांट आधुनिकता के एक पर्यवेक्षक के रूप में नहीं, बल्कि उसके *सहभागी और पैगंबर* के रूप में लिखते हैं।

कांट के लिए, ज्ञानोदय वह क्षण है जब मानवता विरासत में मिले प्राधिकार और अंधविश्वास को पीछे छोड़ते हुए स्वयं सोचने का साहस करती है। उनका प्रश्न, *"ज्ञानोदय क्या है?"* हमें आमंत्रित करता है कि हम आधुनिकता को केवल संस्थाओं या प्रौद्योगिकियों के एक समूह के रूप में नहीं, बल्कि एक नैतिक रूपांतरण—मानव मस्तिष्क के जागरण—के रूप में देखें।

इस प्रकार, हमारी इकाई में **हॉल और गीबेन** से **कांट** की ओर बदलाव एक गति को चिह्नित करता है:

- इसका वर्णन करने से कि आधुनिकता ने *कैसे* आकार लिया
- यह समझने तक कि यह तर्क के माध्यम से मानव मुक्ति का वचन *क्यों* देती है।

कांट का निबंध हॉल और गीबेन द्वारा रेखांकित प्रक्रियाओं के सामने रखा गया एक दार्शनिक दर्पण प्रस्तुत करता है। यह उस ज्ञानोदय-दृष्टिकोण को परिभाषित करता है जो आधुनिक चिंतन का आधार है: तर्क करने, प्रश्न करने और एक आत्म-निर्धारक कर्ता के रूप में कार्य करने का साहस।

ऐसा करते हुए, यह **आधुनिक परियोजना की नैतिक और ज्ञानमीमांसीय नींव** को उजागर करता है।

⟶ इसलिए, जैसे-जैसे हम हॉल और गीबेन के ऐतिहासिक सिंहावलोकन से कांट के दार्शनिक चिंतन की ओर बढ़ते हैं, हम आधुनिकता की बाहरी संरचना से उसकी आंतरिक चेतना—मानवीय तर्क की शक्ति में उसकी आस्था—की ओर बढ़ते हैं।

1.6.1 ज्ञानोदय के विचारक के रूप में कांट

- **ज्ञानोदय की परिभाषा**: कांट ज्ञानोदय को *"मनुष्य का अपनी स्वयं-आरोपित अपरिपक्वता से बाहर निकलना"* के रूप में परिभाषित करते हैं। अपरिपक्वता (उनमुंडिगकाइट) किसी अन्य के मार्गदर्शन के बिना अपनी स्वयं की बुद्धि का उपयोग करने में असमर्थता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह अपरिपक्वता *स्वयं-आरोपित* है, बुद्धि की कमी के कारण नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से सोचने के साहस और दृढ़ संकल्प की कमी के कारण है।

- **ज्ञानोदय का आदर्श-वाक्य**: *सपेरे औडे!* ("अपनी स्वयं की बुद्धि का उपयोग करने का साहस करो!")। कांट इस बात पर बल देते हैं कि ज्ञानोदय का सार अपने तर्क का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करना है।

- **अपरिपक्वता के कारण**: आलस्य और कायरता के कारण अधिकांश लोग अपने स्वयं के विवेक का प्रयोग करने के बजाय बाहरी प्राधिकारों—पुस्तकों, पादरियों, चिकित्सकों—पर निर्भर बने रहना पसंद करते हैं। इससे "संरक्षकों" (प्राधिकारियों) के लिए उन्हें नियंत्रित करना आसान हो जाता है।

- **व्यक्तिगत रूप से अपरिपक्वता पर विजय पाने की कठिनाई**: व्यक्ति प्रायः अपरिपक्वता के अभ्यस्त हो जाते हैं और स्वयं सोचने से डरते हैं। केवल कुछ ही लोग अपनी बुद्धि का विकास करते हैं और बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त करते हैं।

- **जनता की भूमिका**: कांट तर्क देते हैं कि सार्वजनिक ज्ञानोदय, व्यक्तिगत ज्ञानोदय की तुलना में अधिक प्राप्य है। यदि लोगों को स्वतंत्रता दी जाए, तो कुछ स्वतंत्र विचारक व्यापक जनता को प्रेरित कर सकते हैं और धीरे-धीरे तर्क की भावना का प्रसार कर सकते हैं।

- **आवश्यक शर्त के रूप में स्वतंत्रता**: ज्ञानोदय की एकमात्र आवश्यकता *स्वतंत्रता* है, विशेष रूप से अपने तर्क का सार्वजनिक रूप से उपयोग करने की स्वतंत्रता। कांट यह भेद करते हैं:

    - **तर्क का सार्वजनिक उपयोग**: साक्षर विश्व के समक्ष लेखन या भाषण में प्रयुक्त तर्क। ज्ञानोदय प्राप्त करने के लिए इसका स्वतंत्र होना आवश्यक है।

    - **तर्क का निजी उपयोग**: आधिकारिक भूमिकाओं या दायित्वों (जैसे एक सैनिक, करदाता, पादरी के रूप में) में प्रयुक्त तर्क, जिसे ज्ञानोदय की ओर प्रगति को रोके बिना सीमित किया जा सकता है।

    - **निजी बनाम सार्वजनिक तर्क के उदाहरण**:

        - एक सैनिक को आदेशों का पालन करना चाहिए (निजी तर्क), परंतु वह एक विद्वान के रूप में सैन्य त्रुटियों के बारे में सार्वजनिक रूप से लिख सकता है।

        - एक पादरी को चर्च के नियमों के अनुसार शिक्षा देनी चाहिए (निजी तर्क), परंतु वह व्यक्तिगत आलोचनाएँ प्रकाशित कर सकता है (सार्वजनिक तर्क)।

    - **प्राधिकार की सीमाएँ**: कांट कठोर कानूनों या शपथों के माध्यम से भावी पीढ़ियों या जनता को स्थायी रूप से बाँधने के प्रयासों की आलोचना करते हैं। ऐसे प्रयास मानव स्वभाव और तर्क के माध्यम से प्रगति की आवश्यक नियति का उल्लंघन करते हैं।

- **ज्ञानोदय के संकेतक**: कांट उल्लेख करते हैं कि यद्यपि हम पूर्णतः प्रबुद्ध युग में नहीं रहते, फिर भी वर्तमान शताब्दी ज्ञानोदय के संकेत दर्शाती है। जो सरकारें विचार की स्वतंत्रता, विशेष रूप से धार्मिक मामलों में, की अनुमति देती हैं, वे मानवीय तर्क के क्रमिक उदय में योगदान देती हैं।

1.6.2 तर्क में आस्था

कांट ने इस बात में कुछ बड़ा देखा कि लोग स्वयं किस प्रकार सोच सकते हैं। उनका विश्वास था कि तर्क करने की हमारी क्षमता केवल गणित के प्रश्न हल करने के लिए नहीं है - यह व्यक्तियों और समाजों, दोनों के रूप में परिपक्व होने की कुंजी है। जब हम **तर्क** का उपयोग करते हैं, तो हम अपने विश्व को अलग ढंग से देख सकते हैं। चर्च, राजा या परंपरा जो कुछ हमें बताते हैं उसे केवल स्वीकार करने के बजाय, हम प्रश्न पूछ सकते हैं और चीज़ों को स्वयं समझ सकते हैं। इसे चलना सीखने की तरह समझिए - पहले आपको सहायता की आवश्यकता होती है, परंतु अंततः आप अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं। **तर्क** हमें अपने विद्यालयों, सरकारों और सामाजिक नियमों को स्पष्ट दृष्टि से देखने में सहायता करता है। हम पहचान सकते हैं कि क्या काम करता है और क्या नहीं, और फिर चीज़ों को बेहतर बनाने के लिए प्रयास कर सकते हैं। कांट के लिए, यह केवल चतुर होने के बारे में नहीं था - यह समाज के सच्चे वयस्क सदस्य बनने के बारे में था, जो स्वयं सोचने और निर्णय करने में सक्षम हों।

अपने स्वयं के मस्तिष्क का उपयोग करना केवल एक विकल्प नहीं है - यह कुछ ऐसा है जिसके लिए हम स्वयं के प्रति ऋणी हैं। **कांट** ने तर्क दिया कि स्वतंत्र रूप से सोचना किसी भी अन्य मानवीय कर्तव्य जितना ही महत्त्वपूर्ण है। जब हम दूसरों को अपने लिए सोचने देते हैं, तो हम उस चीज़ का एक भाग त्याग देते हैं जो हमें मनुष्य बनाती है। यह मानो पैर होते हुए भी रेंगना चुनने जैसा है - यह हमारे मूल स्वभाव के विरुद्ध जाता है। यह **विचार की स्वायत्तता** सीधे मानवीय गरिमा से जुड़ी है। हर बार जब हम बिना प्रश्न किए प्राधिकारियों की बात का अंधानुसरण करते हैं, तो हम व्यक्तियों के रूप में थोड़े छोटे हो जाते हैं। चाहे वे धार्मिक नेता हों, राजनेता हों या सोशल मीडिया इन्फ़्लुएंसर - उन्हें अपने लिए सोचने देने का अर्थ है स्वयं चीज़ों का मूल्यांकन करने की अपनी स्वतंत्रता को त्याग देना। **तर्क** केवल एक उपकरण नहीं है - यह उसका हिस्सा है जो हमें वह बनाता है जो हम हैं, और इसका उपयोग करना पूर्ण रूप से मनुष्य होने का हिस्सा है।

आधुनिक समाज में नागरिक होने का अर्थ है ऐसे अधिकार प्राप्त होना जो पिछली पीढ़ियों के पास नहीं थे। हम अपने दैनिक दायित्वों को पूरा करते हुए भी **कानूनों**, **शासन** और **धार्मिक उपदेशों** का सार्वजनिक रूप से परीक्षण और आलोचना कर सकते हैं। यह संतुलन महत्त्वपूर्ण है - आप व्यवस्था के भीतर कार्य करते हुए भी उस पर प्रश्न उठा सकते हैं। अच्छे नेता, अर्थात् **प्रबुद्ध** नेता, एक महत्त्वपूर्ण बात समझते हैं: सार्वजनिक **वाद-विवाद** और आलोचना की अनुमति देने से सामाजिक व्यवस्था नष्ट नहीं होती। बल्कि, यह दर्शाता है कि **तर्क** का उपयोग नियमों के पालन के साथ-साथ किस प्रकार कार्य कर सकता है। यह केवल आज के बारे में नहीं है - यह भविष्य की प्रगति की रक्षा करने के बारे में है। जब समाज **तर्कसंगत चिंतन** को महत्त्व देता है, तो कोई भी समूह दूसरों को अज्ञानी बने रहने के

लिए विवश नहीं कर सकता। यह एक सुरक्षा-कवच की तरह है जो ज्ञान को बढ़ाता रहता है, **नैतिकता** के विकास में सहायता करता है, और स्वयं पर शासन करने के हमारे ढंग को सुधारता है। अधिकारों और कर्तव्यों, आलोचना और व्यवस्था का यह संयोजन समाज के लिए निरंतर बेहतर होते जाने का एक मार्ग बनाता है।

परिवर्तन रातों-रात नहीं होता - यह बात **कांट** भी जानते थे। समाज को सुधारने के लिए **तर्क** का उपयोग उसी प्रकार कार्य करता है जैसे पानी पत्थर को घिसता है - धीरे-धीरे परंतु निरंतर। हम सभी को एक साथ आलोचनात्मक रूप से सोचने के लिए विवश नहीं कर सकते। बल्कि, जैसे-जैसे लोग विचारों पर खुलकर और स्वतंत्र रूप से चर्चा करते हैं, पुराने पूर्वाग्रह स्वाभाविक रूप से मिटने लगते हैं। यह किसी भी नए कौशल को सीखने जैसा है - इसमें समय और अभ्यास लगता है।

जब परिस्थितियाँ कठिन दिखाई देती हैं, तब भी **तर्क** आगे बढ़ने का मार्ग खोज लेता है। **कांट** ने दिखाया कि साहसी विचारक कठोर नियंत्रण के बीच भी किस प्रकार परिवर्तन ला सकते हैं। इसे तालाब में एक कंकड़ गिराने की तरह समझिए - लहरें बाहर की ओर फैलती जाती हैं। जब कुछ लोग प्रश्न करने और आलोचनात्मक रूप से सोचने लगते हैं, तो उनके विचार दूसरों तक फैल जाते हैं। छोटे-छोटे परिवर्तन मिलकर बड़े परिवर्तन बन जाते हैं। उन स्थानों पर भी जहाँ स्वतंत्रता सीमित है, **तर्कसंगत आलोचना** धीरे-धीरे समाज को किसी बेहतर दिशा की ओर धकेल सकती है। यह तेज़ या नाटकीय भले न हो, परंतु यह आगे बढ़ती रहती है।

मुख्य निष्कर्ष (आस्था + तर्क)

आधुनिक चिंतन चीज़ों को तर्क द्वारा समझने की अपनी क्षमता पर भरोसे पर आधारित है। **ज्ञानोदय** केवल नए विचारों के बारे में नहीं था - यह इस विश्वास के बारे में था कि मनुष्य चीज़ों को स्वयं समझ सकते हैं। हमें अपने मस्तिष्क का स्वतंत्र रूप से उपयोग करने की आवश्यकता है, केवल इसलिए नहीं कि यह बुद्धिमत्तापूर्ण है, बल्कि इसलिए कि इसी के माध्यम से हम व्यक्तियों और समाजों के रूप में विकसित होते हैं। इसका एक व्यावहारिक पक्ष भी है - जब हम हर चीज़ पर खुलकर प्रश्न नहीं उठा सकते, तब भी हम अपने निजी जीवन में नियमों का पालन करते हुए सार्वजनिक चर्चाओं में **तर्क** का उपयोग कर सकते हैं। यह संतुलन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह समाज को बिखरे बिना धीरे-धीरे सुधरने देता है। यहाँ बड़ा विचार यह है कि अच्छी **नैतिकता** और **राजनीति** स्पष्ट चिंतन से उत्पन्न होती हैं - जब हम लोगों की सोचने और प्रश्न करने की स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं, तो हम मानवीय गरिमा की रक्षा करते हैं और समय के साथ सभी को अधिक समझने में सहायता करते हैं।

1.7 स्वायत्तता – कांट की नैतिक क्रांति और उसकी आधुनिक अनुगूँज

ज्ञानोदय की पृष्ठभूमि: तर्क में कांट की आस्था

कांट ने अपने 1784 के लेख "ज्ञानोदय क्या है?" में हमारी समझ को नया रूप दिया। उन्होंने ज्ञानोदय को मनुष्यों द्वारा अंततः स्वयं-निर्मित मानसिक ज़ंजीरों से मुक्त होने के रूप में देखा। "सपेरे औडे" ("जानने का साहस करो")

सोचने के इस नए तरीके का युद्धघोष बन गया, जिसने यह दिखाया कि व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक प्रगति, दोनों अपने मस्तिष्क के उपयोग पर निर्भर करती हैं।

कांट की दृष्टि जटिल नहीं थी, परंतु क्रांतिकारी थी। उन्होंने कहा कि मनुष्य स्वतंत्र रूप से सोच सकते हैं और उन्हें ऐसा करना ही चाहिए। तर्क अपने नियम स्वयं बनाता है - उसे यह बताने के लिए प्राधिकारियों की आवश्यकता नहीं है कि सत्य क्या है। इससे स्वतंत्रता को देखने का हमारा दृष्टिकोण भी बदल गया। वास्तविक स्वतंत्रता अव्यवस्था नहीं है - यह उन सिद्धांतों का पालन करना है जो हमारे स्वयं के तर्कसंगत मस्तिष्क को उचित प्रतीत होते हैं। ज्ञानोदय का बड़ा विचार यह था कि मनुष्य स्पष्ट रूप से सोचकर स्वयं पर शासन कर सकते हैं। इसी से कांट की स्वायत्तता की अवधारणा विकसित हुई - जहाँ तर्क स्वयं हमारे नैतिक चुनावों का मार्गदर्शन करता है। जब हम अपने मस्तिष्क का सही उपयोग करते हैं, तो हम सत्य और दिशा स्वयं खोज लेते हैं।

राजनीतिक स्वशासन से नैतिक स्वशासन तक

कांट द्वारा सब कुछ बदल दिए जाने से पहले, *ऑटोनोमिया* का अर्थ केवल यह था कि प्राचीन काल में नगर या राज्य स्वयं पर किस प्रकार शासन करते थे। परंतु कांट इस विचार को एक नई दिशा में ले गए। उन्होंने इसे इस बात से जोड़ा कि व्यक्ति तर्क के माध्यम से अपने कार्यों पर किस प्रकार शासन करते हैं। जब उन्होंने स्वायत्तता की बात की, तो उनका आशय कुछ विशिष्ट था - यह इस बारे में है कि हमारा तर्कसंगत मस्तिष्क हमारे लिए नैतिक नियम किस प्रकार बनाता है। इसका विपरीत, परायत्तता (हेटेरोनॉमी), तब घटित होती है जब हम बाहरी शक्तियों को स्वयं को नियंत्रित करने देते हैं - चाहे वे हमारी मूल इच्छाएँ हों या वह जो दूसरे हमें करने को कहते हैं।

यह नैतिक होने के बारे में हमारे सोचने के ढंग में एक पूर्ण बदलाव था। केवल धार्मिक नियमों या प्राकृतिक प्रवृत्तियों का पालन करने के बजाय, कांट ने कहा कि सच्ची नैतिकता उन नियमों से आती है जिन्हें हम सावधानीपूर्ण चिंतन के माध्यम से बनाते हैं। उनके स्वायत्तता के विचार ने नैतिक दर्शन की हर चीज़ को बदल दिया। इसने हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अपने कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी होने के आधुनिक विचार दिए। अब हम केवल आदेशों का पालन नहीं कर रहे - हम चिंतनशील प्राणी हैं जो सही और गलत का निर्णय स्वयं कर सकते हैं।

कांट की स्वायत्तता की व्याख्या

1. स्वायत्तता की संरचना

कांट ने यथार्थ को दो भिन्न भागों में विभाजित किया। पहला, अनुभवजन्य (एम्पिरिकल) जगत है जहाँ सब कुछ कार्य-कारण का अनुसरण करता है - प्राकृतिक अनिवार्यता का जगत। फिर परमार्थिक (नूमेनल) क्षेत्र है जहाँ नैतिक स्वतंत्रता विद्यमान है, जहाँ हमारा संकल्प उन नियमों का अनुसरण कर सकता है जिन्हें हम तर्क के माध्यम से बनाते हैं।

स्वायत्तता इसी परमार्थिक क्षेत्र से संबंधित है - यह मानव स्वभाव का वह भाग है जो मूल इच्छाओं से ऊपर उठकर सार्वभौमिक तर्क के आधार पर चुनाव करता है। जब कोई व्यक्ति सच्ची स्वायत्तता के साथ कार्य करता है, तो वह दो प्रमुख कार्य कर रहा होता है: पहला, वह अपने चुनावों पर तर्कसंगत रूप से विचार करता है, और ऐसे सिद्धांत बनाता है जो तर्क करने में सक्षम प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयुक्त हों। दूसरा, ये सिद्धांत नैतिक नियम बन जाते हैं, जिसे कांट ने अपने निरपेक्ष आदेश में व्यक्त किया: "केवल उसी सूत्र (मैक्सिम) के अनुसार कार्य करो जिसे तुम साथ ही एक सार्वभौमिक नियम बनाने का संकल्प कर सको।"

इससे कुछ उल्लेखनीय उत्पन्न होता है - तर्क स्वयं अपना विधिनिर्माता बन जाता है। सच्ची स्वतंत्रता जो चाहें वह करना नहीं है - यह उन नियमों का पालन करना है जिन्हें हमारे स्वयं के तर्क ने सावधानीपूर्वक चुना है। जब हम तर्क का इस प्रकार उपयोग करते हैं, तो हम सचमुच स्वायत्त होते हैं।

2. तर्कसंगत कर्तृत्व और स्व-विधायन

स्वायत्त होने का अर्थ है कि मनुष्यों में कुछ विशिष्ट क्षमताएँ हैं। हम चीज़ों के घटित होने का संकल्प कर सकते हैं - केवल प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि विशिष्ट कारणों से कार्यों का चुनाव। हम यह निर्णय कर सकते हैं कि कौन-से नियम केवल हमारे लिए नहीं, बल्कि सभी के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। और हम नैतिक नियमों को अपने ऊपर वास्तविक प्राधिकार रखने वाले नियमों के रूप में पहचान सकते हैं।

हमारा संकल्प एक विशेष ढंग से कार्य करता है - यह तर्क पर आधारित प्रतिरूपों का अनुसरण करता है, न कि केवल वह जो हमें करने का मन हो। इसका अर्थ है कि सच्चे नैतिक चुनाव यादृच्छिक इच्छाओं या बाहरी दबावों (जिन्हें कांट परायत्त प्रेरणाएँ कहते हैं) से उत्पन्न नहीं हो सकते। जब हम नैतिक रूप से कार्य करते हैं, तो हम उन नियमों का पालन कर रहे होते हैं जिन्हें कोई भी चिंतनशील व्यक्ति समझेगा और स्वीकार करेगा। ये केवल व्यक्तिगत रुचियाँ नहीं हैं - ये ऐसे सिद्धांत हैं जो तर्क का सही उपयोग करने वाले किसी भी व्यक्ति को उचित प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार का चिंतन एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करता है जिसमें नैतिक चुनाव केवल भावनाओं या बाहरी नियमों से नहीं, बल्कि सावधानीपूर्ण विचार से उत्पन्न होते हैं। इसका अर्थ है कि हम सचमुच तर्क के माध्यम से स्वयं पर शासन कर रहे हैं।

3. मनुष्य की द्वैत प्रकृति

कांट ने मनुष्यों को दो शक्तियों के बीच फँसा हुआ देखा। हमारा एक भाग इंद्रियजन्य, पशु-सदृश इच्छाओं का अनुसरण करता है, जबकि दूसरा भाग तर्कसंगत रूप से सोच सकता है। हमारी भावनाएँ और इच्छाएँ हमारी इंद्रियजन्य प्रकृति से आती हैं - वे परिस्थितियों के अनुसार बदलती और भिन्न होती रहती हैं। परंतु हमारा तर्कसंगत पक्ष ऐसे सार्वभौमिक सिद्धांत बना सकता है जो हमारी व्यक्तिगत इच्छाओं की परवाह किए बिना लागू होते हैं।

इससे स्वतंत्रता के बारे में एक रोचक विरोधाभास उत्पन्न होता है। जब हम अपने आवेगों का अनुसरण करते हैं, तो वास्तव में हम कम स्वतंत्र होते हैं - हम अपनी इच्छाओं के दास बन जाते हैं। वास्तविक स्वतंत्रता स्वयं को नियंत्रित करने के लिए तर्क के उपयोग से आती है। यह मानो हमारे भीतर दो प्रतिस्पर्धी शक्तियों का होना है - आकस्मिक (बदलती हुई) इच्छाएँ बनाम वे तर्कसंगत सिद्धांत जो स्थिर रहते हैं। जब हम आवेगों के स्थान पर तर्क का अनुसरण करना चुनते हैं, तो हम वह प्राप्त करते हैं जिसे कांट नैतिक स्वतंत्रता कहते हैं। यह जो अच्छा लगे वह करने के बारे में नहीं है - यह अपने चुनावों का मार्गदर्शन करने के लिए अपने तर्कसंगत मस्तिष्क का उपयोग करने के बारे में है, तब भी जब हमारी इच्छाएँ हमें दूसरी दिशाओं में खींचती हैं।

4. व्यक्तियों के प्रति सम्मान

कांट की स्वायत्तता की अवधारणा से उनका मानवता का मूलभूत सूत्र उत्पन्न होता है: "तर्कसंगत प्राणियों को व्यक्ति इसलिए कहा जाता है क्योंकि उनकी प्रकृति उन्हें स्वयं में साध्य के रूप में चिह्नित करती है।" यह केवल अमूर्त दर्शन नहीं था - इसने मानवीय मूल्य को देखने के हमारे ढंग को रूपांतरित कर दिया।

कांट ने तर्क दिया कि व्यक्तियों का मूल्य निरपेक्ष और बिना शर्त होता है, जो उन वस्तुओं से मूलतः भिन्न है जिनका केवल साधनात्मक मूल्य होता है। जब हम किसी के साथ केवल किसी उद्देश्य के साधन के रूप में व्यवहार करते हैं, तो हम तर्कसंगत स्व-विधायन की उसकी आवश्यक क्षमता को नकार रहे होते हैं। स्वायत्तता - तर्क करने और अपने लिए नैतिक नियम बनाने की इस क्षमता - का सम्मान करके, हम वास्तव में स्वयं मानवता का सम्मान कर रहे होते हैं।

यह सिद्धांत दर्शन की पुस्तकों तक सीमित नहीं रहा। इसने मानवीय गरिमा, अधिकारों और समानता की आधुनिक अवधारणाओं को आकार दिया। कांट का सूत्र दिखाता है कि प्रत्येक व्यक्ति सम्मान का पात्र क्यों है: इसलिए नहीं कि वह क्या कर सकता है या क्या प्रदान कर सकता है, बल्कि इसलिए कि उसमें तर्कसंगत चिंतन और नैतिक चुनाव की यह अंतर्निहित क्षमता है। यह सिद्धांत आज भी मानवीय मूल्य और अधिकारों के बारे में हमारे चिंतन के केंद्र में बना हुआ है।

कांट में स्वायत्तता, नैतिकता और राजनीति

1. नैतिकता

कांट का नैतिक सिद्धांत स्वायत्तता को नैतिक दायित्व की मूल नींव में स्थापित करता है। वे एक सशक्त समीकरण प्रस्तुत करते हैं: स्वतंत्रता बराबर स्वायत्तता बराबर नैतिकता। यह केवल चुनाव करने के बारे में नहीं है - यह इस बारे में है कि नैतिक व्यवहार उस तर्कसंगत नैतिक नियम के प्रति हमारे सम्मान से किस प्रकार उत्पन्न होता है जिसे हम अपने भीतर पाते हैं।

कांट के लिए, सच्चा नैतिक व्यक्ति वह है जो तर्क के माध्यम से स्वयं पर शासन करता है, और कर्तव्य को बाहर से थोपे गए बोझ के रूप में नहीं, बल्कि अपनी स्वयं की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति के रूप में देखता है। इसका अर्थ है कि नैतिक कार्य उन नैतिक नियमों की हमारी मान्यता और उनके प्रति सम्मान से उत्पन्न होते हैं जिन्हें तर्क स्वयं खोजता है। नैतिक कर्ता केवल नियमों का पालन नहीं कर रहा होता - वह सक्रिय रूप से अपनी तर्कसंगत क्षमता का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए कर रहा होता है कि क्या सही है, और उसी के अनुसार कार्य करना चुनता है।

स्वतंत्रता, स्वायत्तता और नैतिकता का यह परस्पर गुंथन समस्त नैतिक व्यवहार की नींव रखता है। जब हम नैतिक रूप से कार्य करते हैं, तो हम तर्कसंगत, स्वशासी प्राणियों के रूप में अपनी सर्वोच्च प्रकृति को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं।

2. राजनीति

"ज्ञानोदय क्या है?" में कांट समाज में तर्क के कार्य करने के दो तरीकों के बीच एक महत्त्वपूर्ण भेद करते हैं। तर्क का सार्वजनिक उपयोग मौजूदा संस्थाओं पर वाद-विवाद करने, लिखने और उनकी आलोचना करने की असीमित स्वतंत्रता की माँग करता है। तर्क का निजी उपयोग सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए व्यावसायिक और नागरिक भूमिकाओं के भीतर सीमित आज्ञापालन की अपेक्षा करता है।

इसलिए प्रबुद्ध शासन को दो आवश्यक तत्त्वों के बीच संतुलन बनाना चाहिए: नागरिक शांति, जिसके लिए आवश्यक है कि नागरिक अपनी आधिकारिक भूमिकाओं में नियमों का पालन करें, और बौद्धिक स्वतंत्रता, जो अप्रतिबंधित सार्वजनिक तर्क और वाद-विवाद की माँग करती है। यह कोई अंतर्विरोध नहीं है - यही वह तरीका है जिससे समाज कार्य भी कर सकता है और सुधर भी सकता है।

कांट दिखाते हैं कि स्वायत्तता किस प्रकार व्यक्तिगत नैतिक चुनावों से आगे बढ़कर सामूहिक राजनीतिक जीवन को आकार देती है। इसका परिणाम एक ऐसा समुदाय है जहाँ नागरिक सामाजिक स्थिरता बनाए रखते हुए सार्वजनिक विमर्श में भाग लेने के लिए स्व-विधायन और तर्क की अपनी क्षमता का उपयोग करते हैं। इससे ऐसे लोगों का समाज बनता है जो अपने नागरिक कर्तव्यों को पूरा करते हुए भी स्वतंत्र रूप से सोच सकते हैं।

आधुनिक नीतिशास्त्र में स्वायत्तता का पुनरुद्भव

कांट के युग के बाद, स्वायत्तता की अवधारणा ने दार्शनिक चिंतन में अपना केंद्रीय स्थान खो दिया। यह पतन इतना महत्त्वपूर्ण था कि स्वायत्तता को 1967 के *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी* में सम्मिलित किए जाने योग्य भी नहीं समझा गया - जो पहले इतनी महत्त्वपूर्ण रही अवधारणा के लिए एक उल्लेखनीय चूक थी।

तथापि, 1970 के दशक में स्वायत्तता का नाटकीय पुनरुत्थान हुआ। यह पुनरुत्थान सबसे उल्लेखनीय रूप से जैवनीतिशास्त्र (बायोएथिक्स) में प्रकट हुआ, जिसे दो मुख्य शक्तियों ने प्रेरित किया: उभरते सामाजिक आंदोलन

और दार्शनिक विकास। दार्शनिकों ने आधुनिक संदर्भों के लिए, विशेष रूप से चिकित्सा नीतिशास्त्र और रोगी-अधिकारों में, इस अवधारणा को अनुकूलित करना और उसकी पुनर्व्याख्या करना आरंभ किया। इस नवीनीकरण ने दिखाया कि कांट के विचारों को समकालीन नैतिक चुनौतियों का समाधान करने के लिए किस प्रकार नया रूप दिया जा सकता है, और यह सिद्ध किया कि स्वायत्तता आधुनिक नैतिक चर्चाओं के लिए प्रासंगिक बनी हुई है।

इस पुनरुत्थान ने प्रदर्शित किया कि दार्शनिक अवधारणाएँ किस प्रकार धुँधली पड़ सकती हैं और फिर समाज की आवश्यकताएँ बदलने पर नए महत्त्व के साथ लौट सकती हैं। स्वायत्तता ने आधुनिक नैतिक दुविधाओं, विशेष रूप से स्वास्थ्य-सेवा संबंधी निर्णय-निर्माण और रोगी-अधिकारों के समाधान में, एक नया उद्देश्य पाया।

सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि

नागरिक अधिकार और रोगी अधिकार आंदोलन

अमेरिका में 1960 और 70 के दशकों में ऐसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक आंदोलन हुए जिन्होंने व्यक्तिगत अधिकारों के बारे में हमारे सोचने के ढंग को नया रूप दिया। नस्लीय न्याय, महिला-अधिकारों और वियतनाम युद्ध के विरोध के इन अभियानों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वायत्तता पर बल दिया। नेशनल वेलफ़ेयर राइट्स ऑर्गनाइज़ेशन (NWRO) ने स्वास्थ्य-सेवा सुधार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसके परिणामस्वरूप 1973 में अमेरिकन हॉस्पिटल एसोसिएशन का पेशेंट बिल ऑफ़ राइट्स (रोगी अधिकार-पत्र) आया। इसने स्वास्थ्य-सेवा संबंधी निर्णयों में चिकित्सकीय पितृसत्तावाद (पैटर्नलिज़्म) से रोगी-स्वायत्तता की ओर एक मूलभूत बदलाव को चिह्नित किया।

अनुसंधान नैतिकता संबंधी घोटाले

टस्केगी सिफ़लिस अध्ययन (1932-1972) के खुलासे ने अफ़्रीकी-अमेरिकी पुरुषों पर किए गए अत्यंत अनैतिक चिकित्सकीय प्रयोगों को उजागर किया, जिन्हें सूचित सहमति (इन्फ़ॉर्म्ड कंसेंट) का अवसर नहीं दिया गया था। इस चौंकाने वाले खुलासे से जन-आक्रोश भड़क उठा और प्रमुख संस्थागत सुधार हुए। 1974 के नेशनल रिसर्च एक्ट और नेशनल कमीशन फ़ॉर द प्रोटेक्शन ऑफ़ ह्यूमन सब्जेक्ट्स की स्थापना ने अनुसंधान नैतिकता के लिए नए मानक स्थापित किए। इन परिवर्तनों ने मानव प्रतिभागियों के प्रति चिकित्सा अनुसंधान के दृष्टिकोण को मूलतः बदल दिया, और सूचित सहमति तथा व्यक्तिगत स्वायत्तता पर बल दिया।

बेलमॉन्ट रिपोर्ट (1978)

बेलमॉन्ट रिपोर्ट ने नैतिक अनुसंधान आचरण के लिए तीन मूलभूत सिद्धांत स्थापित किए। ये सिद्धांत - व्यक्तियों के प्रति सम्मान (स्वायत्तता), हितकारिता (बेनिफ़िसेंस) और न्याय - आधुनिक अनुसंधान नैतिकता की आधारशिला बन गए। रिपोर्ट द्वारा दी गई स्वायत्तता की परिभाषा विशिष्ट और व्यावहारिक थी: "व्यक्तिगत लक्ष्यों के बारे में विचार-विमर्श करने और ऐसे विचार-विमर्श के निर्देशन में कार्य करने की क्षमता।"

स्वायत्तता की यह समझ सीधे कांट की व्यक्तियों के प्रति सम्मान की दार्शनिक अवधारणा से ली गई है, यद्यपि इसे जैवनीतिशास्त्र में व्यावहारिक अनुप्रयोग के लिए अनुकूलित किया गया है। तर्कसंगत आत्म-निर्धारण पर कांट के बल को बनाए रखते हुए, रिपोर्ट ने इन विचारों को वास्तविक जगत के चिकित्सा अनुसंधान और व्यवहार में लागू करने योग्य बनाया। इस परिभाषा ने अमूर्त दार्शनिक सिद्धांतों को अनुसंधान में मानव प्रतिभागियों की सुरक्षा के लिए ठोस दिशानिर्देशों में रूपांतरित करने में सहायता की, और दिखाया कि सैद्धांतिक अवधारणाओं को व्यावहारिक नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किस प्रकार अनुकूलित किया जा सकता है।

ब्यूचैम्प और चाइल्ड्रेस: सिद्धांतवाद (प्रिंसिपलिज़्म) और जैव-चिकित्सकीय मोड़

टॉम ब्यूचैम्प और जेम्स चाइल्ड्रेस ने अपनी प्रभावशाली पुस्तक *प्रिंसिपल्स ऑफ़ बायोमेडिकल एथिक्स* (1979) में स्वायत्तता के विचार को आधुनिक जैवनीतिशास्त्र के लिए एक व्यावहारिक और धर्मनिरपेक्ष उपकरण में रूपांतरित कर दिया। उन्होंने स्वायत्तता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के एक ऐसे रूप के रूप में वर्णित किया जिसमें व्यक्ति अपने स्वयं के चुने हुए योजनाओं के अनुसार अपने कार्यों को आकार देते और निर्देशित करते हैं। उनके लिए, एक स्वायत्त व्यक्ति वह है जो नियंत्रक या बलपूर्वक दबाव डालने वाली शक्तियों के अधीन हुए बिना, विचार-विमर्श करने, अभिप्राय बनाने और समझ के साथ कार्य करने में सक्षम हो। उनके ढाँचे में स्पष्ट कांटीय छाप है: स्व-विधायन की धारणा आत्म-निर्धारण बन जाती है, व्यक्तियों के प्रति सम्मान का रूपांतरण किसी दूसरे के चुने हुए मार्ग में हस्तक्षेप न करने के नैतिक दायित्व में हो जाता है, और स्वायत्तता बलप्रयोग और हेरफेर के विरुद्ध एक नैतिक सीमा निर्धारित करती है। साथ ही, ब्यूचैम्प और चाइल्ड्रेस जे. एस. मिल और आइज़ैया बर्लिन जैसे उदारवादी विचारकों पर भी बहुत अधिक निर्भर करते हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्म-विकास पर मिल का बल, तथा नकारात्मक स्वतंत्रता (हस्तक्षेप से मुक्ति) और सकारात्मक स्वतंत्रता (आत्म-संयम/आत्म-स्वामित्व) के बीच बर्लिन का भेद, दोनों ही स्वायत्तता के प्रति उनके दृष्टिकोण को आकार देते हैं। अंततः, ब्यूचैम्प और चाइल्ड्रेस इन धाराओं को मिलाकर स्वायत्तता को बलप्रयोग से मुक्ति और तर्कसंगत आत्म-निर्देशन की क्षमता, दोनों के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिससे यह समकालीन जैव-चिकित्सकीय नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांतों में से एक बन जाती है

समकालीन सैद्धांतिक परिष्कार

समकालीन दार्शनिक स्वतंत्रता, प्रामाणिकता और नैतिक उत्तरदायित्व के साथ इसके संबंध की जाँच करके स्वायत्तता के विचार को निरंतर परिष्कृत करते आ रहे हैं। हैरी फ़्रैंकफ़र्ट और जेराल्ड ड्वॉर्किन जैसे पदानुक्रमिक या प्रक्रियात्मक सिद्धांतकार तर्क देते हैं कि स्वायत्तता चिंतनशील अनुमोदन से उत्पन्न होती है: मनुष्यों में केवल प्रथम-क्रम की इच्छाएँ ही नहीं होतीं कि वे क्या चाहते हैं, बल्कि द्वितीय-क्रम की इच्छाएँ भी होती हैं कि उन चाहतों में से किन्हें वे वास्तव में स्वीकार करते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, कोई व्यक्ति तब स्वायत्त होता है जब वह उन प्रेरणाओं पर कार्य करता है जो इस चिंतनशील जाँच में टिकी रहती हैं, जिससे चिंतनशील आत्म और उसे प्रेरित करने वाली प्रेरणाओं के बीच सुसंगति बनती है। ये मॉडल आंतरिक नैतिक आत्म-परीक्षण पर कांट के बल की प्रतिध्वनि हैं,

यद्यपि ये शुद्ध तर्क के बारे में कांट के भारी तत्त्वमीमांसीय दावों के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होते। अन्य दार्शनिक स्वायत्तता के "ऐतिहासिक" और "प्रामाणिकता-आधारित" विवरण प्रस्तुत करते हैं। जॉन क्रिस्टमैन इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्तियों को यह समझना चाहिए कि उनकी प्राथमिकताएँ कैसे बनीं, और उन्हें हेरफेर करने वाली सामाजिक या मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का प्रतिरोध करने में सक्षम होना चाहिए; इस प्रकार पारदर्शिता और आत्म-जागरूकता स्वायत्तता की केंद्रीय विशेषताएँ बन जाती हैं। मरीना ओशाना और आगे जाकर तर्क देती हैं कि स्वायत्तता के लिए अपने जीवन पर वास्तविक कर्तृत्वपूर्ण प्राधिकार आवश्यक है — अपने मूल्यों को संशोधित करने, अपने संबंधों को नया रूप देने और फिर भी स्वयं के प्रति सच्चे बने रहने की शक्ति। मिलकर, ये समकालीन दृष्टिकोण स्वायत्तता को आत्म-लेखन (सेल्फ़-ऑथरशिप) के एक रूप के रूप में देखते हैं, जहाँ व्यक्ति निरंतर चिंतन के माध्यम से अपनी पहचान, मूल्यों और प्रतिबद्धताओं को सक्रिय रूप से आकार देते हैं।

जैवनैतिक चुनौती

ब्यूचैम्प और चाइल्ड्रेस द्वारा विकसित जैवनैतिक ढाँचे की इस बात के लिए भी आलोचना हुई है कि यह बहुत उथला और अत्यधिक प्रक्रियात्मक है। बहुत-से लोग तर्क देते हैं कि उनका मॉडल स्वायत्तता को सूचित सहमति की यांत्रिकी तक सीमित कर देता है, और व्यक्तियों के प्रति सम्मान को विकल्प प्रस्तुत करने के कार्य से कुछ अधिक नहीं मानता। आलोचक चेतावनी देते हैं कि इससे स्वायत्तता सतही और दार्शनिक रूप से दुर्बल हो जाती है, क्योंकि यह स्व-विधायन की गहरी कांटीय समझ को किनारे कर देता है — यह विचार कि वास्तविक स्वायत्तता के लिए केवल स्वतंत्र निर्णय-निर्माण नहीं, बल्कि तर्कसंगत चिंतन आवश्यक है। ओनोरा ओ'नील इस चिंता को तीखेपन से व्यक्त करती हैं जब वे कहती हैं कि रोगी-स्वायत्तता प्रायः वास्तविक स्वशासन की किसी आवश्यकता के बिना, उपचार को स्वीकार या अस्वीकार करने के अधिकार से अधिक कुछ नहीं रह जाती। एक रोगी बिना समझे सहमति दे सकता है, या बिना चिंतन के अस्वीकार कर सकता है, और फिर भी प्रक्रियात्मक अर्थ में "स्वायत्त" माना जा सकता है। यह अंतराल इस चिंता को रेखांकित करता है कि जैवनैतिक स्वायत्तता, जैसी कि सामान्यतः व्यवहार में लाई जाती है, उस नैतिक गहराई को खोने का जोखिम उठाती है जिसकी रक्षा के लिए यह अवधारणा बनी थी।

कांटीय गहराई: तर्कसंगत स्वतंत्रता के रूप में स्वायत्तता

कांट की स्वायत्तता की अवधारणा की ओर लौटना उस नैतिक गहराई को पुनर्स्थापित करके इन सीमाओं का समाधान करने में सहायता करता है जिसकी प्रक्रियात्मक जैवनीतिशास्त्र में प्रायः कमी होती है। कांट के लिए, स्वायत्तता केवल चुनने की स्वतंत्रता नहीं, बल्कि नैतिक नियम पर आधारित तर्कसंगत स्वशासन की क्षमता है। इसके लिए अनुशासित विचार-विमर्श, सार्वभौमीकरण की कसौटी के माध्यम से अपने सूत्रों (मैक्सिम्स) का मूल्यांकन करने की क्षमता, और उन सिद्धांतों से कार्य करने की प्रतिबद्धता आवश्यक है जिन्हें कोई तर्कसंगत रूप से सभी के लिए चाह सके। इसलिए, स्वायत्तता केवल विकल्प प्रदान नहीं करती, बल्कि उत्तरदायित्व भी आरोपित करती है, और किसी दूसरे की स्वायत्तता का सम्मान करने का अर्थ है उन सामाजिक और संस्थागत परिस्थितियों

को प्रोत्साहित करना जो व्यक्तियों को स्वतंत्र रूप से चिंतन करने, समझने और निर्णय लेने देती हैं — न कि केवल उन्हें सहमति देने या रोकने में सक्षम बनाना। इस समृद्ध अर्थ में, कांट स्वायत्तता को नैतिक नियम के प्रति सम्मान के रूप में नैतिक सार, सार्वजनिक तर्क के प्रयोग के रूप में राजनीतिक सार, और आधुनिक कानून, चिकित्सा तथा मानवाधिकार-विमर्श में मानवीय गरिमा के आधार के रूप में व्यावहारिक महत्त्व प्रदान करते हैं।

संश्लेषण: कांट की स्वायत्तता और उसका समकालीन जीवन

विषय	कांट की मूल अवधारणा	आधुनिक जैवनैतिक अनुकूलन	निरंतर चुनौती
अर्थ	तर्कसंगत संकल्प का स्व-विधायन	आत्म-निर्धारण, चुनाव	तर्कसंगत चिंतन को व्यावहारिक सहमति के साथ एकीकृत करना
नैतिक मूल	सार्वभौमिक नियम से कार्य करना	अभिप्रायपूर्वक, स्वतंत्र रूप से कार्य करना	नैतिक तर्क की गहराई को बनाए रखना
मानवीय मूल्य	व्यक्ति स्वयं में साध्य के रूप में	स्वायत्तता के प्रति सम्मान / अधिकार-विमर्श	सम्मान को प्रक्रिया तक सीमित करने से बचना
स्वतंत्रता	तर्क का आज्ञापालन = नैतिक स्वतंत्रता	अहस्तक्षेप और सूचित सहमति	नकारात्मक और सकारात्मक स्वतंत्रता में संतुलन
राजनीति	विधिसम्मत स्वतंत्रता के अंतर्गत तर्क का सार्वजनिक उपयोग	लोकतांत्रिक भागीदारी, उदारवादी अधिकार	नैतिक शिक्षा और नागरिक परिपक्वता
ज्ञानोदय का आदर्श	"सपेरे औडे" – स्वयं सोचने का साहस करो	सशक्त रोगी, तर्कसंगत नागरिक	स्वायत्तता का देखभाल और उत्तरदायित्व के साथ सामंजस्य

मूल संदेश: आधुनिकता के नैतिक हृदय के रूप में स्वायत्तता

कांट की ज्ञानोदय परियोजना वहाँ-वहाँ जीवित रहती है जहाँ तर्क और स्वतंत्रता का मिलन होता है, और स्वायत्तता उसके नैतिक हृदय में स्थित है। यह ज्ञानोदय की तर्क में आस्था, उस आंतरिक नैतिक नियम जो हमें स्वतंत्र बनाता है, और सम्मान के उस सिद्धांत को मूर्त रूप देती है जो नैतिकता और राजनीति, दोनों का आधार है। आधुनिक जैवनीतिशास्त्र, कानून और लोकतांत्रिक जीवन में, स्वायत्तता का सम्मान करना कांट की गहरी दृष्टि को साकार करना है: मानवता जो चाहे वह करके नहीं, बल्कि तर्क के उन नियमों के अंतर्गत जीकर परिपक्वता प्राप्त करती है जिन्हें वह स्वयं को देती है। इस दृष्टि से देखने पर, स्वायत्तता वह सेतु बन जाती है जो पाठ्यक्रम के सभी भागों को जोड़ता है—तर्क में आस्था, स्वायत्तता का नैतिक अनुशासन, वह नैतिक जीवन जिसे यह संभव बनाती है, और वह राजनीतिक स्वतंत्रता जिसे यह बनाए रखती है—और ज्ञानोदय की उस यात्रा को समेटती है जो तर्कसंगत रूप से सोचने से नैतिक रूप से कार्य करने और फिर एक साथ स्वतंत्र रूप से जीने तक जाती है।

1.8 ज्ञानोदय के परिप्रेक्ष्य से कांटीय नीतिशास्त्र को समझना

यूरोप के ज्ञानोदय के केंद्रीय व्यक्तित्वों में से एक, इमैनुएल कांट ने तर्क दिया कि "ज्ञानोदय मनुष्य का अपनी स्वयं-आरोपित अपरिपक्वता से बाहर निकलना है," जो उस काल की इस व्यापक आशा को अभिव्यक्त करता है कि अंधविश्वास और बाहरी प्राधिकार का स्थान मानवीय तर्क की स्पष्टता ले लेगी। शताब्दियों के धार्मिक संघर्ष के बाद, बहुत-से विचारकों का मानना था कि आस्था-आधारित नैतिक व्यवस्थाएँ अब सार्वभौमिक सहमति सुनिश्चित नहीं कर सकतीं, और कांट ने एक मौलिक उत्तर प्रस्तुत किया: नैतिकता और धर्म, दोनों को ईश्वरीय प्रकाशना (रिवीलेशन) या भावना के बजाय तर्क पर आधारित होना चाहिए। चूँकि तर्क सार्वभौमिक है और सभी मनुष्यों में साझा है, इसलिए यह वहाँ एकजुट कर सकता है जहाँ आस्था प्रायः विभाजित करती है, और नैतिक नियम को संस्कृति या विश्वास की परवाह किए बिना सभी तर्कसंगत कर्ताओं द्वारा मान्यता दिलाने में सक्षम बनाता है। उन्होंने तर्क दिया कि आस्था-आधारित नैतिकता बाहर से आदेश थोपकर वयस्कों के साथ बच्चों जैसा व्यवहार करती है; इसके विपरीत, ज्ञानोदय ने मानवता की नैतिक वयस्कता के लिए तत्परता को चिह्नित किया — स्वायत्तता के लिए, अर्थात् अपने स्वयं के तर्कसंगत संकल्प से नैतिक नियम को पहचानने और उसका पालन करने की क्षमता के लिए। इस प्रबुद्ध अवस्था में, व्यक्ति अपने लिए सार्वभौमिक सिद्धांतों का विधान कर सकते थे, इसलिए नहीं कि प्राधिकार उन्हें आदेशित करता है, बल्कि इसलिए कि तर्क उन्हें आवश्यक सिद्ध करता है। इस प्रकार, ज्ञानोदय की तर्क में आस्था सीधे कांट की नैतिक परियोजना का समर्थन करती है, जहाँ स्वायत्तता वास्तविक नैतिक स्वतंत्रता की नींव बन जाती है।

कांट की नैतिक क्रांति

कांट का नैतिक दर्शन अंशतः नैतिकता के बारे में डेविड ह्यूम के संशयवाद की सीधी प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। ह्यूम ने तर्क दिया था कि सही और गलत के विचारों का कोई वस्तुनिष्ठ आधार नहीं है और वे केवल मानवीय भावनाओं को प्रतिबिंबित करते हैं। कांट को यह अत्यंत परेशान करने वाला लगा, क्योंकि उनका विश्वास था कि नैतिक सिद्धांत भावना पर आधारित नहीं हो सकते। जिस प्रकार तर्क गणित और प्राकृतिक जगत में आवश्यक और सार्वभौमिक सत्यों की खोज करता है, उसी प्रकार उन्होंने तर्क दिया कि वास्तविक नैतिक नियम में भी सार्वभौमिकता और अनिवार्यता होनी चाहिए। कोई नैतिक नियम जो केवल कभी-कभी, या केवल कुछ लोगों पर लागू होता है, उसे नैतिक नियम माना ही नहीं जा सकता। उसे निरपेक्ष होना चाहिए — सभी तर्कसंगत प्राणियों के लिए सभी परिस्थितियों में बाध्यकारी। इससे कांट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नैतिकता इच्छा पर नहीं, जो सदैव आत्मनिष्ठ और परिवर्तनशील होती है, बल्कि तर्क पर आधारित होनी चाहिए, जो अकेले ही वस्तुनिष्ठ और सार्वभौमिक दायित्वों को उत्पन्न कर सकता है। यही दृढ़ विश्वास उनके कर्तव्यवादी (डिऑन्टोलॉजिकल), अर्थात् कर्तव्य-आधारित, नीतिशास्त्र की नींव बनाता है।

कर्तव्य और शुभ संकल्प

कांट तर्क देते हैं कि विश्व में शुभ संकल्प के अतिरिक्त कुछ भी बिना शर्त शुभ नहीं है। प्रसन्नता, बुद्धिमत्ता या साहस जैसे गुण, यदि किसी भ्रष्ट उद्देश्य द्वारा निर्देशित हों, तो हानिकारक बन सकते हैं, इसलिए उनका नैतिक मूल्य पूरी तरह उनके उपयोग के पीछे के अभिप्रायों पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, शुभ संकल्प स्वयं में शुभ है क्योंकि यह नैतिक नियम के प्रति शुद्ध सम्मान से कार्य करता है। कांट के लिए, किसी नैतिक कार्य का मूल्य उसके परिणामों में नहीं, बल्कि उस प्रेरणा में निहित है जिससे वह किया जाता है। सच्ची नैतिकता के लिए कर्तव्य से कार्य करना आवश्यक है — झुकाव, आवेग या स्वार्थ से नहीं, बल्कि जो सही है उसके प्रति तर्कसंगत प्रतिबद्धता से। एक दुकानदार जो उचित मूल्य इसलिए लेता है क्योंकि उचितता नैतिक रूप से अपेक्षित है, वह कर्तव्य से कार्य करता है और इसलिए शुभ संकल्प प्रदर्शित करता है; दूसरा दुकानदार जो यही कार्य केवल अपनी अच्छी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए करता है, वह विवेकशीलता (प्रूडेंस) से कार्य करता है, नैतिकता से नहीं। यद्यपि परिणाम समान हैं, फिर भी केवल पहले कार्य का नैतिक मूल्य है क्योंकि वह सार्वभौमिक नैतिक नियम के प्रति सम्मान से उत्पन्न होता है। इस प्रकार, एकमात्र सच्ची नैतिक प्रेरणा उस नियम के प्रति श्रद्धा है जिसे तर्क खोजता है और जिसे स्वायत्त संकल्प स्वयं को देता है।

सापेक्ष (हाइपोथेटिकल) और निरपेक्ष (कैटेगोरिकल) आदेश

कांट के लिए, मानवीय कार्य का मार्गदर्शन करने वाले प्रत्येक सिद्धांत को एक आदेश (इम्पेरेटिव) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है— इस बारे में एक दावा कि व्यक्ति को क्या करना चाहिए। सापेक्ष आदेश सशर्त होते हैं: वे हमें बताते हैं कि *यदि* हम कोई विशेष परिणाम चाहते हैं, तो हमें क्या करना चाहिए। उदाहरण के लिए, "यदि तुम प्रशंसा पाना चाहते हो, तो तुम्हें दूसरों की सहायता करनी चाहिए" एक कार्य को एक इच्छा से जोड़ता है और इसलिए व्यक्तिगत लक्ष्यों पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, निरपेक्ष आदेश बिना शर्त आदेश देते हैं: वे बताते हैं कि व्यक्ति को क्या करना चाहिए केवल इसलिए कि वह सही है, किसी भी रुचि या उद्देश्य से स्वतंत्र। कांट इस बात पर बल देते हैं कि नैतिक नियम निरपेक्ष होने चाहिए, क्योंकि नैतिकता बदलती इच्छाओं या परिस्थितियों पर निर्भर नहीं हो सकती। जैसा कि वे लिखते हैं, "यदि कार्य केवल किसी अन्य वस्तु के साधन के रूप में शुभ है, तो आदेश सापेक्ष है; परंतु यदि उसे स्वयं में शुभ माना जाता है… तो आदेश निरपेक्ष है।" यह भेद उनकी नैतिक व्यवस्था की नींव बन जाता है, जिससे वे एक सर्वोच्च नैतिक सिद्धांत निकालते हैं, जिसे निरपेक्ष आदेश के तीन परस्पर संबद्ध सूत्रीकरणों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

पहला सूत्रीकरण — सार्वभौमिक नियम का सूत्र

निरपेक्ष आदेश का कांट का पहला सूत्रीकरण हमसे कहता है कि हम अपने कार्यों के पीछे के सिद्धांतों का सार्वभौमीकरण करके उनकी नैतिकता की जाँच करें। वे कहते हैं: "केवल उसी सूत्र के अनुसार कार्य करो जिसके द्वारा तुम साथ ही यह संकल्प कर सको कि वह एक सार्वभौमिक नियम बन जाए।" विचार सरल है परंतु कठोर

अपेक्षाओं वाला है — कोई कार्य तभी नैतिक है जब उसका मार्गदर्शन करने वाले अभिप्राय को बिना किसी अंतर्विरोध के सभी द्वारा अपनाया जा सके। कांट उन दो तरीकों की पहचान करते हैं जिनसे कोई सूत्र इस परीक्षण में विफल हो सकता है। *अवधारणा में अंतर्विरोध* तब उत्पन्न होता है जब सूत्र के सार्वभौमीकरण का विचार ही उस प्रथा को नष्ट कर देता है जिस पर वह निर्भर है, जैसे झूठ बोलने की सार्वभौमिक अनुमति के मामले में, जो सत्य बोलने की संभावना को और इसलिए स्वयं झूठ बोलने की संभावना को भी समाप्त कर देगी। *संकल्प में अंतर्विरोध* तब उत्पन्न होता है जब कोई सूत्र, यद्यपि सार्वभौमिक नियम के रूप में सोचा जा सकता है, किसी ऐसे कर्ता द्वारा तर्कसंगत रूप से चाहा नहीं जा सकता जो कुछ आवश्यक लक्ष्य चाहता है; उदाहरण के लिए, एक ऐसे विश्व की इच्छा करना जहाँ कोई भी दूसरों की सहायता न करे, अतार्किक है, क्योंकि जीवन में किसी न किसी समय हम अनिवार्य रूप से सहायता पर निर्भर होते हैं। यदि कोई सूत्र इनमें से किसी भी परीक्षण में विफल होता है, तो वह नैतिक नहीं हो सकता।

दूसरा सूत्रीकरण — स्वयं में साध्य के रूप में मानवता

निरपेक्ष आदेश का कांट का दूसरा सूत्रीकरण ध्यान को सार्वभौमिक नियम से हटाकर व्यक्तियों के नैतिक मूल्य पर केंद्रित करता है। वे लिखते हैं: "मानवता के साथ, चाहे वह तुम्हारे अपने व्यक्ति में हो या किसी अन्य के व्यक्ति में, सदैव ऐसा व्यवहार करो कि वह कभी केवल साधन न हो, बल्कि सदैव साथ ही साध्य भी हो।" विचार यह है कि प्रत्येक तर्कसंगत प्राणी तर्कसंगत स्व-विधायन की क्षमता के कारण अंतर्निहित गरिमा रखता है। जब भी हम किसी का *केवल* साधन के रूप में उपयोग करते हैं — उसे केवल अपने उद्देश्यों के लिए एक उपकरण मानते हैं — तो हम इस गरिमा का उल्लंघन करते हैं। कांट इस बात को सामान्य अंतःक्रियाओं के माध्यम से स्पष्ट करते हैं: जब कोई वेटर आपका भोजन परोसता है, तो निस्संदेह आप अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसके श्रम का उपयोग कर रहे होते हैं, परंतु यह नैतिक रूप से तभी स्वीकार्य है जब आप उसकी स्वायत्तता को भी पहचानें और उसका सम्मान करें— एक स्वतंत्र कर्ता के रूप में उसकी स्थिति को, जिसने यह भूमिका चुनी है। व्यक्तियों का स्वयं में साध्य के रूप में सम्मान करना मानवाधिकारों, गरिमा और व्यक्तियों की अलंघ्यता की आधुनिक अवधारणाओं की नींव बन जाता है।

तीसरा सूत्रीकरण — साध्यों का राज्य (किंगडम ऑफ़ एंड्स)

कांट का तीसरा सूत्रीकरण नैतिक दृष्टिकोण को व्यक्तिगत कार्य से एक साझा नैतिक समुदाय तक विस्तारित करता है। वे हमें एक "साध्यों के राज्य" की कल्पना करने के लिए आमंत्रित करते हैं — एक ऐसा समाज जिसमें प्रत्येक तर्कसंगत प्राणी नैतिक नियम का विधायक भी है और उसके अधीन भी, और जहाँ सभी के साथ स्वयं में साध्य के रूप में व्यवहार किया जाता है। इस आदर्श समुदाय में, किसी का भी केवल एक उपकरण के रूप में उपयोग नहीं किया जाता; प्रत्येक व्यक्ति अपने तर्कसंगत संकल्प के माध्यम से सार्वभौमिक नियमों के निर्माण में भाग लेता है। कांट इस बात पर बल देते हैं कि भले ही हमारे आसपास का विश्व ऐसे आदर्शों के अनुसार न जीता हो, फिर भी

स्वायत्त व्यक्ति को *ऐसे* कार्य करना चाहिए *मानो* यह नैतिक समुदाय पहले से विद्यमान हो। इसलिए साध्यों का राज्य एक नैतिक क्षितिज और नैतिक आचरण के मानक, दोनों के रूप में कार्य करता है।

व्यावहारिक तर्क की तीन मान्यताएँ (पॉस्टुलेट्स)

कांट तर्क देते हैं कि नैतिक तर्क को सार्थक बनाने के लिए कुछ मान्यताओं को पूर्वधारणा के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। पहली है **स्वतंत्रता**, क्योंकि चुनने की क्षमता के बिना कर्तव्य और उत्तरदायित्व जैसी अवधारणाएँ खोखली होंगी। दूसरी है **आत्मा की अमरता**, जो पूर्ण नैतिक पूर्णता की ओर प्रयास करने के लिए आवश्यक असीम क्षितिज प्रदान करती है। तीसरी है **ईश्वर**, जिसे किसी धार्मिक सिद्धांत (डॉग्मा) के रूप में नहीं, बल्कि एक तर्कसंगत मान्यता के रूप में समझा गया है जो सद्गुण और प्रसन्नता के बीच अंतिम सामंजस्य सुनिश्चित करती है — *सुम्मुम बोनुम*, अर्थात् "सर्वोच्च शुभ"। कांट इन मान्यताओं को सिद्ध तत्त्वमीमांसीय सत्य होने का दावा नहीं करते; बल्कि वे इन्हें व्यावहारिक आवश्यकताओं के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो नैतिक जीवन को सुसंगत और बोधगम्य बनाती हैं।

कांटीय स्वायत्तता और नैतिक स्पष्टता

कांट की नैतिक व्यवस्था की स्थायी शक्तियों में से एक उसके नैतिक ढाँचे की सटीकता और सार्वभौमिकता है। कांट के लिए, नैतिक नियम संस्कृति, स्वभाव या विश्वास के साथ नहीं बदलते; उन्हें कोई भी तर्कसंगत प्राणी तर्क के माध्यम से समझ सकता है। यह सार्वभौमिकता ज्ञानोदय के स्वायत्तता के आदर्श को प्रतिबिंबित करती है — बाहरी आदेशों या विरासत में मिले प्राधिकार के बजाय तर्कसंगत नियम द्वारा स्वयं पर शासन करने की क्षमता। इस प्रकार नैतिक स्वायत्तता राजनीतिक परिपक्वता को प्रतिबिंबित करती है: ऐसे नागरिकों की दृष्टि जो विचार-विमर्श करने, विधान बनाने और उन कानूनों के अधीन जीने में सक्षम हों जिनका वे तर्कसंगत रूप से अनुमोदन करते हैं। इसलिए कांट का नीतिशास्त्र केवल नैतिक दायित्व का विवरण ही नहीं, बल्कि सम्मान, स्वशासन और सार्वजनिक तर्क पर आधारित एक लोकतांत्रिक समाज की गहरी नैतिक नींव भी प्रदान करता है।

परस्पर टकराते कर्तव्यों की समस्या

कांट प्रसिद्ध रूप से इस बात पर बल देते हैं कि "चाहिए का अर्थ है सकना" (ऑट इम्प्लाइज़ कैन): व्यक्ति केवल वही करने के लिए नैतिक रूप से बाध्य हो सकता है जो वास्तव में उसकी सामर्थ्य में है। फिर भी मानव जीवन प्रायः ऐसी परिस्थितियाँ प्रस्तुत करता है जहाँ कर्तव्य परस्पर टकराते प्रतीत होते हैं। ज्यां-पॉल सार्त्र का प्रसिद्ध उदाहरण इसे स्पष्ट करता है: एक युवा सैनिक स्वयं को दो वास्तविक नैतिक दावों के बीच फँसा हुआ अनुभव करता है — अपने देश की रक्षा में युद्ध के प्रयास में सम्मिलित होना, या अपनी बीमार माँ की देखभाल के लिए घर पर रहना। दोनों कार्य सार्वभौमिक बनाए जा सकने वाले सूत्रों को व्यक्त करते प्रतीत होते हैं; दोनों नैतिक रूप से अपेक्षित प्रतीत होते हैं।

कांट के लिए, सच्चे नैतिक कर्तव्य वास्तव में आपस में नहीं टकरा सकते। वे **पूर्ण कर्तव्यों**, जो कठोर, अपवादरहित निषेध हैं (जैसे झूठ न बोलने का कर्तव्य), और **अपूर्ण कर्तव्यों**, जो व्यापक सकारात्मक कर्तव्य हैं (जैसे दूसरों की सहायता करना) और जिन्हें कैसे और कब पूरा किया जाए इसमें लचीलापन होता है, के बीच भेद करते हैं। प्रत्यक्ष टकराव तभी उत्पन्न होते हैं जब अपूर्ण कर्तव्यों को ऐसे माना जाता है मानो वे कठोर हों। एक बार कर्तव्यों का उचित विश्लेषण कर लिया जाए, तो टकराव समाप्त हो जाता है: तर्क दिखाता है कि उस परिस्थिति में केवल एक ही सूत्र को सार्वभौमिक नियम के रूप में चाहा जा सकता है। इस प्रकार, कांट के लिए, टकराव स्वयं नैतिकता में नहीं, बल्कि कर्तव्य की संरचना के बारे में मानवीय भ्रांति में निहित है।

कांट बनाम परिणामवाद

कांट को बेंजामिन कॉन्स्टैंट की प्रसिद्ध चुनौती — "दरवाज़े पर हत्यारा" वाली परिस्थिति — यह प्रश्न उठाती है कि क्या सत्यवादिता को तब भी बनाए रखना चाहिए जब वह किसी निर्दोष के जीवन को संकट में डालती हो। सामान्य नैतिक अंतर्ज्ञान सुझाता है कि ऐसी स्थिति में झूठ बोलना उचित है, फिर भी कांट इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति को कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। उनका तर्क नैतिक उत्तरदायित्व की प्रकृति में निहित है: परिणाम हमारे पूर्ण नियंत्रण से बाहर होते हैं, इसलिए नैतिकता उन पर आधारित नहीं हो सकती। जिस पर हम नियंत्रण कर सकते हैं वह हमारा संकल्प है; इसलिए, हम केवल अपने अभिप्राय की शुद्धता के लिए उत्तरदायी हैं, अपने कार्यों के अप्रत्याशित परिणामों के लिए नहीं। कांट तर्क देते हैं कि यदि हम झूठ बोलें और परिणाम गलत हो जाएँ, तो उत्तरदायित्व हमारा हो जाता है। आलोचक इसका प्रत्युत्तर देते हैं कि परिणाम महत्त्वपूर्ण होते हैं, विशेष रूप से तब जब उनका तर्कसंगत रूप से पूर्वानुमान लगाया जा सकता हो। जेरेमी बेंथम और पीटर सिंगर जैसे परिणामवादी मानते हैं कि नैतिक कर्ताओं को उस सीमा तक समग्र कल्याण को अधिकतम करने के लिए कार्य करना चाहिए जिस सीमा तक वे परिणामों का उचित पूर्वानुमान लगा सकते हैं। फिर भी कांट के समर्थक चेतावनी देते हैं कि जैसे ही हम "अच्छे परिणामों" के लिए कर्तव्य का त्याग करते हैं, सत्यनिष्ठा ढह जाती है। लाभकारी लक्ष्यों के लिए अनैतिक साधनों की अनुमति देना एक खतरनाक नैतिक ढलान खोल देता है और इस सिद्धांत को कमज़ोर करता है कि प्रत्येक कर्ता अपने कार्य के लिए जवाबदेह है, विश्व की आकस्मिक स्थिति के लिए नहीं।

स्वायत्तता, परस्पर-निर्भरता और व्यक्ति

हेगेल ने आपत्ति की कि कांट नैतिक कर्ता को एक पृथक तर्कसंगत परमाणु के रूप में चित्रित करते हैं, जो उन सामाजिक संबंधों से कटा हुआ है जिनके माध्यम से मनुष्य वास्तव में विकसित होते हैं। उन्होंने तर्क दिया कि वास्तविक व्यक्ति समुदायों, परंपराओं और इतिहासों के भीतर अस्तित्व में होते हैं जो पहचान और नैतिक समझ को आकार देते हैं। फिर भी, स्व-विधायन के रूप में नैतिकता का कांट का विचार शक्तिशाली बना हुआ है। यह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर और इस दावे पर बल देता है कि प्रत्येक नैतिक कर्ता को तर्कसंगत सिद्धांत द्वारा निर्देशित होकर स्वायत्त रूप से संकल्प करना चाहिए। बाद के विचारकों ने इस मूल को बनाए रखते हुए इसे सामाजिक अंतर्निहितता

के एक गहरे विवरण से समृद्ध करने का प्रयास किया है, और यह स्वीकार किया है कि स्वायत्तता का प्रयोग मानवीय संबंधों के बाहर नहीं, बल्कि उनके भीतर किया जाता है।

नीतिशास्त्र में भावना की भूमिका

कांट के लिए, भावनाएँ नैतिक दायित्व का आधार बनने के लिए बहुत अस्थिर हैं। भावनाएँ आती-जाती रहती हैं; केवल नैतिक नियम के प्रति सम्मान की तर्कसंगत प्रेरणा का ही वास्तविक और सुसंगत नैतिक मूल्य है। जैसा कि बारबरा हरमन उल्लेख करती हैं, भावना पर आधारित कार्य केवल संयोगवश नैतिक औचित्य के अनुरूप होते हैं, जबकि कर्तव्य से किया गया कार्य नैतिक सत्यनिष्ठा की गारंटी देता है। बर्नार्ड विलियम्स, माइकल स्टॉकर और विभिन्न अरस्तूवादी विचारकों जैसे आलोचक तर्क देते हैं कि नैतिक जीवन में अनिवार्य रूप से सद्गुणी भावनाएँ सम्मिलित होती हैं: करुणा, निष्ठा, कृतज्ञता और प्रेम। वे इंगित करते हैं कि एक मित्र जो आपसे अस्पताल में केवल इसलिए मिलने आता है क्योंकि यह "उसका कर्तव्य" है, वह नैतिक रूप से दरिद्र प्रतीत होता है। सद्गुण-नीतिशास्त्र के दृष्टिकोण से, विकसित भावनाएँ तर्कसंगत चिंतन को ढके बिना विश्वसनीय रूप से अच्छे कार्य को प्रेरित कर सकती हैं। कांट के समर्थक उत्तर देते हैं कि उनका सिद्धांत नैतिक नियम के आधार से संबंधित है, मानवीय स्नेह की अस्वीकृति से नहीं। भावनात्मक प्रेरणाओं की निंदा नहीं की जाती; वे बस नैतिक औचित्य के निर्धारण में निर्णायक नहीं होतीं। कानून, अधिकारों और सार्वभौमिकता से संबंधित एक आधुनिक नैतिक ढाँचे में, तर्कसंगत कर्तव्य सबसे स्पष्ट और सबसे स्थिर नींव प्रदान करता है।

अधि-नैतिक (मेटा-एथिकल) वाद-विवाद: फ़िलिपा फ़ुट और सापेक्ष आदेश

कांट ने दावा किया कि नैतिक नियम को तोड़ना अतार्किक है क्योंकि तर्क स्वयं नैतिक सिद्धांत के सार्वभौमिक आज्ञापालन की माँग करता है। फ़िलिपा फ़ुट ने इस दृष्टिकोण को चुनौती देते हुए यह ध्यान दिलाया कि शिष्टाचार के नियमों जैसे बहुत-से निरपेक्ष प्रतीत होने वाले आदेश न तो नैतिक होते हैं और न ही उनकी उपेक्षा करना अतार्किक होता है। फ़ुट के अनुसार, कांट भूलवश नैतिक अपेक्षाओं को ऐसे मानते हैं मानो उनमें एक विशेष, लगभग "जादुई", प्राधिकार हो जिसे केवल शुद्ध तर्क उचित नहीं ठहरा सकता। उनके लिए, नैतिक निर्णय हमें तर्कसंगत रूप से तभी बाँधते हैं जब हम उनके अंतर्निहित लक्ष्यों को अपनाते हैं; उस अर्थ में, नैतिकता सापेक्ष आदेशों की एक व्यवस्था के समान है। एक कांटीय उत्तर यह मानता है कि नैतिक नियम को अस्वीकार करना अतार्किक है क्योंकि यह सभी तर्कसंगत प्राणियों की समान स्थिति के ऊपर अपनी स्वयं की इच्छाओं को प्रतिष्ठित करता है। नैतिकता सार्वभौमिक सम्मान की मान्यता से उत्पन्न होती है: अपने लिए छूट का दावा करना इस समानता का खंडन करना है और इस प्रकार असंगत ढंग से तर्क करना है। शिष्टाचार के विपरीत, नैतिक नियम व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करने की तर्कसंगत माँग को व्यक्त करता है, और नैतिक वस्तुनिष्ठता के कांट के दृष्टिकोण को सुरक्षित रखता है।

सार्वभौमीकरण-योग्यता और तुच्छ सूत्र

एलेस्डेयर मैकिनटायर ने तर्क दिया कि कांट का सार्वभौमीकरण-योग्यता का परीक्षण तुच्छ या नैतिक रूप से अप्रासंगिक सूत्रों की अनुमति देता है। "सोमवार को सीपियाँ (मसल्स) खाओ" या "एक को छोड़कर सभी वचन निभाओ" जैसे सूत्र भले ही अंतर्विरोध उत्पन्न न करें, फिर भी स्पष्ट रूप से नैतिक प्रतीत नहीं होते। साथ ही, कुछ वास्तव में अच्छे कार्य — जैसे किसी धनी व्यक्ति द्वारा उदारतापूर्वक दान देना — किसी भी कठोर अर्थ में सार्वभौमिक नहीं बनाए जा सकते, फिर भी उन्हें नैतिक माना जाता है। कांटीय दार्शनिक उत्तर देते हैं कि निरपेक्ष आदेश का दूसरा सूत्रीकरण ऐसी तुच्छताओं को छाँट देता है। किसी सूत्र का सार्वभौमीकरण-योग्य होना *और* व्यक्तियों के प्रति सम्मान पर आधारित होना, दोनों आवश्यक हैं। नैतिक विषय-वस्तु से रहित नियम, या वे नियम जो मनमाने ढंग से कर्ता को विशेषाधिकार देते हैं, इस गहरे परीक्षण में विफल हो जाते हैं। इसलिए, केवल वे सार्वभौमिक सिद्धांत ही वास्तविक नैतिक कर्तव्य माने जाते हैं जो मानवता का स्वयं में साध्य के रूप में सम्मान करते हैं।

नैतिक और राजनीतिक विरासत

कांट का नीतिशास्त्र स्वायत्तता, तर्क और कर्तव्य को ज्ञानोदय की एक एकीकृत दृष्टि में पिरोता है। नैतिक रूप से, स्वायत्तता तर्कसंगत संकल्प द्वारा स्व-विधायन है। राजनीतिक रूप से, यह नागरिकता और अधिकारों का आधार बन जाती है: व्यक्ति केवल उन्हीं कानूनों से बँधे होते हैं जिनका वे सह-विधायकों के रूप में तर्कसंगत रूप से अनुमोदन कर सकते हैं। ऐतिहासिक रूप से, कांट का चिंतन आधुनिक मानवाधिकार सिद्धांतों का समर्थन करता है और कानून तथा पारस्परिक सम्मान द्वारा शासित एक वैश्विक संघ के उनके आदर्श को आधार देता है — जो संयुक्त राष्ट्र के पीछे निहित विचार का एक प्रारंभिक अग्रदूत है। व्यक्तिगत नैतिकता और राजनीतिक दर्शन के इस सम्मिलन के माध्यम से, कांट की विरासत तर्क में ज्ञानोदय के विश्वास को एक ऐसे सार्वभौमिक नैतिक नियम तक विस्तारित करती है जो व्यक्तिगत आचरण और वैश्विक न्याय की खोज, दोनों का मार्गदर्शन करता है।

मूल संदेश:

कांट के लिए, **स्वायत्तता नैतिकता का सार है**।

स्वतंत्रता बंधन का अभाव नहीं, बल्कि उस नैतिक नियम का आज्ञापालन है जिसे हम तर्क के माध्यम से स्वयं को देते हैं।

यह प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक क्षेत्र का एक साथ **प्रजा और विधायक** बनाता है।

तर्क में आस्था, मानवता के प्रति सम्मान और भीतर के नैतिक नियम के संयोग के माध्यम से, कांट ने एक ऐसा नीतिशास्त्र स्थापित किया जो **ज्ञानोदय के स्वप्न** को परिभाषित करता है — एक ऐसा विश्व जहाँ तर्कसंगत प्राणी अपने स्वयं के बनाए नियमों के अधीन स्वयं में साध्य के रूप में जीते हैं।

"दो वस्तुएँ मन को सदैव नए और बढ़ते हुए विस्मय और श्रद्धा से भर देती हैं:

मेरे ऊपर तारों भरा आकाश और मेरे भीतर नैतिक नियम।" — *इमैनुएल कांट*

1.9 कांट का सामाजिक और राजनीतिक दर्शन

कांट का सामाजिक और राजनीतिक दर्शन ज्ञानोदय के केंद्रीय आदर्शों—तर्क में आस्था, बौद्धिक परिपक्वता और स्वयं सोचने का साहस—को राजनीतिक जीवन के संगठन तक विस्तारित करता है। उनके लिए, स्वतंत्रता का अर्थ है किसी अन्य व्यक्ति के मनमाने संकल्प के अधीन होने से मुक्ति, परंतु इस स्वतंत्रता का मूल्य तभी है जब यह एक सार्वभौमिक नियम के अंतर्गत अन्य सभी की समान स्वतंत्रता के साथ सह-अस्तित्व में हो। जिस प्रकार नैतिक स्वायत्तता तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति उन तर्कसंगत नियमों के अनुसार कार्य करते हैं जिन्हें वे स्वयं को देते हैं, उसी प्रकार एक न्यायपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को भी अपनी संस्थाओं में तर्क को मूर्त रूप देना चाहिए। इसलिए कांट अपने राजनीतिक चिंतन को प्राकृतिक विधि और सामाजिक अनुबंध की परंपराओं के भीतर स्थापित करते हैं, फिर भी अपने नैतिक दर्शन के माध्यम से उन्हें रूपांतरित कर देते हैं: प्रत्येक व्यक्ति, केवल तर्कसंगत होने के कारण, स्वतंत्रता का एक जन्मजात अधिकार रखता है और उसके अनुरूप यह कर्तव्य भी कि वह प्राकृतिक अवस्था को छोड़कर एक विधिसम्मत नागरिक अवस्था में प्रवेश करे जहाँ अधिकारों को सुरक्षित किया जा सके। स्वतंत्रता सरकार का अभाव नहीं, बल्कि वह तर्कसंगत ढाँचा है जो पारस्परिक स्वतंत्रता को संभव बनाता है; राज्य बाहरी कार्यों को सीमित कर सकता है, परंतु केवल प्रत्येक व्यक्ति की प्रभुत्व से स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए। नैतिक रूप से आधारित, कानून-शासित राजनीतिक समुदाय की यह दृष्टि *मेटाफ़िज़िक्स ऑफ़ मॉरल्स* के पहले भाग, *डॉक्ट्रिन ऑफ़ राइट* में सबसे पूर्ण रूप से विकसित हुई है, और उनके राजनीतिक निबंधों जैसे *व्हाट इज़ एनलाइटनमेंट?*, *थ्योरी एंड प्रैक्टिस* और *टुवर्ड पर्पेचुअल पीस* द्वारा समृद्ध की गई है।

राजनीतिक दर्शन का स्थान

कांट अपने राजनीतिक सिद्धांत को अपने व्यापक व्यावहारिक दर्शन के भीतर स्थापित करते हैं, जो स्वतंत्र मानवीय कार्य का मार्गदर्शन करने वाले तर्कसंगत सिद्धांतों से संबंधित है। *डॉक्ट्रिन ऑफ़ राइट* (अधिकार का सिद्धांत) और *डॉक्ट्रिन ऑफ़ वर्च्यू* (सद्गुण का सिद्धांत) के बीच उनका विभाजन मानवीय स्वतंत्रता के दो आयामों के बीच एक गहरे भेद को प्रतिबिंबित करता है। अधिकार का सिद्धांत बाहरी स्वतंत्रता से संबंधित है — कानून, अधिकारों और वैध बलप्रयोग का क्षेत्र — और यह केवल कार्यों के बाहरी स्वरूप पर तथा इस बात पर केंद्रित है कि क्या वे कार्य दूसरों की समान स्वतंत्रता के साथ सह-अस्तित्व में रह सकते हैं। यहाँ कार्यों के पीछे की प्रेरणाएँ अप्रासंगिक हैं। इसके विपरीत, सद्गुण का सिद्धांत आंतरिक स्वतंत्रता से संबंधित है — नैतिक चरित्र का विकास, कार्यों के पीछे की प्रेरणाएँ, और आत्म-संयम का विकास। इसलिए कांट के लिए, एक न्यायपूर्ण राजनीतिक राज्य को आंतरिक नैतिक प्रवृत्तियों का नहीं, बल्कि कार्यों का नियमन करना चाहिए; यह "हृदयों पर नहीं, कार्यों पर" शासन करता है। इसी

कारण, कानून में बलप्रयोग का उपयोग तब नैतिकता का उल्लंघन नहीं करता जब इसे अन्याय को रोकने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ऐसा बलप्रयोग केवल "स्वतंत्रता की बाधा में बाधा डालता है," और इस प्रकार उन विधिसम्मत परिस्थितियों को सुरक्षित रखता है जिनके अंतर्गत सभी की बाहरी स्वतंत्रता बनाए रखी जा सकती है।

राज्य के आधार के रूप में स्वतंत्रता

कांट इस बात पर बल देते हैं कि केवल एक ही जन्मजात मानवाधिकार है: स्वतंत्रता का अधिकार। वे प्रसन्नता, कल्याण या शुभ की किसी भी सामूहिक अवधारणा को राज्य के प्राधिकार की नींव के रूप में अस्वीकार करते हैं, क्योंकि ये अनुभवजन्य, परिवर्तनशील और अंततः पितृसत्तात्मक (पैटर्नलिस्टिक) होते हैं। एक शासक जो प्रसन्नता की कोई दृष्टि थोपता है, वह नागरिकों के साथ अपने उद्देश्य स्वयं चुनने में सक्षम स्वायत्त वयस्कों के बजाय नाबालिगों जैसा व्यवहार करता है। इसलिए कांट राजनीतिक वैधता को अधिकार के सार्वभौमिक सिद्धांत पर आधारित करते हैं: कोई कार्य तभी विधिसम्मत है जब वह एक सार्वभौमिक नियम के अंतर्गत सभी की स्वतंत्रता के साथ सह-अस्तित्व में रह सके। राज्य का उद्देश्य स्वतंत्रता को सीमित करना नहीं, बल्कि उसके विधिसम्मत प्रयोग की परिस्थितियों को सुरक्षित करना है। हानिकारक कार्यों को प्रतिबंधित करने वाले कानून "सभी के लिए समान स्वतंत्रता के अनुरूप अधिकतम स्वतंत्रता" की रक्षा करने का कार्य करते हैं। इसी नींव से कांट के मूल राजनीतिक सिद्धांत निकलते हैं: स्वतंत्रता, जिसे किसी दूसरे के मनमाने संकल्प से स्वाधीनता के रूप में समझा गया है; समानता, जो कानून के समक्ष समान स्थिति और कानूनी बलप्रयोग का उपयोग करने की समान क्षमता है; और स्वाधीनता, जो उन व्यक्तियों की स्थिति है जो केवल उन्हीं कानूनों का पालन करते हैं जिन्हें वे तर्कसंगत रूप से स्वयं के लिए विधायित कर सकते हैं। ये राजनीतिक आदर्श स्पष्ट रूप से उनके स्वायत्तता के नैतिक सिद्धांत की प्रतिध्वनि हैं। फिर भी इन विचारों के कांट के अनुप्रयोग को उनके इस विश्वास ने सीमित कर दिया कि केवल आर्थिक रूप से स्वतंत्र पुरुष — वे जो "स्वयं अपने स्वामी" थे — ही सक्रिय नागरिक हो सकते हैं। महिलाओं, सेवकों और आश्रितों को "निष्क्रिय नागरिकों" की श्रेणी में रखा गया, जिनके पास पूर्ण राजनीतिक अधिकार नहीं थे, परंतु जो पूर्ण नैतिक समानता और अंततः नागरिक स्वाधीनता की ओर कार्य करने का अधिकार बनाए रखते थे।

सामाजिक अनुबंध

कांट की सामाजिक अनुबंध की समझ ऐतिहासिक नहीं, बल्कि विशुद्ध रूप से तर्क का एक विचार है, एक ऐसा मानक जिसके आधार पर कानूनों की वैधता मापी जाती है। कोई कानून तभी विधिसम्मत है जब पूरी जनता तर्कसंगत रूप से उस पर सहमति दे सके, और कांट इस बात पर बल देते हैं कि संप्रभु को "ऐसे विधान बनाना चाहिए मानो वे कानून पूरी जनता के संयुक्त संकल्प से उत्पन्न हो सकते थे।" इसलिए यह "मूल अनुबंध" किसी घटना का वर्णन नहीं करता, बल्कि एक मानकीय सिद्धांत के रूप में कार्य करता है जो संप्रभुता का मार्गदर्शन भी करता है और उसे नियंत्रित भी, तथा शासकों को सामान्य इच्छा के प्रतिनिधियों के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य करता है। इस संबंध में, कांट स्वयं को हॉब्स या लॉक की तुलना में रूसो के अधिक निकट रखते हैं, और राजनीतिक प्राधिकार

को स्वार्थ या पारस्परिक लाभ पर नहीं, बल्कि व्यक्तियों की सार्वभौमिक स्वतंत्रता पर आधारित करते हैं। चूँकि केवल नागरिक अवस्था ही संपत्ति, शांति और न्याय को सुरक्षित कर सकती है, इसलिए व्यक्ति तर्कसंगत रूप से समाज में प्रवेश करने के लिए बाध्य हैं; इस विधिसम्मत अवस्था की ओर बलप्रयोग वैध है क्योंकि यह केवल उसी को वास्तविक रूप देता है जिसकी माँग उनका अपना तर्कसंगत संकल्प पहले से करता है।

गणतंत्र, ज्ञानोदय और लोकतंत्र

कांट का प्रसिद्ध निबंध *व्हाट इज़ एनलाइटनमेंट?* ज्ञानोदय को अपने स्वयं के तर्क का उपयोग करने के साहस के रूप में परिभाषित करता है, और यही माँग राजनीति के प्रति उनके दृष्टिकोण को आकार देती है। एक परिपक्व जनता को विचार, भाषण और लेखन की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए — एक ऐसी स्वतंत्रता जिसे वे "जनता के अधिकारों का एकमात्र रक्षा-कवच (पैलेडियम)" कहते हैं। वे तर्क के *निजी* उपयोग, जो किसी विशिष्ट संस्थागत भूमिका के भीतर किया जाता है जैसे आदेशों का पालन करता सैनिक, और तर्क के *सार्वजनिक* उपयोग, जो व्यक्तियों द्वारा विद्वानों या नागरिकों के रूप में विश्व को संबोधित करते हुए किया जाता है, के बीच भेद करते हैं। पहले को व्यवस्थित संचालन के लिए प्रतिबंधित किया जा सकता है, परंतु दूसरे को सदैव स्वतंत्र रहना चाहिए। कांट के लिए, एक स्वतंत्र सार्वजनिक क्षेत्र राजनीतिक प्रगति के लिए अपरिहार्य है, फिर भी इसका स्वतः अर्थ प्रत्यक्ष लोकतंत्र नहीं है। उनका आदर्श राज्य एक गणतंत्र है, जिसे केवल लोकप्रिय शासन से नहीं, बल्कि विधायी और कार्यकारी शक्तियों के पृथक्करण तथा जनता के संयुक्त संकल्प को प्रतिबिंबित करने वाले कानूनों के माध्यम से शासन द्वारा परिभाषित किया जाता है। ऐसा गणतंत्र संवैधानिक राजतंत्र का रूप भी ले सकता है, यदि शासक मनमाने संकल्प के बजाय कानून के माध्यम से शासन करता हो। कांट ने प्रतिनिधि सरकार का समर्थन किया, यह मानते हुए कि जो नागरिक युद्ध की लागत वहन करते हैं, वे उसे चुनने की सबसे कम संभावना रखते हैं, और इसलिए गणतंत्रात्मक संविधान स्वाभाविक रूप से शांति को बढ़ावा देते हैं।

संपत्ति, अनुबंध और अधिकार

कांट *डॉक्ट्रिन ऑफ़ राइट* का आरंभ संपत्ति से करते हैं क्योंकि बाहरी स्वामित्व स्वतंत्रता के जन्मजात अधिकार की पहली व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। किसी वस्तु का विधिसम्मत स्वामी होने का अर्थ है उसे इस प्रकार धारण करना कि आपकी सहमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसका उपयोग आपके साथ अन्याय हो। फिर भी इस प्रकार की सुरक्षित, पारस्परिक मान्यता विशुद्ध प्राकृतिक अवस्था में असंभव है, जहाँ दावों की गारंटी देने के लिए कोई साझा प्राधिकार विद्यमान नहीं है। सच्चे स्वामित्व — जिसे कांट "बोधगम्य स्वामित्व" (इंटेलिजिबल पज़ेशन) कहते हैं — के लिए एक नागरिक राज्य आवश्यक है जो कानून का सार्वजनिक ढाँचा प्रदान कर सके। इसी कारण, व्यक्तियों का यह कर्तव्य है कि वे एक राजनीतिक समुदाय में प्रवेश करें, क्योंकि केवल वहीं संपत्ति, अनुबंध और पारस्परिक अधिकार साकार हो सकते हैं। कांट तीन प्रकार के अधिकारों में भेद करते हैं: किसी वस्तु पर अधिकार, अर्थात् संपत्ति; किसी दूसरे के कार्य पर अधिकार, जो अनुबंधों का आधार बनता है; और किसी व्यक्ति पर वस्तु-सदृश

अधिकार, जो विवाह, माता-पिता होने और सेवा के कानूनी रूप से संरचित संबंधों को समाहित करता है। अनुबंधात्मक संबंधों में, प्रत्येक पक्ष दूसरे का उपयोग एक साधन के रूप में करता है, परंतु पारस्परिक सहमति और व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति के माध्यम से उसका साध्य के रूप में सम्मान भी करता है। विवाह को, जिसे नैतिक के बजाय कानूनी रूप से समझा गया है, कांट एक पारस्परिक स्वामित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो साथियों के बीच समानता को पुनर्स्थापित करता है, यद्यपि लिंग के बारे में उनकी अपनी मान्यताएँ स्पष्ट रूप से इस समानता को पूर्णतः साकार करने की उनकी क्षमता को सीमित करती हैं।

विद्रोह और क्रांति

कांट हिंसक विद्रोह को अस्वीकार करते हैं क्योंकि वे इसे स्व-विरोधी मानते हैं: राज्य सार्वजनिक कानून का मूर्त रूप है, और उसे उखाड़ फेंकने के अधिकार का दावा करना एक साथ उस कानून के अधीन होने और उससे मुक्त होने, दोनों का दावा करना है। निरंकुश सरकारें भी, सिद्धांततः, इस विचार से बँधी हैं कि शासकों को ऐसे विधान बनाना चाहिए मानो वे जनता के संयुक्त संकल्प को व्यक्त कर रहे हों। जहाँ कांट क्रांति के अधिकार को नकारते हैं, वहीं वे सार्वजनिक आलोचना के अधिकार का दृढ़ता से समर्थन करते हैं, और नागरिकों से आग्रह करते हैं कि वे तर्क के स्वतंत्र उपयोग के माध्यम से अन्यायपूर्ण कानूनों को चुनौती दें। वे निष्क्रिय प्रतिरोध की अनुमति देते हैं, जैसे अन्याय के साथ सहयोग करने से इनकार करना, परंतु सक्रिय विद्रोह का निषेध करते हैं। फिर भी वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इतिहास कभी-कभी उथल-पुथल के माध्यम से आगे बढ़ता है। एक क्रांति, एक बार सफल होकर और एक नई विधिसम्मत व्यवस्था स्थापित करने में सक्षम होकर, *पूर्वव्यापी रूप से* वैध बन जाती है। कांट ने प्रसिद्ध रूप से फ़्रांसीसी क्रांति के प्रति जन-सहानुभूति को उसकी हिंसा के अनुमोदन के रूप में नहीं, बल्कि इस बात के प्रमाण के रूप में देखा कि समग्र मानवता स्वतंत्रता को महत्त्व देने लगी थी — जो, उनके विश्वास में, तर्क के ऐतिहासिक विकास में नैतिक प्रगति का एक संकेत था।

दंड

कांट का दंड का विवरण एक कठोर प्रतिशोधवादी ढाँचे पर आधारित है: दंड को केवल अपराधी के दोष द्वारा उचित ठहराया जाना चाहिए, किसी व्यापक सामाजिक लक्ष्य जैसे निवारण, सुधार या उपयोगितावादी लाभ द्वारा नहीं। किसी को उदाहरण प्रस्तुत करने या दक्षता के लिए दंडित करना उस व्यक्ति के साथ केवल एक साधन के रूप में व्यवहार करना होगा, जो मानवीय गरिमा के उसी सिद्धांत का उल्लंघन है जो कांट के नैतिक सिद्धांत का आधार है। फिर भी, कांट के लिए, प्रतिशोध विधिसम्मत व्यवस्था की सुरक्षा बनाए रखने में दंड की भूमिका को अनिवार्यतः बाहर नहीं करता; बल्कि, जब गलत करने वालों को इसलिए दंडित किया जाता है क्योंकि वे उसके पात्र हैं, तो न्याय की स्थिरता स्वाभाविक रूप से आ जाती है। उनका सबसे विवादास्पद दावा यह है कि हत्या का दंड मृत्यु होना चाहिए — प्रतिशोध की भावना या सामाजिक उपयोगिता के कार्य के रूप में नहीं, बल्कि कठोर समतुल्यता के विषय के रूप में, जो एकमात्र ऐसी प्रतिक्रिया है जो पीड़ित और अपराधी, दोनों के तर्कसंगत कर्तृत्व का सम्मान

करती है। एक नागरिक अवस्था में, तर्कसंगत प्राणी अधिकार की ऐसी व्यवस्था का अंतर्निहित रूप से संकल्प करते हैं जब वे उन कानूनों का अनुमोदन करते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को उन सिद्धांतों के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं जिन पर वह कार्य करना चुनता है।

अंतरराष्ट्रीय संबंध और शांति की खोज

अंतरराष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में, कांट तर्क देते हैं कि राज्य, प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों की तरह, संभावित संघर्ष की स्थिति में रहते हैं जब कोई सर्वोपरि कानूनी प्राधिकार उनकी अंतःक्रियाओं को शासित नहीं करता। इसलिए शांति को केवल सद्भावना द्वारा सुरक्षित नहीं किया जा सकता, बल्कि विधिसम्मत व्यवस्थाओं के माध्यम से संस्थागत रूप दिया जाना चाहिए। कांट "स्थायी शांति" के लिए तीन आवश्यक शर्तें रेखांकित करते हैं: राज्यों के भीतर गणतंत्रात्मक संविधान, स्वतंत्र राज्यों का एक स्वैच्छिक संघ, और सार्वभौमिक आतिथ्य का विश्वनागरिक अधिकार। मिलकर, ये *टुवर्ड पर्पेचुअल पीस* (1795) में उनकी राजनीतिक दृष्टि का मूल बनाते हैं। उनका विश्वास था कि युद्ध, यद्यपि दुखद हैं, कभी-कभी अनियंत्रित सत्ता के खतरों को उजागर करके शासकों पर स्थायी शांति के मूल्य को पहचानने का दबाव डालते हैं। समय के साथ, गणतंत्र — जिनके नागरिक युद्ध की वास्तविक लागत वहन करते हैं — स्वाभाविक रूप से सहयोगी अंतरराष्ट्रीय मानदंडों की ओर आकर्षित होते हैं। इस अर्थ में कांट का प्रस्ताव आधुनिक वैश्विक संगठनों, विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र, के नैतिक और संस्थागत ढाँचे का पूर्वानुमान करता है, जो इसी प्रकार अंतरराष्ट्रीय कानून और साझा नागरिक प्रतिबद्धताओं के माध्यम से शांति सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखता है।

विश्वनागरिक अधिकार

कांट का विश्वनागरिक अधिकार का विचार राज्यों के बीच संबंधों से आगे बढ़कर एक वैश्विक नैतिक समुदाय के सहभागियों के रूप में व्यक्तियों के अधिकारों तक विस्तृत है। इसका मूल आतिथ्य का सिद्धांत है: वह दावा जो कोई भी व्यक्ति विदेशी भूभाग में प्रवेश करने पर शांतिपूर्ण व्यवहार पाने के लिए कर सकता है, और जो इस तथ्य पर आधारित है कि सभी मनुष्य पृथ्वी की सतह को साझा करते हैं। इस अधिकार में बसने, प्रभुत्व जमाने या संसाधनों पर दावा करने का अधिकार सम्मिलित नहीं है, परंतु इसकी यह अपेक्षा अवश्य है कि यात्रियों, व्यापारियों और शरणार्थियों का स्वागत शत्रुता के बजाय सम्मान के साथ किया जाए। कांट के बाद के लेखन में यूरोपीय उपनिवेशवाद की तीखी आलोचना मिलती है, जिसे वे विश्वनागरिक अधिकार का उल्लंघन मानते थे क्योंकि इसने पूरे के पूरे लोगों को आर्थिक या राजनीतिक लाभ के साधन बना दिया। इस बात पर बल देकर कि किसी भी जनसमुदाय के साथ केवल साधन के रूप में व्यवहार नहीं किया जा सकता, कांट साम्राज्यवादी विस्तार पर नैतिक सीमाएँ लगाते हैं और सभी मानव समुदायों की गरिमा की पुष्टि करते हैं।

सामाजिक दर्शन

कांट का सामाजिक दर्शन स्वतंत्रता और अधिकार के उनके विचारों को उन क्षेत्रों तक विस्तारित करता है जो न तो पूरी तरह निजी हैं और न ही पूरी तरह राजनीतिक — जैसे पारिवारिक संरचनाएँ, आर्थिक जीवन, धार्मिक समुदाय और शैक्षिक संस्थाएँ। ये सामाजिक क्षेत्र इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ये उन तरीकों को आकार देते हैं जिनसे व्यक्ति राज्य से स्वतंत्र रूप से एक-दूसरे से संबंध रखते हैं। कांट ने आर्थिक स्वतंत्रता का समर्थन किया और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित किया, फिर भी उन्होंने यह भी माना कि नागरिकों के हितकारिता (परोपकार) के कर्तव्य हैं और राज्य स्वतंत्रता की मूल परिस्थितियों को बनाए रखने के लिए आवश्यक होने पर सार्वजनिक कल्याण का समन्वय कर सकता है। शिक्षा और धर्म में, उन्होंने कल्पना की कि नैतिक प्रगति कठोर धार्मिक सिद्धांतों से नहीं, बल्कि ऐसे नैतिक समुदायों से उत्पन्न होगी जो तर्कसंगत समझ के माध्यम से सद्गुण का विकास करते हैं। साथ ही, इन क्षेत्रों में कांट के चिंतन उनके युग की सीमाओं को भी दर्शाते हैं, जिनमें लिंग और नस्ल के बारे में ऐसी मान्यताएँ सम्मिलित हैं जो मानवीय स्वतंत्रता के उनके सार्वभौमिक सिद्धांतों के साथ असहज रूप से मेल खाती हैं। समकालीन व्याख्याकार प्रायः उनके प्रागनुभविक (अ प्रायोरी) सिद्धांतों — स्वायत्तता, समानता और सम्मान — के स्थायी मूल्य को उन त्रुटिपूर्ण अनुभवजन्य निर्णयों से अलग करते हैं जो उनके अपने ऐतिहासिक संदर्भ में उनके साथ जुड़े हुए थे।

मूल संदेश: नीतिशास्त्र और राजनीति में स्वायत्तता

नैतिकता और राजनीति, दोनों में, कांट का एकीकृत करने वाला विचार **तर्क के माध्यम से स्वतंत्रता** है। नैतिक स्वायत्तता (नैतिक नियम के अंतर्गत आंतरिक स्वतंत्रता) और राजनीतिक स्वायत्तता (न्यायपूर्ण कानून के अंतर्गत बाहरी स्वतंत्रता) एक ही ज्ञानोदय-आदर्श के दो रूप हैं।

न्यायपूर्ण राज्य राजनीतिक समुदाय में साकार हुआ **"साध्यों का राज्य"** बन जाता है — एक ऐसी व्यवस्था जहाँ लोग सत्ता के उपकरणों के रूप में नहीं, बल्कि अपने स्वयं के बनाए तर्कसंगत कानूनों से बँधे **स्व-विधायी नागरिकों** के रूप में जीते हैं।

इन सिद्धांतों के माध्यम से, कांट ने ज्ञानोदय का सबसे स्थायी राजनीतिक आदर्श प्रस्तुत किया: स्थायी शांति की ओर अग्रसर **स्वतंत्र, समान और कानून-शासित व्यक्तियों का एक विश्व**।

1.10 सारांश

यह अध्याय विद्यार्थियों को उस सामाजिक और बौद्धिक विश्व से परिचित कराता है जिसने आधुनिक राजनीति को संभव बनाया, और उसके भीतर इमैनुएल कांट के अनूठे योगदान से भी। यह उन प्रमुख रूपांतरणों को रेखांकित करने से आरंभ होता है जिन्होंने आधुनिक समाज को आकार दिया — राष्ट्र-राज्यों का उदय, पूँजीवाद और औद्योगीकरण का प्रसार, शहरों की ओर बड़े पैमाने पर प्रवासन, और पारंपरिक धार्मिक प्राधिकार का दुर्बल होना। ये परिवर्तन हर जगह एक ही तरह से घटित नहीं हुए, और "बहुविध आधुनिकताओं" का विचार हमें यह देखने में सहायता करता

है कि समाज अलग-अलग मार्गों से आधुनिक जीवन में प्रवेश करते हैं। इसके बाद अध्याय ज्ञानोदय की ओर मुड़ता है, जो एक ऐसा आंदोलन था जिसने लोगों को आलोचनात्मक रूप से सोचने, विरासत में मिले विश्वासों पर प्रश्न उठाने और सार्वजनिक जीवन के आधार के रूप में तर्क पर निर्भर रहने के लिए प्रोत्साहित किया।

इस पृष्ठभूमि में, कांट का नैतिक दर्शन स्वतंत्रता, समानता और उत्तरदायित्व के आधुनिक विचारों को आकार देने में एक निर्णायक क्षण के रूप में प्रकट होता है। उनका नीतिशास्त्र सिखाता है कि केवल वही कार्य सच्चे अर्थों में नैतिक हैं जो कर्तव्य से, नैतिक नियम के प्रति सम्मान के कारण किए जाते हैं। निरपेक्ष आदेश — विशेष रूप से अपने कार्यों का सार्वभौमीकरण करने और प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं में साध्य मानने की माँगें — मानवीय गरिमा की आधुनिक समझ की नींव बन जाता है। कांट एक तर्कसंगत सामाजिक अनुबंध के विचार के माध्यम से नैतिकता को राजनीति से जोड़ते हैं: सरकारें तभी वैध हैं जब वे जनता के संयुक्त और तर्कसंगत संकल्प का प्रतिनिधित्व कर सकें। गणतंत्रात्मक शासन, सार्वजनिक तर्क की स्वतंत्रता और शक्तियों के पृथक्करण का उनका समर्थन उनके इस विश्वास को प्रतिबिंबित करता है कि राजनीतिक प्राधिकार को नागरिकों की स्वायत्तता का सम्मान करना चाहिए।

यह अध्याय संपत्ति, अनुबंधों, दंड और विद्रोह पर कांट के विचारों की भी चर्चा करता है। वे तर्क देते हैं कि अधिकार केवल एक विधिसम्मत नागरिक अवस्था के भीतर ही सार्थक बनते हैं, और दंड सामाजिक उपयोगिता के बजाय कठोरता से दोष पर आधारित होना चाहिए। यद्यपि वे हिंसक क्रांति की निंदा करते हैं, फिर भी वे सार्वजनिक आलोचना और नैतिक प्रगति के महत्त्व पर बल देते हैं। वैश्विक स्तर पर, कांट की स्थायी शांति की दृष्टि गणतंत्रात्मक संविधानों, राज्यों के एक संघ और आतिथ्य के विश्वनागरिक अधिकार पर आधारित है — ऐसे विचार जो अंतरराष्ट्रीय कानून और मानवाधिकारों पर समकालीन वाद-विवादों का पूर्वानुमान करते हैं। अध्याय कांट के व्यापक सामाजिक दर्शन, जिसमें परिवार, धर्म, बाज़ारों और शिक्षा पर उनके चिंतन सम्मिलित हैं, के परीक्षण के साथ समाप्त होता है। यद्यपि उनके कुछ अनुभवजन्य विचार उनके समय के पूर्वाग्रहों को प्रतिबिंबित करते हैं, फिर भी स्वायत्तता, गरिमा और सार्वभौमिक स्वतंत्रता के मूल सिद्धांत आधुनिक राजनीतिक और नैतिक चिंतन को आज भी आकार देते हैं।

1.11 शब्दावली

- **स्वायत्तता (ऑटोनॉमी):** बाहरी दबाव या इच्छा द्वारा नियंत्रित होने के बजाय, तर्क का उपयोग करके स्वयं को नैतिक नियम देने की व्यक्ति की क्षमता। कांट के लिए, स्वायत्तता स्वतंत्रता का सार है।
- **निरपेक्ष आदेश (कैटेगोरिकल इम्पेरेटिव):** कांट का केंद्रीय नैतिक सिद्धांत: केवल उन्हीं तरीकों से कार्य करो जिनके बारे में तुम उचित रूप से चाह सको कि अन्य सभी भी वैसे ही कार्य करें, और लोगों के साथ सदैव स्वयं में साध्य के रूप में व्यवहार करो, कभी भी केवल साधन के रूप में नहीं।

- **ज्ञानोदय (एनलाइटनमेंट):** एक बौद्धिक आंदोलन जिसने व्यक्तियों को स्वयं सोचने, प्राधिकार पर प्रश्न उठाने और तर्क पर निर्भर रहने के लिए प्रोत्साहित किया। कांट ने इसे "अपनी स्वयं की बुद्धि का उपयोग करने का साहस" कहा।

- **बहुविध आधुनिकताएँ (मल्टीपल मॉडर्निटीज़):** यह विचार कि आधुनिक समाज हर जगह एक जैसा नहीं दिखता। विभिन्न देश और संस्कृतियाँ आधुनिकीकरण का अनुभव अपने-अपने तरीकों से करती हैं, केवल पश्चिम की नकल करके नहीं।

- **अधिकार का सिद्धांत (डॉक्ट्रिन ऑफ़ राइट):** कांट के राजनीतिक दर्शन का वह भाग जो **बाहरी स्वतंत्रता** से संबंधित है — कानून, अधिकार, संपत्ति, बलप्रयोग और राज्य।

- **सद्गुण का सिद्धांत (डॉक्ट्रिन ऑफ़ वर्च्यू):** कांट के व्यावहारिक दर्शन का वह भाग जो **आंतरिक स्वतंत्रता** से संबंधित है — प्रेरणाएँ, चरित्र और कर्तव्य से कार्य करना।

- **अधिकार का सार्वभौमिक सिद्धांत:** राजनीतिक न्याय के लिए कांट की कसौटी: कोई कार्य तब उचित है जब वह एक सार्वभौमिक नियम के अंतर्गत सभी की स्वतंत्रता के साथ सह-अस्तित्व में रह सके।

- **सामाजिक अनुबंध (कांटीय):** कोई ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि एक तर्कसंगत विचार: कानून तभी वैध हैं जब पूरी जनता उचित रूप से उन पर सहमति दे सके।

- **गणतंत्रात्मक सरकार:** शक्तियों के पृथक्करण, कानून के शासन और प्रतिनिधित्व पर आधारित सरकार। कांट के लिए, गणतंत्र का पूर्ण लोकतंत्र होना आवश्यक नहीं है, परंतु उसे जनता के संयुक्त संकल्प को प्रतिबिंबित करना चाहिए।

- **तर्क का सार्वजनिक उपयोग:** समाज से संबंधित विषयों पर एक नागरिक या विद्वान के रूप में खुलकर तर्क करना। कांट तर्क देते हैं कि इसे सदैव स्वतंत्र रहना चाहिए।

- **तर्क का निजी उपयोग:** अपनी संस्थागत भूमिका (जैसे सैनिक, कर अधिकारी) के भीतर तर्क करना, जहाँ व्यवस्था के लिए आज्ञापालन आवश्यक हो सकता है।

- **स्वतंत्रता का जन्मजात अधिकार:** कांट का यह विश्वास कि प्रत्येक मनुष्य केवल एक प्राकृतिक अधिकार के साथ जन्म लेता है: किसी दूसरे के मनमाने संकल्प द्वारा नियंत्रित होने से स्वाधीनता।

- **संपत्ति (विधिसम्मत स्वामित्व):** एक कानूनी संबंध जो किसी व्यक्ति को किसी वस्तु पर अपना दावा करने देता है, ताकि अन्य लोग उसकी सहमति के बिना उसका उपयोग न कर सकें। सच्ची संपत्ति केवल सार्वजनिक कानून वाले नागरिक राज्य में ही विद्यमान होती है।

- **अनुबंध:** एक विधिसम्मत समझौता जिसमें दो व्यक्ति अपने-अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे के कार्यों का उपयोग करते हैं, परंतु ऐसा पारस्परिक सहमति के माध्यम से करते हैं।

- **नागरिक अवस्था:** एक राज्य के अधीन जीने की विधिसम्मत अवस्था, जहाँ अधिकार, संपत्ति और सुरक्षा संभव हो जाते हैं।

- **प्रतिशोधवाद (रेट्रिब्यूटिविज़्म):** यह दृष्टिकोण कि दंड केवल व्यक्ति के दोष पर आधारित होना चाहिए, निवारण या सुधार जैसे सामाजिक लाभों पर नहीं।

- **स्थायी शांति (पर्पेचुअल पीस):** (1) गणतंत्रात्मक सरकारों, (2) राज्यों के एक संघ, और (3) विश्वनागरिक अधिकारों पर आधारित स्थायी वैश्विक शांति की कांट की दृष्टि।

- **विश्वनागरिक अधिकार (कॉस्मोपॉलिटन राइट):** वे अधिकार जो लोगों को विश्व के नागरिकों के रूप में प्राप्त हैं — विशेष रूप से आतिथ्य, शांतिपूर्ण अंतःक्रिया और बलप्रयोग-रहित यात्रा का अधिकार।

- **आतिथ्य (कांटीय):** किसी भी व्यक्ति का यह अधिकार कि किसी दूसरे के भूभाग पर शांतिपूर्वक पहुँचने पर उसके साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार न किया जाए।

- **राज्यों का संघ:** राज्यों के एक स्वैच्छिक संघ या संगठन का कांट का विचार, जो सामूहिक रूप से युद्ध को रोकने के लिए प्रतिबद्ध हों।

- **निष्क्रिय प्रतिरोध:** अन्यायपूर्ण कानूनों या शासकों का अहिंसक विरोध। कांट इसकी अनुमति देते हैं, यद्यपि वे हिंसक क्रांति का निषेध करते हैं।

- **सक्रिय नागरिकता:** मतदान और विधि-निर्माण के माध्यम से पूर्ण राजनीतिक भागीदारी। कांट ने इसे आर्थिक रूप से स्वतंत्र पुरुषों तक सीमित रखा, जो उनके समय के पूर्वाग्रहों को प्रतिबिंबित करता है।

- **नैतिक नियम:** कर्तव्य के वे सार्वभौमिक सिद्धांत जो तर्क प्रत्येक तर्कसंगत प्राणी को देता है। यह भीतर से नैतिक कार्य का मार्गदर्शन करता है।

- **प्राकृतिक अवस्था (राज्यों के बीच):** वह स्थिति जिसमें राज्य किसी अंतरराष्ट्रीय प्राधिकार के बिना विद्यमान रहते हैं — जिससे असुरक्षा और युद्ध की निरंतर संभावना उत्पन्न होती है।

1.12 अभ्यास प्रश्न

1. हॉल और गीबेन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों में आधुनिकता के ऐतिहासिक निर्माण की व्याख्या किस प्रकार करते हैं?
2. आधुनिकता को एक निश्चित ऐतिहासिक चरण के बजाय एक सतत और बहु-कारणात्मक प्रक्रिया के रूप में क्यों वर्णित किया जाता है?
3. आधुनिक समाज स्वयं की व्याख्या और स्वयं को आकार किस प्रकार देते हैं, इसे समझने में "विमर्शात्मक मोड़" का क्या महत्त्व है?
4. आधुनिकता के निर्माण में उपनिवेशवाद "पश्चिम और शेष विश्व" के निर्माण में किस प्रकार योगदान देता है?
5. अध्याय आधुनिकता के संरचनात्मक विश्लेषण (हॉल और गीबेन) से ज्ञानोदय के कांट के दार्शनिक विवरण की ओर क्यों मुड़ता है?
6. "स्वयं-आरोपित अपरिपक्वता" से कांट का क्या अभिप्राय है, और यह ज्ञानोदय के आदर्श-वाक्य *सपेरे औडे* से किस प्रकार संबंधित है?
7. कांट तर्क के सार्वजनिक और निजी उपयोगों के बीच भेद क्यों करते हैं, और ज्ञानोदय के लिए सार्वजनिक तर्क क्यों आवश्यक है?
8. स्वायत्तता से कांट का क्या अभिप्राय है, और निरपेक्ष आदेश नैतिक स्व-विधायन को किस प्रकार व्यक्त करता है?
9. कांट यह तर्क क्यों देते हैं कि नैतिक कार्य भावना या परिणाम के बजाय कर्तव्य पर आधारित होना चाहिए?
10. कांट का राजनीतिक दर्शन, विशेष रूप से न्यायपूर्ण राज्य और स्थायी शांति की उनकी दृष्टि में, स्वतंत्रता को सार्वभौमिक नियम से किस प्रकार जोड़ता है?

1.13 अतिरिक्त पठन सामग्री

- कांट. (1784) 'व्हाट इज़ एनलाइटनमेंट?' http://theliterarylink.com/kant.html पर उपलब्ध।
- एस. हॉल (1992) 'इंट्रोडक्शन', फ़ॉर्मेशन्स ऑफ़ मॉडर्निटी में, यू.के.: पॉलिटी प्रेस, पृष्ठ 1-16; बी. नेल्सन (2008) वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट. न्यूयॉर्क: पियर्सन लॉन्गमैन, पृ. 221-255. रॉल्स, जे. लेक्चर्स ऑन द हिस्ट्री ऑफ़ पॉलिटिकल फ़िलॉसफ़ी, लेक्चर्स ऑन रूसो, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृ.: 191-229.

इकाई–II: स्वच्छंदतावादी (रोमांटिक्स)

(a) ज्यां जैक्स रूसो: आधुनिक सभ्यता की आलोचना; असमानता की उत्पत्ति; प्राकृतिक अवस्था और अनुबंध; सामान्य इच्छा; लोकतंत्र और स्वशासन

2.1 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अंत तक विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. आधुनिक सभ्यता की रूसो की आलोचना और उनके इस दावे की व्याख्या करना कि समाज मनुष्यों की प्राकृतिक अच्छाई को भ्रष्ट कर देता है।
2. रूसो के अनुसार असमानता की उत्पत्ति का विश्लेषण करना, जिसमें सामाजिक और नैतिक विषमताएँ उत्पन्न करने में निजी संपत्ति की भूमिका भी सम्मिलित है।
3. रूसो के चिंतन में प्राकृतिक अवस्था की विशेषताओं का वर्णन करना, हॉब्स और लॉक से उसकी तुलना करते हुए, तथा प्राकृतिक स्वतंत्रता, समानता और जन्मजात करुणा को रेखांकित करते हुए।
4. प्राकृतिक अवस्था को छोड़ने के कारणों और एक नैतिक तथा राजनीतिक संरचना के रूप में सामाजिक अनुबंध के उद्भव का परीक्षण करना।
5. रूसो की स्वतंत्रता की अवधारणा की व्याख्या करना, जिसमें भौतिक और नैतिक स्वतंत्रता के बीच का भेद तथा यह भी सम्मिलित है कि कानून का पालन किस प्रकार स्वायत्तता को बढ़ा सकता है।
6. सामाजिक अनुबंध की संरचना और कार्य का वर्णन करना, जिसमें व्यक्तिगत अधिकारों का समष्टि को हस्तांतरण (एलियनेशन) और संप्रभु का निर्माण सम्मिलित है।
7. सामान्य इच्छा की अवधारणा का विश्लेषण करना, उसे सबकी इच्छा से अलग करते हुए, और उसके नैतिक तथा राजनीतिक महत्त्व की व्याख्या करना।
8. एक क्रियाशील सामान्य इच्छा की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करना, जिनमें राज्य का छोटा आकार, सापेक्ष समानता, नागरिक भागीदारी और नैतिक शिक्षा सम्मिलित हैं।
9. संप्रभु (विधायी प्राधिकार) और सरकार (कार्यकारी प्राधिकार) के बीच रूसो के भेद की व्याख्या करना, और यह स्पष्ट करना कि यह लोकप्रिय संप्रभुता को किस प्रकार बनाए रखता है।
10. नैतिक और राजनीतिक एकता को प्रोत्साहित करने में देशभक्ति, नागरिक सद्गुण और सामान्य इच्छा के बीच के संबंध का परीक्षण करना।

11. रूसो की सैद्धांतिक और व्यावहारिक चुनौतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना, जिनमें छोटे गणराज्यों की व्यवहार्यता, सर्वाधिकारवादी (टोटैलिटेरियन) व्याख्या का जोखिम और सामान्य इच्छा की अस्पष्टता सम्मिलित हैं।

12. रूसो को आधुनिक राजनीतिक चिंतन के भीतर स्थापित करना, यह दिखाते हुए कि उनके विचार किस प्रकार शास्त्रीय नीतिशास्त्र और आधुनिक सिद्धांत के बीच सेतु का कार्य करते हैं, तथा उदारवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता, समानता तथा नागरिक नैतिकता पर वाद-विवादों को प्रभावित करते हैं।

2.2 प्रस्तावना — आधुनिक चिंतन में रूसो का स्थान

जैसे ही हम इकाई I से आगे बढ़ते हैं, जहाँ हमने तर्क, स्वायत्तता और एक सार्वभौमिक नैतिक व्यवस्था में ज्ञानोदय की आस्था का अन्वेषण किया था—विशेष रूप से कांट जैसे विचारकों के माध्यम से—अब हम एक ऐसे व्यक्तित्व की ओर मुड़ते हैं जो उस संपूर्ण विश्वदृष्टि को अस्थिर कर देता है। इकाई II स्वच्छंदतावादियों (रोमांटिक्स) का परिचय कराती है, ऐसे विचारक जिन्होंने ज्ञानोदय के आत्मविश्वासी तर्कवाद पर यह याद दिलाकर प्रश्न उठाया कि मानव जीवन केवल तर्क से ही नहीं, बल्कि उतना ही भावना, कल्पना, भेद्यता और जीवित अनुभव से भी आकार लेता है। इस बदलाव के केंद्र में ज्यां जैक्स रूसो खड़े हैं, जिनकी आधुनिक सभ्यता की तीखी आलोचना ने यह तर्क दिया कि समाज हमें पूर्ण नहीं बनाता, बल्कि भ्रष्ट करता है। असमानता की उत्पत्ति को रेखांकित करके, प्राकृतिक अवस्था की पुनर्कल्पना करके और सामाजिक अनुबंध का एक मौलिक रूप से भिन्न संस्करण प्रस्तुत करके, रूसो ने राजनीतिक दर्शन को उस अंतराल का सामना करने के लिए विवश किया जो मनुष्य जो बन गए हैं और जो वे हो सकते थे, उनके बीच है। सामान्य इच्छा पर उनके विचार और लोकतंत्र तथा स्वशासन का उनका समर्थन आज भी सामूहिक स्वतंत्रता और राजनीतिक वैधता पर चर्चाओं को आकार देते हैं।

रूसो को **फ़्रांसीसी क्रांति का बौद्धिक जनक** और आधुनिकता का **अंतिम महान सामाजिक अनुबंध सिद्धांतकार**, दोनों के रूप में वर्णित किया जाता है। द *सोशल कॉन्ट्रैक्ट* में, वे राजनीतिक जीवन की केंद्रीय समस्या का समाधान करने का दावा करते हैं: मानवजाति "स्वतंत्र जन्म लेती है, फिर भी हर जगह ज़ंजीरों में जकड़ी हुई है।" यह विरोधाभास उनके चिंतन को परिभाषित करता है — यह प्रश्न कि स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बनी राजनीतिक व्यवस्था उसके बजाय मानवता को किस प्रकार दास बना देती है। यद्यपि लॉक जैसे पूर्ववर्ती विचारकों का मानना था कि स्वतंत्रता का विस्तार हो रहा है, रूसो दृढ़ता से कहते हैं कि आधुनिक लोग भी अस्वतंत्र बने हुए हैं। उनका दावा आरंभ में अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है, परंतु यह प्रचलित आशावाद को चुनौती देता है।

2.3 ज्ञानोदय का संदर्भ

रूसो के समकालीनों के लिए, यह दावा चौंकाने वाला था। **ज्ञानोदय** (लॉक से लेकर 19वीं शताब्दी तक) ने तर्क का उत्सव उस प्रकाश के रूप में मनाया जिसने मानवता को मुक्त किया। वॉल्टेयर और दिदरो जैसे विचारकों ने वैज्ञानिक और तर्कसंगत प्रगति को नैतिक और राजनीतिक स्वतंत्रता का पर्याय माना। रूसो के दावे ने उस आशावाद को उलट दिया, न केवल तर्क की मुक्तिदायी शक्ति पर प्रश्न उठाकर, बल्कि उस पर दासता का संदेह करके भी। उनके मौलिक रुख को केवल एक बौद्धिक विद्रोह के रूप में नहीं समझा जा सकता — यह स्वयं समाज के विरुद्ध एक गहन **भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक विद्रोह** को प्रतिबिंबित करता है। रूसो का दर्शन उनके आंतरिक जीवन से अविभाज्य है: वे व्यक्तिगत रूप से अलगावग्रस्त, अति-संवेदनशील और व्यथित थे, और इस व्यक्तिगत अलगाव ने उनके राजनीतिक सिद्धांत को आकार दिया।

2.4 रूसो का जीवन और चरित्र

रूसो का जन्म **जिनेवा (1712–1778)** में एक कारीगर परिवार में हुआ। उनके जन्म के समय उनकी माँ की मृत्यु ने उन्हें आजीवन अपराध-बोध और भावनात्मक अस्थिरता से भर दिया। मुख्यतः स्वाध्याय से शिक्षित, वे यूरोप भर में भटकते रहे और औपचारिक शिक्षा के बाहर विचारों को आत्मसात करते रहे। उनकी प्रमुख रचनाएँ—*द फ़र्स्ट एंड सेकंड डिस्कोर्सेज़*, *द सोशल कॉन्ट्रैक्ट* और *एमील*—उनके राजनीतिक और शैक्षिक दर्शन का मूल बनीं।

1761 में *एमील* और *द सोशल कॉन्ट्रैक्ट* के प्रकाशन ने उन्हें प्रसिद्धि भी दिलाई और उत्पीड़न भी: दोनों रचनाओं पर प्रतिबंध लगाया गया और उन्हें जला दिया गया, और रूसो निर्वासन में भाग गए। एक समय दिदरो जैसे ज्ञानोदय विचारकों के बीच प्रशंसित रहे रूसो को बाद में बहिष्कृत कर दिया गया और वे **संदेह-विकृति (पैरानॉया) और निराशा** में डूब गए।

उनका जीवन ऐसे पीड़ादायक अंतर्विरोधों से भरा था जो उनके राजनीतिक सिद्धांत को समझाने में सहायक हैं। यद्यपि वे मानवता के प्रति गहरे प्रेम का दावा करते थे, फिर भी वे स्थायी मित्रताएँ निभाने में असमर्थ थे और अपने सबसे निकट के लोगों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। जहाँ *एमील* समर्पित बाल-देखभाल का समर्थन करती है, वहीं उन्होंने अपने ही बच्चों को अनाथालयों में छोड़ दिया। उन्होंने रंगमंच के नैतिक भ्रष्टाचार की निंदा की, फिर भी उसके आनंदों में लिप्त रहे। उन्होंने बौद्धिक अहंकार की भर्त्सना की, परंतु सार्वजनिक मान्यता के लिए लालायित रहे।

रूसो इन असंगतियों से पूरी तरह अवगत थे। *द कन्फ़ेशन्स* में वे अनैतिक कार्यों के बावजूद स्वयं को नैतिक रूप से शुद्ध चित्रित करते हैं—ऑगस्टीन के विपरीत, जिन्होंने पाप को उजागर करने के लिए स्वीकारोक्ति की थी, रूसो ने अपनी आंतरिक अच्छाई को सिद्ध करने के लिए स्वीकारोक्ति की। **आंतरिक सद्गुण और बाहरी विफलता** के बीच का यह विरोधाभास उनके राजनीतिक चिंतन के केंद्रीय तनाव को प्रतिबिंबित करता है: कि सभ्य मनुष्य इसलिए बुरा व्यवहार नहीं करता कि वह स्वभाव से दुष्ट है, बल्कि इसलिए कि **समाज उसकी प्राकृतिक अच्छाई को**

दास बना लेता है। इस प्रकार उनका व्यक्तिगत विघटन, लघु रूप में, आधुनिक सभ्यता के भ्रष्टाचार का नाटकीय चित्रण करता है— जहाँ लोग बाहरी स्वतंत्रता और आंतरिक प्रामाणिकता, दोनों खो देते हैं।

2.5 स्वतंत्रता और असमानता की समस्या

सेकंड डिस्कोर्स ऑन द ओरिजिन ऑफ़ इनइक्वैलिटी में, रूसो **निजी संपत्ति** के जन्म को मानवीय दासता का आरंभ-बिंदु बताते हैं। प्रागैतिहासिक अवस्था में, सभी समान और स्वतंत्र थे; संपत्ति के साथ अमीर और गरीब, शासक और शासित का विभाजन आया। असमानता न केवल शक्तिशाली को प्रभुत्व जमाने देकर **राजनीतिक स्वतंत्रता** को नष्ट करती है, बल्कि हृदयों को ईर्ष्या, अहंकार और प्रतिस्पर्धा से भरकर **नैतिक स्वतंत्रता** को भी नष्ट करती है।

स्वयं तर्क, जिसकी ज्ञानोदय के विचारकों ने प्रशंसा की, भ्रष्ट हो जाता है: वह अहंकार और स्वार्थ का एक उपकरण बन जाता है। *फ़र्स्ट डिस्कोर्स* में, रूसो तर्क देते हैं कि कलाएँ और विज्ञान मानवता को मुक्त करने के बजाय, हमें अपनी ही दासता की प्रशंसा करना सिखाकर "हमारी ज़ंजीरों को सजाते हैं"। ज्ञान एक आभूषण बन जाता है जो नैतिक पतन को ढक देता है।

इस प्रकार, ज्ञानोदय की "प्रगति" मन को उसी प्रकार दास बनाती है जैसे राजतंत्र शरीर को दास बनाता है। सच्ची स्वतंत्रता के लिए **समाज का पुनर्निर्माण** आवश्यक है ताकि बाहरी राजनीतिक व्यवस्था आंतरिक अच्छाई का समर्थन करे। मात्र निजी सद्गुण एक ऐसी न्यायपूर्ण राज्य-व्यवस्था से अलग विद्यमान नहीं रह सकता जो नैतिक अभिव्यक्ति को संभव बनाती है। रूसो सभ्यता के शत्रु नहीं हैं—वे संपत्ति के पूर्ण उन्मूलन और आदिम स्वच्छंदतावाद, दोनों को अस्वीकार करते हैं—परंतु वे ऐसी सामाजिक संरचनाओं की माँग करते हैं जो समता को पुनर्स्थापित करें और अहंकार के बजाय करुणा को मानव जीवन की नींव बनाएँ।

2.6 रूसो और सामाजिक अनुबंध की परंपरा

रूसो **आधुनिक अनुबंध सिद्धांत की पराकाष्ठा** के रूप में खड़े हैं, जिन्होंने हॉब्स और लॉक का बौद्धिक ढाँचा विरासत में पाया, परंतु उसे मौलिक रूप से रूपांतरित कर दिया। उन्हीं की तरह, वे पूर्व-राजनीतिक "प्राकृतिक अवस्था" में व्यक्तियों की धारणा से आरंभ करते हैं और एक सामाजिक अनुबंध के माध्यम से समाज का निर्माण करते हैं। फिर भी रूसो इस मॉडल का उपयोग **ऐतिहासिक तथ्य के रूप में नहीं**, बल्कि **नैतिक कल्पना की एक पद्धति** के रूप में करते हैं—मानवीय भ्रष्टाचार की जड़ों को उजागर करने और एक न्यायपूर्ण समाज की कल्पना करने के एक तरीके के रूप में।

यद्यपि वे अपने युग की परिचित अनुबंधात्मक भाषा उधार लेते हैं, फिर भी रूसो का उद्देश्य उनके पूर्ववर्तियों से तीव्र रूप से भिन्न है। संपत्ति और सरकार की मौजूदा व्यवस्थाओं को उचित ठहराने के बजाय, जैसा लॉक ने किया था,

वे इस सिद्धांत का उपयोग **आधुनिक सभ्यता** और उसकी असमानताओं की **आलोचना करने** के लिए करते हैं। इस प्रकार उनका "अनुबंध" खोई हुई स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने का एक उपकरण बन जाता है—**इतिहास और दर्शन** को मिलाने वाला एक विचार-प्रयोग, जो यह समझाता है कि मानवता प्राकृतिक स्वतंत्रता से सामाजिक दासता में कैसे पहुँची, और वह एक नई राजनीतिक व्यवस्था के भीतर नैतिक स्वतंत्रता की ओर कैसे लौट सकती है।

2.7 रूसो के अनुसार प्राकृतिक अवस्था

रूसो हॉब्स और लॉक के साथ यह स्वीकार करते हैं कि अपनी प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य **स्वतंत्र, समान और स्वाधीन** होते हैं, परंतु उस अवस्था के स्वरूप का वर्णन करने में वे दोनों से निर्णायक रूप से अलग हो जाते हैं। वे बल देकर कहते हैं कि प्राकृतिक मनुष्य **असामाजिक और नैतिकता-निरपेक्ष (एमोरल)** होते हैं, जो कानून, कर्तव्य या तर्क द्वारा शासित नहीं होते—न दुष्ट (जैसा हॉब्स सोचते थे) और न ही तर्कसंगत रूप से नैतिक (जैसा लॉक ने दावा किया)। वे विचार-विमर्श के बजाय सहज प्रवृत्ति से जीते हैं और उनमें भाषा, चिंतन और इसलिए नैतिक चेतना का अभाव होता है।

वाणी के बिना नैतिक तर्क विकसित नहीं हो सकता; परिणामस्वरूप, "आदिम" (सैवेज) मनुष्य न्याय जैसे अमूर्त विचारों को नहीं समझ सकते। फिर भी हिंसक या दुष्ट होने के बजाय, वे एक **प्राकृतिक करुणा** से प्रेरित होते हैं—एक सहज दया जो क्रूरता को रोकती है और शांति को बढ़ावा देती है। यह "दया" पहला और एकमात्र **प्राकृतिक सद्गुण** है, जो बाद के समस्त नैतिक विकास की नींव है, और पशुओं में भी इसके चिह्न दिखाई देते हैं। प्राकृतिक मनुष्य अपने साथियों के विरुद्ध युद्ध नहीं करता क्योंकि दूसरों को पीड़ित देखकर वह सिहर उठता है।

परंतु सभ्यता इस स्वतःस्फूर्त सहानुभूति का दमन करती है। यह भावना का स्थान गणना को दे देती है, दयालुता को अहंकार में और पारस्परिक देखभाल को प्रतिस्पर्धा में बदल देती है। अतः प्राकृतिक अवस्था मानवशास्त्रीय इतिहास के रूप में नहीं, बल्कि एक **नैतिक दर्पण** के रूप में कार्य करती है: रूसो इसका उपयोग यह दिखाने के लिए करते हैं कि जब समाज मानवता की मूल अच्छाई को भ्रष्ट कर देता है तो वह क्या खो देती है। हॉब्स और लॉक के विपरीत, जिन्होंने सभ्य आवेगों और तर्क को आदिम मनुष्य पर आरोपित कर दिया, रूसो बल देकर कहते हैं कि उन्होंने "आदिम मनुष्य के बारे में बात की, परंतु नागरिक मनुष्य का वर्णन किया।" उनकी आलोचना यह उजागर करती है कि असमानता और नैतिक पतन को प्रकृति ने नहीं, बल्कि मानवीय संस्थाओं ने उत्पन्न किया।

2.8 प्राकृतिक अवस्था को छोड़ने और समाज के निर्माण के कारण

प्राकृतिक अवस्था से बाहर निकलना किसी सोचे-समझे चुनाव से नहीं, बल्कि आवश्यकता से होता है। जैसे-जैसे जनसंख्या-वृद्धि और बदलती परिस्थितियाँ एकाकी अस्तित्व को असंभव बना देती हैं, लोगों को जीवित रहने के लिए सहयोग करना पड़ता है। इसी व्यावहारिक आवश्यकता से वह उत्पन्न होता है जिसे रूसो सामाजिक अनुबंध

कहते हैं। यह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि उस क्षण का प्रतीकात्मक वर्णन है जब प्राकृतिक स्वाधीनता सामाजिक परस्पर-निर्भरता को स्थान दे देती है।

यह संक्रमण मनुष्यों को केवल सहज प्रवृत्ति द्वारा निर्देशित प्राणियों से न्याय द्वारा शासित नैतिक कर्ताओं में रूपांतरित कर देता है। अंधी इच्छा के स्थान पर नैतिक विवेक को प्रतिष्ठित करके, मनुष्य भौतिक स्वतंत्रता के बदले नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करते हैं: वे आवेगों के बजाय स्वयं-आरोपित सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने में सक्षम हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, रूसो को एक आदिमतावादी (प्रिमिटिविस्ट) के रूप में नहीं देखा जा सकता जो आदिम जीवन की सरलता की ओर लौटना चाहता हो। उनके लिए, सभ्यता, जब उचित रूप से व्यवस्थित हो, अस्तित्व के एक उच्चतर और श्रेष्ठतर चरण का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि यह तर्क और सद्गुण के प्रयोग को संभव बनाती है।

इसलिए सामाजिक अनुबंध को समाज के भीतर नैतिक चेतना के आलंकारिक सृजन के रूप में समझा जाना चाहिए। मनुष्य का नैतिक बोध केवल दूसरों के साथ संबंधों के माध्यम से उत्पन्न होता है; यह केवल प्रकृति का नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन का उत्पाद है। एक न्यायपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का कार्य तर्क को प्राकृतिक भावना के साथ जोड़ना है—एक ऐसे समुदाय का निर्माण करना जहाँ समानता, करुणा और तर्कसंगत व्यवस्था सह-अस्तित्व में हों।

2.9 राजनीतिक सिद्धांत की केंद्रीय समस्या

इसी बिंदु से रूसो का केंद्रीय प्रश्न उभरता है: लोग कानून के आज्ञापालन की माँग करने वाले एक संगठित समाज के भीतर रहते हुए भी स्वतंत्र कैसे बने रह सकते हैं? सामूहिक जीवन का प्रत्येक रूप व्यक्तिगत स्वाधीनता को सीमित करता है, फिर भी स्वतंत्रता मानवीय गरिमा का सार है। समस्या एक ऐसी व्यवस्था खोजने की है जो स्वतंत्रता को नष्ट किए बिना व्यवस्था सुनिश्चित करे।

पूर्ववर्ती सिद्धांतकारों द्वारा प्रस्तावित समाधान इस संतुलन को प्राप्त करने में विफल रहते हैं। हॉब्स संप्रभु को निरंकुश प्राधिकार देकर शांति प्राप्त करते हैं, परंतु परिणाम दासता है। लॉक स्वतंत्रता को बनाए रखने का प्रयास करते हैं, फिर भी संपत्ति का उनका समर्थन असमानता और विशेषाधिकार को सच्ची स्वतंत्रता को विकृत करने देता है। इसलिए रूसो दोनों को अस्वीकार करते हैं और सामाजिक अनुबंध की एक नई व्याख्या खोजते हैं— एक ऐसी व्याख्या जिसमें कानून के प्रति समर्पण दासता का कार्य नहीं, बल्कि मनुष्य के अपने तर्कसंगत संकल्प की अभिव्यक्ति हो। उनके राजनीतिक दर्शन का लक्ष्य यह प्रदर्शित करना है कि सामूहिक सहमति, यदि उचित रूप से समझी जाए, आज्ञापालन को स्वायत्तता में रूपांतरित कर सकती है और इस प्रकार स्वतंत्रता का सामाजिक एकता के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकती है।

2.10 रूसो का समाधान-सामाजिक अनुबंध

समाज के भीतर स्वतंत्रता की समस्या का रूसो का समाधान स्वयं सामाजिक अनुबंध को पुनर्परिभाषित करने से आरंभ होता है। वे तर्क देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने सभी व्यक्तिगत अधिकार किसी शासक या विशिष्ट प्राधिकारी को नहीं, बल्कि समग्र समुदाय को सौंप देने चाहिए। स्वयं को पूरी तरह सामूहिक निकाय को सौंपकर, व्यक्ति एक नैतिक और राजनीतिक संघ की सदस्यता प्राप्त करते हैं—जिसे रूसो संप्रभु कहते हैं। इस संप्रभु में, प्रत्येक व्यक्ति एक साथ शासक और प्रजा, दोनों होता है, क्योंकि समुदाय की सामान्य इच्छा उसके सभी सदस्यों की साझा इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है।

इसलिए विधायी प्राधिकार किसी राजा या छोटे अभिजात वर्ग को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता; यह सभी नागरिकों का समान रूप से होना चाहिए। कानून सामान्य इच्छा को अभिव्यक्त करता है, और चूँकि प्रत्येक नागरिक उसके निर्माण में सहायता करता है, इसलिए कानून का आज्ञापालन किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा के प्रति समर्पण नहीं, बल्कि **स्वयं का आज्ञापालन** है। इस प्रकार, स्वतंत्रता और प्राधिकार विपरीत नहीं रह जाते: विधिसम्मत नियंत्रण वास्तविक स्वतंत्रता बन जाता है।

लोकप्रिय संप्रभुता का यह दृष्टिकोण लॉक के प्रतिनिधित्व के सिद्धांत से तीव्र विरोध में है। लॉक की व्यवस्था में, नागरिक प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं जो उनकी ओर से शासन करते हैं, जिससे संप्रभुता एक अल्पसंख्यक वर्ग की संपत्ति बन जाती है। रूसो इस व्यवस्था को पूरी तरह अस्वीकार करते हैं, यह मानते हुए कि संप्रभुता अविभाज्य और अहस्तांतरणीय है—इसे नष्ट किए बिना इसका प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता। एक सचमुच स्वतंत्र समुदाय को अपने सभी सदस्यों की प्रत्यक्ष भागीदारी के माध्यम से स्वयं के लिए विधान बनाना चाहिए।

2.11 सामान्य इच्छा

एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है: यदि सभी को कानून का पालन करना है, तो क्या होता है जब कोई व्यक्ति उससे असहमत होता है? रूसो का उत्तर, जिसे प्रायः गलत समझा जाता है, यह है कि ऐसे व्यक्ति को "स्वतंत्र होने के लिए बाध्य किया जा सकता है।" इससे उनका अभिप्राय है कि सच्ची स्वतंत्रता व्यक्तिगत सनक में नहीं, बल्कि **सामान्य इच्छा**—सामान्य हित की खोज करने वाली सामूहिक नैतिक इच्छा—के प्रति निष्ठा में निहित है। इसके विरुद्ध कार्य करना अपने ही आवेगों की दासता में वापस गिर जाना है।

सामान्य इच्छा सदैव सही होती है क्योंकि यह निजी लाभ से परे सार्वभौमिक हित की ओर देखती है, और न्याय को उपयोगिता के साथ तथा स्वार्थ को करुणा के साथ जोड़ती है। यह व्यक्ति के हित को समुदाय के हित में रूपांतरित कर देती है, और तर्क तथा भावना के बीच सामंजस्य उत्पन्न करती है। देश-प्रेम, नागरिक सद्गुण और पारस्परिक सहानुभूति इसी संयोग से स्वाभाविक रूप से विकसित होते हैं। फिर भी रूसो इस खतरे से अवगत हैं कि निजी हित सामान्य इच्छा को विकृत कर सकते हैं। इसकी शुद्धता को बनाए रखने के लिए, सामाजिक संरचना को गुटीय प्रभाव

को रोकना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कानून वास्तव में वही व्यक्त करें जो सभी नागरिकों के लिए समान है।

केवल तभी, जब कानून संपूर्ण जनता से उत्पन्न होते हैं, स्वार्थ नैतिकता के साथ मेल खाता है। सामान्य इच्छा, नैतिक होने के कारण, स्वतंत्रता के एक उच्चतर रूप—**नैतिक स्वतंत्रता**—को परिभाषित करती है, जहाँ व्यक्ति आवेग के दास नहीं, बल्कि स्वायत्त तर्कसंगत प्राणियों के रूप में कार्य करते हैं। स्वतंत्रता की यह सकारात्मक अवधारणा हॉब्स और लॉक की "नकारात्मक स्वतंत्रता" से भिन्न है, जिन्होंने स्वतंत्रता को नियंत्रण के अभाव के समान माना। रूसो इस बात को एक सादृश्य द्वारा स्पष्ट करते हैं: किसी व्यक्ति को व्यसन से मुक्त करने के लिए अस्थायी बलप्रयोग की आवश्यकता हो सकती है, परंतु परिणाम एक गहरे प्रकार की स्वतंत्रता है। इसी प्रकार, राज्य केवल संपत्ति की रक्षा करने या हानि को रोकने के लिए नहीं, बल्कि सद्गुण के पोषण के लिए कार्य करता है। यह एक शिक्षक के रूप में कार्य करता है, जो नागरिकों को नैतिक स्वतंत्रता की ओर मार्गदर्शन देता है और यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्तिगत स्वायत्तता सामूहिक हित को कमज़ोर करने के बजाय उसे अभिव्यक्त करे।

2.12 राज्य और उसका संगठन

सामान्य इच्छा के प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए, रूसो इस बात पर बल देते हैं कि कुछ सामाजिक और संरचनात्मक परिस्थितियाँ विद्यमान होनी चाहिए—सबसे बढ़कर, **छोटा आकार और समानता**। राज्य इतना छोटा होना चाहिए कि नागरिक एकत्रित हो सकें, विचार-विमर्श कर सकें, और एक-दूसरे को एक साझा नैतिक उद्यम के सहभागियों के रूप में पहचान सकें। एक छोटे समुदाय में, नागरिक जीवन व्यक्तिगत रहता है, संवाद प्रत्यक्ष रहता है और छल कठिन होता है। घनिष्ठ आकार पारस्परिक उत्तरदायित्व की भावना को बढ़ावा देता है और सामान्य इच्छा की निष्कपटता को बनाए रखता है। इसके विपरीत, एक बड़ा राज्य अमूर्त और अवैयक्तिक हो जाता है, जो गुटों, भ्रष्टाचार और स्वार्थ को सामान्य उद्देश्य को कमज़ोर करने देता है।

समानता दूसरी आवश्यक शर्त है। रूसो संपत्ति या प्रतिभाओं की पूर्ण समानता की माँग नहीं करते, बल्कि **सापेक्ष समानता** की एक ऐसी अवस्था की माँग करते हैं जिसमें कोई भी नागरिक इतना धनी न हो कि दूसरे को खरीद सके या इतना निर्धन न हो कि स्वयं को बेच दे। इस प्रकार आर्थिक संयम एक नैतिक आवश्यकता बन जाता है। धन-संचय को नियंत्रित किया जाना चाहिए, और नीतियों को निर्धनता और विलासिता की चरम स्थितियों को रोकना चाहिए।

इसलिए रूसो उसकी परिकल्पना करते हैं जिसे एक **नैतिक अर्थव्यवस्था** कहा जा सकता है—एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा से संचालित होने के बजाय नैतिक प्रतिबंधों के अधीन हो। उनका आदर्श समाज साधारण, आत्मनिर्भर और अंशतः कृषि-प्रधान है, जिसमें सरल आदतों और नागरिक सद्गुण को बनाए रखना आसान होता है। इस नैतिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सहायक संस्थाओं की आवश्यकता होती है। उनमें से,

सेंसरशिप एक सकारात्मक कार्य करती है: यह सार्वजनिक नैतिकता और जनमत की पतन से रक्षा करती है, यद्यपि यह अनिवार्य रूप से अप्रतिबंधित अभिव्यक्ति पर सीमाएँ लगाती है। इसी प्रकार, **नागरिक धर्म** की एक व्यवस्था राजनीतिक निष्ठा को नैतिक कर्तव्य के साथ जोड़ती है, और नागरिकों को राज्य से कानूनी रूप से ही नहीं, भावनात्मक रूप से भी बाँधती है। रूसो ईसाई धर्म की इस बात के लिए आलोचना करते हैं कि यह मानवीय निष्ठा को स्वर्ग और पृथ्वी के बीच विभाजित कर देता है; इसके विपरीत, नागरिक धर्म आध्यात्मिक भक्ति को नागरिक समुदाय पर केंद्रित करता है, और नैतिक तथा राजनीतिक जीवन को एकजुट करता है।

2.13 देशभक्ति और सामान्य इच्छा

रूसो के आदर्श राज्य की भावनात्मक नींव **देशभक्ति** है, जो स्वार्थ को सद्गुण के साथ जोड़ती है और सामान्य इच्छा को व्यावहारिक जीवन प्रदान करती है। सच्चा देश-प्रेम व्यक्तियों को समग्र के कल्याण में अपना स्वयं का हित खोजने देता है। नागरिक स्नेह और साझा भागीदारी के माध्यम से, व्यक्तिगत इच्छाएँ नैतिक उद्देश्य तक उन्नत हो जाती हैं। अहंभाव और कर्तव्य के इस संयोग में, रूसो सामान्य इच्छा की प्राप्ति देखते हैं: एक ऐसा समुदाय जिसमें कानून का आज्ञापालन, सामान्य कल्याण के प्रति समर्पण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता अभिन्न कार्य बन जाते हैं।

2.14 संप्रभु और सरकार

रूसो के राजनीतिक सिद्धांत में, **संप्रभु** कोई शासक या राजा नहीं, बल्कि अपनी विधायी शक्ति का सामूहिक रूप से प्रयोग करने वाला नागरिकों का संपूर्ण निकाय है। विधि-निर्माताओं के रूप में कार्य करने वाली जनता ही संप्रभु है क्योंकि केवल वही सामान्य इच्छा को अभिव्यक्त कर सकती है। इसके विपरीत, सरकार केवल एक कार्यकारी अभिकरण है जो संप्रभु द्वारा स्थापित कानूनों को लागू करती है; वह उनका निर्माण नहीं करती।

वास्तविक संप्रभुता को बनाए रखने के लिए, रूसो इस बात पर बल देते हैं कि नागरिकों को बार-बार एकत्रित होना चाहिए। नियमित सभाएँ शासक प्राधिकारियों को धीरे-धीरे सत्ता हड़पने और संप्रभु की इच्छा को अपनी इच्छा में बदलने से रोकती हैं। सक्रिय नागरिक भागीदारी आवश्यक है, क्योंकि एक बार नागरिक निष्क्रिय हो जाएँ, तो सरकार प्रभुत्व में पतित हो जाती है। कानून स्वयं कम और सरल होने चाहिए, जो दैनिक विवरणों के बजाय मूलभूत सिद्धांतों से संबंधित हों। संप्रभु का मुख्य उद्देश्य संविधान को बनाए रखना और समुदाय के आकार, चरित्र और परिस्थितियों के लिए सबसे उपयुक्त सरकार के स्वरूप का निर्णय करना है।

रूसो इंग्लैंड जैसी प्रतिनिधि व्यवस्थाओं की आलोचना करते हैं, जहाँ उनके शब्दों में, जनता "केवल चुनावों के दौरान स्वतंत्र" होती है। संप्रभुता को प्रतिनिधियों को सौंपना उसके सार को नष्ट कर देता है, क्योंकि सामान्य इच्छा को हस्तांतरित या प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता—उसे प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त किया जाना चाहिए।

यद्यपि संप्रभु सर्वोच्च है, फिर भी उसका प्राधिकार असीमित नहीं है। वह अनुबंध के आधारभूत मूल नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता, जैसे संपत्ति का अधिकार और सामान्य हित की सेवा करने का दायित्व। रूसो **"सबकी इच्छा" (विल ऑफ़ ऑल)**—निजी हितों का योग—और **"सामान्य इच्छा" (जनरल विल)**, जो केवल वही अभिव्यक्त करती है जो सभी के लिए समान है, के बीच भी भेद करते हैं। विशुद्ध रूप से बहुमत के शासन पर आधारित निर्णय सबकी इच्छा को अभिव्यक्त करते हैं; वे प्रक्रिया की दृष्टि से वैध होते हैं, परंतु आवश्यक नहीं कि सार की दृष्टि से नैतिक भी हों। सामान्य इच्छा तब प्रकट होती है जब नागरिक गुटीय हितों से ऊपर उठकर सामूहिक हित की खोज करते हैं। किसी निर्णय का नैतिक मूल्य संख्यात्मक सहमति पर कम, और समुदाय की नैतिक एकता तथा साझा उद्देश्य पर अधिक निर्भर करता है। एक बड़ा या सर्वसम्मत बहुमत सही होने की संभावना को बढ़ाता है, फिर भी मतों की गिनती से अधिक नागरिक सद्गुण की *गुणवत्ता* महत्त्वपूर्ण है।

2.15 सरकार

रूसो **संप्रभुता** और **सरकार** के बीच एक दृढ़ भेद करते हैं। संप्रभुता, जो सामूहिक रूप से जनता की होती है, विधायी शक्ति धारण करती है और सामान्य इच्छा को अभिव्यक्त करती है। इसके विपरीत, सरकार केवल कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करती है—कानूनों को लागू करने और राज्य का प्रशासन चलाने का साधन। जनता की इच्छा को कभी भी प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता, परंतु उनके निर्णयों को लागू करने की शक्ति अस्थायी रूप से विशिष्ट अधिकारियों या निकायों को सौंपी जा सकती है।

फिर भी रूसो चेतावनी देते हैं कि प्रत्येक सरकार, अपनी प्रकृति से, उस संप्रभु प्राधिकार को उलटने की प्रवृत्ति रखती है जिसने उसका निर्माण किया। शासक निकाय सामान्य इच्छा से भिन्न अपनी स्वयं की "समूह इच्छा" बना लेता है, जो अनिवार्य रूप से अपने विशिष्ट हितों को बनाए रखना चाहती है। अनियंत्रित छोड़ दिए जाने पर, यह प्रवृत्ति भ्रष्टाचार और लोकप्रिय संप्रभुता के क्रमिक अपहरण की ओर ले जाती है। इसलिए, किसी राज्य के संस्थापकों को सावधानीपूर्वक **शक्ति-संतुलन** स्थापित करना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित हो कि सरकार एक स्वतंत्र स्वामी के बजाय एक निष्ठावान अभिकर्ता बनी रहे।

रूसो **राज्य के आकार** और **उसकी सरकार की शक्ति** के बीच एक व्यावहारिक संबंध देखते हैं। एक बड़े राष्ट्र में, व्यवस्था बनाए रखने के लिए सरकार को संरचना में छोटा परंतु प्राधिकार में अधिक शक्तिशाली होना चाहिए—ऐसी परिस्थितियाँ जो राजतंत्र को अधिक व्यवहार्य बनाती हैं। इसके विपरीत, एक छोटे समुदाय में जहाँ नागरिक निकट होते हैं और संवाद प्रत्यक्ष होता है, एक दुर्बल सरकार पर्याप्त हो सकती है, जिससे लोकतंत्र अधिक व्यवहार्य बन जाता है। वे सुझाव देते हैं कि मध्यम आकार के राज्य इन चरम स्थितियों के बीच उचित संतुलन स्थापित करते हैं। ऐसे समाजों के लिए, रूसो एक **निर्वाचित अभिजाततंत्र** का समर्थन करते हैं, जिसमें जनता द्वारा चुने गए सबसे योग्य और सद्गुणी नागरिक प्रशासनिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं।

वे इस राजनीतिक अभिजाततंत्र को वंशानुगत विशेषाधिकार या धन पर आधारित **अभिजात समाज** से अलग करते हैं। पहला समुदाय की सेवा करता है; दूसरा उसे दास बनाता है। रूसो भूगोल, जलवायु, संस्कृति और परिस्थिति के अनुसार अनुकूलित मिश्रित शासन-रूपों की अनुमति देते हैं। व्यापक रूप से, वे लोकतंत्र को छोटे और निर्धन राज्यों के लिए, अभिजाततंत्र को मध्यम राज्यों के लिए, और राजतंत्र को बड़े और धनी राज्यों के लिए सबसे उपयुक्त मानते हैं। तथापि, प्रत्येक सरकार की सुदृढ़ता केवल आकार या धन पर नहीं, बल्कि नागरिक नैतिकता के सिद्धांतों के प्रति उसकी अनुरूपता और सामान्य इच्छा के प्रति उसकी अधीनता पर निर्भर करती है।

2.16 रूसो के दर्शन की शास्त्रीय भावना

रूसो का राजनीतिक चिंतन **नीतिशास्त्र और राजनीति की शास्त्रीय एकता** की ओर एक सचेत वापसी का प्रतिनिधित्व करता है, एक ऐसा दृष्टिकोण जिसे आधुनिक दर्शन ने खंडित कर दिया था। उनकी व्यवस्था इस विचार को पुनर्स्थापित करती है कि नैतिक सद्गुण और नागरिक जीवन अविभाज्य हैं—कि स्वतंत्रता को नैतिक कर्तव्य से बँधा होना चाहिए, और अच्छा नागरिक तथा अच्छा व्यक्ति एक ही हैं। यही शास्त्रीय भावना **नैतिक शिक्षा, नागरिक भागीदारी और छोटे स्वशासी समुदाय** पर उनके बल को आकार देती है, जो प्राचीन पोलिस (नगर-राज्य) के समान है जहाँ व्यक्तिगत सद्गुण और सार्वजनिक हित एक साथ मेल खा सकते थे।

सामान्य इच्छा की अवधारणा के माध्यम से, रूसो राजनीति को एक नैतिक उद्यम में रूपांतरित कर देते हैं। प्राधिकार अब शासकों की बलप्रयोगकारी शक्ति पर नहीं, बल्कि न्याय के लिए मिलकर कार्य करने वाले नागरिकों की नैतिक प्रतिबद्धता पर आधारित होता है। इस अर्थ में, राजनीतिक दायित्व नैतिक स्वायत्तता का विस्तार बन जाता है: सामान्य इच्छा पर आधारित कानून का पालन करना अपने भीतर के तर्क की आवाज़ का पालन करना है।

फिर भी रूसो की शास्त्रीय दृष्टि का पुनर्निर्माण **आधुनिक श्रेणियों** के माध्यम से किया गया है। वे सामाजिक अनुबंध की भाषा का प्रयोग करते हैं और दैवी या प्राकृतिक विधि के बजाय मानवीय परिपाटी (कन्वेंशन) का सहारा लेते हैं। वे प्राकृतिक अधिकारों के पारंपरिक सिद्धांत और इस धर्मशास्त्रीय दावे, दोनों को अस्वीकार करते हैं कि नैतिकता एक निश्चित ब्रह्मांडीय व्यवस्था को प्रतिबिंबित करती है। रूसो के लिए, नैतिकता समाज के भीतर उत्पन्न होती है और किसी पारलौकिक स्रोत से नहीं, बल्कि साझा इच्छा से वैधता प्राप्त करती है। इसलिए सामान्य इच्छा **परिपाटीगत परंतु नैतिक** है—एक मानवीय सृजन जो फिर भी सार्वभौमिक नैतिक महत्त्व रखता है।

यह संश्लेषण रूसो के दर्शन के विशिष्ट तनाव को जन्म देता है: यह आधुनिक आत्मनिष्ठतावाद और सापेक्षवाद को शास्त्रीय नैतिक आदर्शवाद के साथ मिलाता है। नीतिशास्त्र को मानवीय चुनाव और सामाजिक परिपाटी पर आधारित करते हुए भी, रूसो इस प्राचीन विश्वास को कभी नहीं छोड़ते कि सद्गुण और न्याय ही स्वतंत्रता की सच्ची नींव हैं। इस प्रकार उनका चिंतन दो परंपराओं के चौराहे पर खड़ा है, जो शास्त्रीय दर्शन की नैतिक गहराई को आधुनिक युग की आत्म-जागरूकता के साथ जोड़ता है।

2.17 रूसो के सिद्धांत की आलोचना

रूसो की राजनीतिक दृष्टि, यद्यपि गहन और नैतिक रूप से महत्त्वाकांक्षी है, महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक और सैद्धांतिक कठिनाइयों का सामना करती है। व्यावहारिक रूप से, नागरिक सद्गुण द्वारा पोषित एक छोटे, सुसंगठित गणराज्य का उनका आदर्श **आधुनिक राष्ट्र-राज्यों** के संदर्भ में अवास्तविक प्रतीत होता है, जिनका विशाल आकार, जनसंख्या और जटिलता प्रत्यक्ष भागीदारी को असंभव बना देती है। सामान्य इच्छा को बनाए रखने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ—घनिष्ठ व्यक्तिगत बंधन, आर्थिक संयम और साझा नैतिक भावना—बड़े, बहुलतावादी समाजों में आसानी से पुनः निर्मित नहीं की जा सकतीं। रूसो के सिद्धांतों को राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने के प्रयास नैतिक एकता को बलपूर्वक थोपी गई अनुरूपता में बदलने का जोखिम उठाते हैं। यह तनाव **सर्वाधिकारवाद (टोटैलिटेरियनिज़्म) के खतरे** को जन्म देता है, जहाँ "सामान्य इच्छा" की दुहाई सामूहिक स्वतंत्रता के नाम पर असहमति के दमन को उचित ठहरा सकती है।

सैद्धांतिक समस्याएँ भी उतनी ही गंभीर हैं। **सामान्य इच्छा** की अवधारणा दुर्बोध और नैतिक रूप से अस्पष्ट बनी रहती है। रूसो इसे अचूक रूप से न्यायपूर्ण के रूप में प्रस्तुत करते हैं, फिर भी वे कोई स्पष्ट मानदंड प्रदान नहीं करते जिसके द्वारा इसकी पहचान की जा सके या इसे "सबकी इच्छा" के योग से अलग किया जा सके। निश्चित नैतिक मानकों के बिना, यह बहुमत की आवाज़ में या उनकी आवाज़ में पतित हो सकती है जो इसकी ओर से बोलने का दावा करते हैं। रूसो का यह आग्रह कि नैतिकता परिपाटीगत और सामाजिक रूप से आधारित है, यद्यपि ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील है, **नैतिक सापेक्षवाद और आत्मनिष्ठता** का एक ऐसा तत्त्व प्रस्तुत करता है जो उस सार्वभौमिकता के दावे को कमज़ोर करता है जिसे वे बनाए रखना चाहते हैं।

फिर भी, रूसो का चिंतन एक स्थायी महत्त्व प्राप्त करता है क्योंकि यह **राजनीति के भावनात्मक और नैतिक आयाम** को पुनः स्थापित करता है, और करुणा, नागरिक स्नेह तथा साझा मानवता की उस भावना पर बल देता है जिसकी तर्कवादी व्यवस्थाओं ने उपेक्षा की थी। फिर भी तर्क से ऊपर भावना को प्रतिष्ठित करने में उसका अपना जोखिम है; तर्कसंगत संतुलन से वंचित होकर, भावनात्मक निष्कपटता अतार्किकता में फिसल सकती है—एक ऐसी प्रवृत्ति जो बाद में उन स्वच्छंदतावादी और राष्ट्रवादी आंदोलनों में तीव्र हुई जिन्होंने रूसो के प्राधिकार का सहारा लिया।

इन अंतर्विरोधों के बावजूद, रूसो की महानता उन समस्याओं की गहराई में बनी रहती है जिन्हें वे उठाते हैं। उनके लेखन **नीतिशास्त्र और राजनीति, संप्रभुता और स्वतंत्रता, व्यक्ति और राज्य, तथा मानव जीवन के शास्त्रीय और आधुनिक आदर्शों** के बीच के शाश्वत विभाजनों का सामना करते हैं। उनके दर्शन की स्थायी शक्ति उसके अंतिम समाधानों में नहीं, बल्कि उस स्पष्टता में निहित है जिसके साथ यह राजनीतिक अस्तित्व के हृदय में स्थित इन स्थायी तनावों को उजागर करता है।

2.18 रूसो से आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत तक

रूसो का कार्य **शास्त्रीय और आधुनिक राजनीतिक चिंतन** के बीच निर्णायक मोड़ पर खड़ा है। नीतिशास्त्र और राजनीति के बीच सामंजस्य का प्राचीन आदर्श व्यक्तिगत अधिकारों, अनुबंधात्मक स्वतंत्रता और सत्ता की खोज पर आधुनिक बल के कारण खंडित हो चुका था। आधुनिक राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ, राजनीति को सद्गुण के विकास के साधन के रूप में कम, और प्राधिकार तथा बल के माध्यम से प्रतिस्पर्धी हितों के प्रबंधन के रूप में अधिक समझा जाने लगा।

इस पृष्ठभूमि में, रूसो **राजनीतिक जीवन के भीतर नैतिक उद्देश्य की एक सशक्त पुनःस्थापना** का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने मानव अस्तित्व के नैतिक और नागरिक आयामों को पुनः एकजुट करने का प्रयास किया, और आधुनिक समाजों को याद दिलाया कि राजनीतिक व्यवस्था को केवल स्थिरता या विस्तार के बजाय नैतिक विकास की सेवा करनी चाहिए। सभ्यता की उनकी आलोचना न केवल सामाजिक असमानता और राजनीतिक उत्पीड़न को, बल्कि उस आंतरिक **मनोवैज्ञानिक पतन** को भी उजागर करती है जो तब उत्पन्न होता है जब लोग अंतरात्मा और करुणा के बजाय अहंकार और निर्भरता से शासित होते हैं।

इस प्रकार रूसो की विरासत उनकी अपनी शताब्दी से आगे तक पहुँचती है। वे आधुनिक चिंतन को संगठित समाज में **अलगाव, नौकरशाही और व्यक्तिगत तथा नैतिक अर्थ की क्षति** के प्रति एक स्थायी जागरूकता विरासत में देते हैं। साथ ही, मानवता की प्राकृतिक अच्छाई और पूर्णता-योग्यता में उनका दृढ़ विश्वास एक स्थायी **आशावाद** को बनाए रखता है: भ्रष्टाचार के बीच भी, मनुष्य नैतिक और नागरिक सुधार के माध्यम से पुनर्जीवन की क्षमता बनाए रखते हैं।

इन दोहरे आवेगों—सभ्यता के प्रति उनके निराशावाद और मानव स्वभाव के प्रति आशावाद—से उन्नीसवीं शताब्दी के मार्गदर्शक विचार उभरते हैं। उदारवाद, रूढ़िवाद, समाजवाद और राष्ट्रवाद, सभी रूसो की दृष्टि के तत्त्वों को विरासत में पाते हैं, चाहे वह समानता और भागीदारी के उनके समर्थन में हो, नैतिक समुदाय पर उनके बल में हो, औद्योगिक समाज की उनकी आलोचना में हो, या सामूहिक पहचान के उनके उत्सव में हो। इस प्रकार, रूसो आधुनिकता के आलोचक और उसके आध्यात्मिक संस्थापकों में से एक, दोनों बन जाते हैं, और उस नैतिक तथा राजनीतिक शब्दावली को आकार देते हैं जिसमें आधुनिक चिंतन आज भी स्वतंत्रता, न्याय और मानवीय परिपूर्णता पर वाद-विवाद करता है।

2.19 सारांश

यह अध्याय ज्यां जैक्स रूसो के राजनीतिक दर्शन का अन्वेषण करता है, और उन्हें ज्ञानोदय के तर्कवाद की स्वच्छंदतावादी आलोचना के भीतर स्थापित करता है। रूसो ने अपने समय के प्रचलित आशावाद को यह तर्क देकर चुनौती दी कि आधुनिक सभ्यता मानवता को पूर्ण बनाने के बजाय उसकी प्राकृतिक अच्छाई को भ्रष्ट कर देती

है। असमानता की उत्पत्ति के अपने विश्लेषण के माध्यम से, वे निजी संपत्ति को उस प्रमुख कारक के रूप में पहचानते हैं जो समाज को अमीर और गरीब, शासक और शासित में विभाजित करता है, और नैतिक तथा राजनीतिक, दोनों स्वतंत्रताओं को कमज़ोर करता है। अध्याय रूसो की प्राकृतिक अवस्था की अवधारणा की चर्चा करता है, जो मनुष्यों को स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र, समान और करुणामय, तथा तर्क के बजाय सहज प्रवृत्ति और दया द्वारा शासित के रूप में चित्रित करती है, और जो हॉब्स के हिंसक प्राकृतिक मनुष्य और लॉक के तर्कसंगत नैतिक कर्ता के दृष्टिकोण से तीव्र रूप से भिन्न है।

समाज के भीतर स्वतंत्रता की समस्या का रूसो का समाधान सामाजिक अनुबंध की उनकी दृष्टि है, जो नागरिकों से अपने व्यक्तिगत अधिकार समष्टि को सौंपने की अपेक्षा करके, और इस प्रकार संप्रभु का निर्माण करके, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नैतिक स्वतंत्रता में रूपांतरित कर देती है। इस अनुबंध के केंद्र में सामान्य इच्छा की अवधारणा है, जो सामान्य हित का प्रतिनिधित्व करती है और यह सुनिश्चित करती है कि कानून का आज्ञापालन बलप्रयोग के बजाय स्वशासन की अभिव्यक्ति हो। अध्याय एक क्रियाशील सामान्य इच्छा के लिए आवश्यक परिस्थितियों का विस्तार से वर्णन करता है, जिनमें छोटे और अपेक्षाकृत समान समुदाय, नागरिक भागीदारी, नैतिक शिक्षा, और देशभक्ति तथा नागरिक सद्गुण का विकास सम्मिलित हैं।

इसके अतिरिक्त, अध्याय संप्रभुता और सरकार के बीच भेद करता है: जहाँ संप्रभु विधायी शक्ति धारण करने वाला नागरिकों का सामूहिक निकाय है, वहीं सरकार कानूनों को लागू करने वाला कार्यकारी अभिकरण है। रूसो इस बात पर बल देते हैं कि सच्ची स्वतंत्रता और नागरिक उत्तरदायित्व के लिए सक्रिय नागरिक भागीदारी आवश्यक है, और चेतावनी देते हैं कि संप्रभुता का प्रत्यायोजन या बड़े, अवैयक्तिक राज्य सामान्य इच्छा का क्षरण कर सकते हैं। चर्चा रूसो की शास्त्रीय भावना को भी रेखांकित करती है, जो नीतिशास्त्र और राजनीति को जोड़ती है, और नैतिकता को दैवी विधि के बजाय समाज के भीतर स्थापित करती है।

अंत में, अध्याय रूसो के योगदानों और सीमाओं का आलोचनात्मक परीक्षण करता है। यद्यपि एक छोटे, नैतिक रूप से सुसंगठित गणराज्य की उनकी दृष्टि आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के लिए बड़े पैमाने पर अव्यावहारिक है, और उनकी सामान्य इच्छा की अवधारणा नैतिक तथा सैद्धांतिक रूप से अस्पष्ट है, फिर भी उनका कार्य आधारभूत बना हुआ है। रूसो का चिंतन शास्त्रीय और आधुनिक राजनीतिक दर्शन के बीच सेतु का कार्य करता है, स्वतंत्रता, समानता, नागरिक सद्गुण और मानवीय पुनर्जीवन पर वाद-विवादों को प्रभावित करता है, और उदारवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद तथा राजनीतिक और नैतिक जीवन पर समकालीन चिंतन में एक स्थायी विरासत छोड़ता है।

2.20 शब्दावली

1. **आधुनिक सभ्यता की आलोचना** – रूसो का यह तर्क कि समाज मनुष्यों की प्राकृतिक अच्छाई को भ्रष्ट करता है, और करुणा का स्थान प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या और अहंकार को दे देता है।

2. **प्राकृतिक अवस्था** – वह काल्पनिक पूर्व-सामाजिक अवस्था जहाँ मनुष्य स्वतंत्र, समान, सहज-प्रवृत्ति से चलने वाले और करुणामय होते हैं, तथा जिनमें भाषा, नैतिकता या कानून का अभाव होता है।
3. **सामाजिक अनुबंध** – रूसो का यह विचार कि व्यक्ति सामूहिक रूप से अपने व्यक्तिगत अधिकार समुदाय को सौंप देते हैं, और स्वतंत्रता तथा समानता सुनिश्चित करने के लिए एक नैतिक और राजनीतिक संघ का निर्माण करते हैं।
4. **सामान्य इच्छा** – सामान्य हित की ओर लक्षित सामूहिक नैतिक इच्छा, जो "सबकी इच्छा" से भिन्न है, जो केवल निजी हितों का योग है।
5. **नैतिक स्वतंत्रता** – वह स्वतंत्रता जो सामान्य इच्छा द्वारा निर्मित कानूनों के पालन से उत्पन्न होती है, और व्यक्तियों को व्यक्तिगत आवेगों के बजाय तर्क और सद्गुण के अनुसार कार्य करने देती है।
6. **संप्रभु** – विधायी शक्ति का सामूहिक रूप से प्रयोग करने वाला और सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाला नागरिकों का संपूर्ण निकाय।
7. **सरकार** – कानूनों को लागू करने का दायित्व रखने वाला कार्यकारी निकाय; यह संप्रभु से भिन्न है, जो उनका निर्माण करता है।
8. **असमानता** – मुख्यतः निजी संपत्ति से उत्पन्न सामाजिक और नैतिक विषमता, जो मनुष्यों को अमीर और गरीब, शासक और शासित में विभाजित करती है।
9. **देशभक्ति** – अपने देश के प्रति नागरिक प्रेम जो व्यक्तिगत हित को समुदाय के कल्याण के साथ जोड़ता है, और सामान्य इच्छा को सुदृढ़ करता है।
10. **नागरिक धर्म** – एक एकीकरणकारी नागरिक आस्था की रूसो की अवधारणा जो राज्य के भीतर निष्ठा, नैतिक कर्तव्य और नैतिक भागीदारी को प्रोत्साहित करती है।

2.21 अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक सभ्यता की रूसो की आलोचना की व्याख्या कीजिए।
2. रूसो प्राकृतिक अवस्था को किस प्रकार परिभाषित करते हैं? यह हॉब्स और लॉक के विचारों से किस प्रकार भिन्न है?
3. रूसो के अनुसार असमानता की उत्पत्ति क्या है?
4. "सामान्य इच्छा" और "सबकी इच्छा" के बीच भेद कीजिए।
5. रूसो के राजनीतिक सिद्धांत में संप्रभु और सरकार के बीच क्या अंतर है?

6. भौतिक और नैतिक स्वतंत्रता के बीच अंतर सहित, रूसो की स्वतंत्रता की अवधारणा की चर्चा कीजिए।
7. रूसो स्वतंत्रता का सामाजिक व्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित करने के साधन के रूप में सामाजिक अनुबंध को किस प्रकार उचित ठहराते हैं?
8. रूसो के अनुसार एक क्रियाशील सामान्य इच्छा और एक नैतिक समाज के लिए आवश्यक परिस्थितियों की व्याख्या कीजिए।
9. देशभक्ति, नागरिक सद्गुण और राज्य में नागरिक धर्म की भूमिका पर रूसो के विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
10. आधुनिक राष्ट्र-राज्यों पर रूसो के राजनीतिक दर्शन को लागू करने की व्यावहारिक और सैद्धांतिक चुनौतियों का विश्लेषण कीजिए

2.22 अतिरिक्त पठन सामग्री

- एम. कीन्स-सोपर (2003) 'ज्यां जैक्स रूसो: द सोशल कॉन्ट्रैक्ट', एम. फ़ॉरसिथ और एम. कीन्स-सोपर (संपा.) ए गाइड टू द पॉलिटिकल क्लासिक्स: प्लेटो टू रूसो में. न्यूयॉर्क: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 171-202.

इकाई-II

(b) मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट: महिलाएँ और पितृसत्तावाद (पैटर्नलिज़्म); भावना और तर्क; कानूनी अधिकार और प्रतिनिधित्व

3.1 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अंत तक विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

- अठारहवीं शताब्दी के व्यापक बौद्धिक संदर्भ की व्याख्या करना, जिसमें तर्क, स्वतंत्रता और अधिकारों के संबंध में ज्ञानोदय के वचन और अंतर्विरोध सम्मिलित हैं।
- शताब्दी के मध्य में हुए पीछे हटने के बावजूद नारीवादी चेतना की निरंतरता की पहचान करना, तथा ब्लूस्टॉकिंग्स जैसे प्रारंभिक नारीवादी प्रयासों की सीमाओं की पहचान करना।
- यह विश्लेषण करना कि रूसो, वॉल्टेयर और मॉन्टेस्क्यू सहित प्रमुख ज्ञानोदय विचारकों ने महिलाओं को तर्क और अधिकारों के सार्वभौमिक दावों से किस प्रकार बाहर रखा।
- कॉन्डोर्से और वॉन हिपेल जैसे पुरुष विचारकों के योगदानों की चर्चा करना जिन्होंने ज्ञानोदय के सिद्धांतों के भीतर महिलाओं की समानता के पक्ष में तर्क दिए।
- इंग्लैंड और अमेरिका में कैथरीन मैकॉले और अबीगेल ऐडम्स जैसी समानांतर नारीवादी आवाज़ों, और राजनीतिक बहिष्करण की उनकी आलोचनाओं का परीक्षण करना।
- फ़्रांसीसी क्रांति के दौरान महिलाओं की भागीदारी और समानता के उनके दावों में अंतर्निहित राजनीतिक विरोधाभासों का मूल्यांकन करना।
- पितृसत्तावाद की वॉल्स्टनक्राफ़्ट की आलोचना और महिलाओं की तथाकथित दुर्बलता की सांस्कृतिक रूप से निर्मित प्रकृति की व्याख्या करना।
- भावना बनाम तर्क पर उनके तर्कों का, और इस बात का विश्लेषण करना कि महिलाओं की नैतिक और राजनीतिक स्वाधीनता के लिए तर्कसंगतता किस प्रकार केंद्रीय थी।
- समान शिक्षा, नागरिक और कानूनी अधिकारों के उनके दावों का, तथा तर्कसंगत समानता के विस्तार के रूप में प्रतिनिधित्व के महत्त्व का वर्णन करना।

- वॉल्स्टनक्राफ़्ट के चिंतन में अनसुलझे तनावों की पहचान करना, जिनमें सार्वजनिक/निजी विभाजन, पुरुषीकृत तर्कसंगतता और उदारवादी व्यक्तिवाद सम्मिलित हैं।
- यह समझना कि इन तनावों ने ज्ञानोदय चिंतन और उदारवादी सिद्धांत की बाद की नारीवादी आलोचनाओं की नींव किस प्रकार रखी।
- यह स्पष्ट करना कि वॉल्स्टनक्राफ़्ट ज्ञानोदय और स्वच्छंदतावादी विचारों को किस प्रकार विरासत में पाती भी हैं और उन्हें चुनौती भी देती हैं।
- लिंग, शिक्षा और राजनीतिक अधिकारों पर समकालीन वाद-विवादों के लिए उनके तर्कों की निरंतर प्रासंगिकता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।

3.2 प्रस्तावना

आधुनिक सभ्यता की रूसो की आलोचना और सामान्य इच्छा के माध्यम से मानवीय स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने के उनके प्रयास का परीक्षण करने के बाद, यह अध्याय एक ऐसी विचारक की ओर मुड़ता है जो उस बौद्धिक विश्व को, जिसे आकार देने में उन्होंने सहायता की, विरासत में पाती भी है और उसे तीखी चुनौती भी देती है — **मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट**। अठारहवीं शताब्दी के अंत में लिखते हुए, वॉल्स्टनक्राफ़्ट आधुनिक राजनीतिक चिंतन में सबसे प्रारंभिक और सबसे सशक्त नारीवादी आवाज़ों में से एक के रूप में उभरीं। उन्होंने उजागर किया कि किस प्रकार महिलाओं को पितृसत्तावाद द्वारा दबाकर रखा गया, उन्हें समान नैतिक स्थिति से वंचित किया गया, और स्वायत्त व्यक्तियों के रूप में व्यवहार किए जाने के बजाय निर्भरता तक सीमित रखा गया।

जहाँ रूसो ने प्राकृतिक भावना का उत्सव मनाया और आधुनिक समाज की कृत्रिमता पर अविश्वास किया, वहीं वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने चेतावनी दी कि भावना का ऐसा स्वच्छंदतावादी महिमामंडन प्रायः महिलाओं की अधीनता को सुदृढ़ करता था। इसके बजाय, उन्होंने तर्क दिया कि पूर्ण नैतिक और राजनीतिक कर्ता बनने के लिए महिलाओं को भी, पुरुषों की तरह, शिक्षा, अनुशासित तर्क और लागू किए जा सकने वाले कानूनी अधिकारों की आवश्यकता है। उनकी आलोचना घरेलू जीवन से लेकर स्वयं राज्य की संरचना तक विस्तृत थी: राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बिना, महिलाएँ उन कानूनों को आकार देने में कभी भाग नहीं ले सकती थीं जो उन पर शासन करते थे।

साथ ही, वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने ज्ञानोदय चिंतन के भीतर एक गहरे अंतर्विरोध का सामना किया। ज्ञानोदय ने सार्वभौमिक तर्क और प्राकृतिक अधिकारों की घोषणा की, फिर भी उसके अधिकांश विचारकों ने महिलाओं को ये अधिकार देने से इनकार किया, यह आग्रह करते हुए कि वे भावना द्वारा शासित होती हैं और मुख्य रूप से निजी क्षेत्र से संबंधित हैं। वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने इस अंतर्विरोध को उसके रचयिताओं पर ही पलट दिया। उन्होंने तर्क दिया कि यदि महिलाओं में पुरुषों जैसी ही तर्कसंगत क्षमताएँ हैं, तो उन्हें समान शिक्षा भी मिलनी चाहिए, उन्हें समान नैतिक मानकों पर परखा

जाना चाहिए, और उन्हें समान नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। उनके हाथों में, यह तर्क स्पष्ट हो जाता है: **समान तर्कसंगतता → समान शिक्षा → समान सद्गुण → समान अधिकार**।

फिर भी उनकी परियोजना सीमाओं से रहित नहीं थी। महिलाओं के बहिष्करण को चुनौती देने के बावजूद, उन्होंने कठोर सार्वजनिक–निजी विभाजन, उदारवादी व्यक्तिवाद की मान्यताओं और पुरुष मानदंडों द्वारा आकार दिए गए तर्कसंगतता के मॉडल के भीतर ही कार्य किया। ये तनाव बाद में नारीवादी सिद्धांतकारों की आने वाली पीढ़ियों के लिए आरंभ-बिंदु बन गए, जिन्होंने आलोचना को और आगे बढ़ाया।

इसलिए यह अध्याय पितृसत्तावाद, भावना और तर्क, शिक्षा, कानूनी अधिकारों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर वॉल्स्टनक्राफ़्ट के तर्कों का परीक्षण करता है। यह यह भी रेखांकित करता है कि उनके कार्य ने स्वतंत्रता, समानता और नैतिक कर्तृत्व पर ज्ञानोदय के वाद-विवादों को किस प्रकार नया रूप दिया, और साथ ही उन अनसुलझे अंतर्विरोधों को भी उजागर करता है जो आज भी नारीवादी राजनीतिक चिंतन को आकार देते हैं।

3.3 ज्ञानोदय का सार्वभौमवाद और उसके बहिष्करण

ज्ञानोदय के दौरान, विचारकों ने सार्वभौमिक तर्क और सभी मनुष्यों के अंतर्निहित अधिकारों का उत्सव मनाया, और उस युग को प्रगति, स्वतंत्रता और तर्कसंगतता के युग के रूप में प्रस्तुत किया। अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा और फ़्रांसीसी मनुष्य के अधिकारों की घोषणा जैसी क्रांतिकारी घोषणाओं ने अपनी वैधता सार्वभौमिकता के इसी साहसिक दावे से प्राप्त की। फिर भी, इस बौद्धिक परियोजना के हृदय में एक चौंकाने वाला अंतर्विरोध निहित था: महिलाओं को इन वचनों से बड़े पैमाने पर बाहर रखा गया। वॉल्टेयर, मॉन्टेस्क्यू, दिदरो और विशेष रूप से रूसो सहित प्रमुख दार्शनिकों ने आग्रह किया कि महिलाएँ मुख्य रूप से तर्क के बजाय भावना द्वारा शासित होती हैं और इसलिए सार्वजनिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के बजाय निजी, घरेलू क्षेत्र से संबंधित हैं। इस बहिष्करण ने ज्ञानोदय चिंतन के एक मूलभूत तनाव को उजागर किया—इसने समानता और सार्वभौमिक अधिकारों की घोषणा की, जबकि साथ ही आधी मानवता को उनसे वंचित भी रखा। ठीक इसी अंतर्विरोध ने नारीवादी आलोचना की नींव रखी, और मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट जैसी विचारकों को ज्ञानोदय के सिद्धांतों के चयनात्मक अनुप्रयोग पर प्रश्न उठाने और उसे चुनौती देने के लिए प्रेरित किया।

3.4 महिलाओं की समानता का समर्थन करने वाले पुरुष विचारक

ज्ञानोदय के आदर्शों से महिलाओं के सामान्य बहिष्करण के बीच, कुछ पुरुष विचारकों ने यह पहचाना कि तर्क और समानता का स्वयं का तर्कशास्त्र महिलाओं के समावेश की माँग करता है। फ़्रांस में, कॉन्डोर्से ने तर्क दिया कि महिलाओं में पुरुषों जैसी ही तर्कसंगत क्षमताएँ हैं, और इसलिए राजनीतिक जीवन से उनका बहिष्करण अत्याचार के समान है। उन्होंने महिलाओं की भागीदारी के विरुद्ध जैविक तर्कों को खारिज कर दिया, यह इंगित करते हुए कि

पुरुष भी बीमारी जैसी शारीरिक सीमाओं का अनुभव करते हैं, फिर भी ये उन्हें राजनीतिक अधिकारों से वंचित नहीं करतीं। इसी प्रकार, जर्मनी में, वॉन हिपेल ने इस धारणा को चुनौती दी कि पुरुषों और महिलाओं के बीच के अंतर प्राकृतिक हैं, और इसके बजाय इस बात पर बल दिया कि वे सामाजिक रूप से निर्मित हैं। उन्होंने तर्क दिया कि पुरुष सक्रिय रूप से महिलाओं की निर्भरता को बनाए रखते थे, जिससे शिक्षा और समान अधिकार न केवल वांछनीय, बल्कि न्याय के लिए आवश्यक भी हो जाते हैं। ये विचारक दर्शाते हैं कि ज्ञानोदय में एक नारीवादी तर्क के बीज विद्यमान थे: यदि इसके सिद्धांतों को सुसंगत रूप से लागू किया जाता, तो वे तार्किक रूप से महिलाओं की समानता को अनिवार्य बना देते, यद्यपि अधिकांश समकालीनों ने इस निहितार्थ की उपेक्षा की या उसका विरोध किया।

3.5 अमेरिका और इंग्लैंड में समानांतर नारीवादी आवाज़ें

अटलांटिक के पार, ऐसी नारीवादी आवाज़ें उभर रही थीं जिन्होंने महिलाओं के राजनीतिक बहिष्करण को सीधे चुनौती दी। संयुक्त राज्य अमेरिका में, अबीगेल ऐडम्स ने प्रसिद्ध रूप से अपने पति, जॉन ऐडम्स, से "महिलाओं को याद रखने" का आग्रह किया, और चेतावनी दी कि महिलाएँ उन कानूनों का पालन नहीं करेंगी जिनमें उनका कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। उनकी अपील ने एक मूलभूत असंगति को रेखांकित किया: यदि सरकार सहमति पर आधारित है, तो आधी जनसंख्या पर बिना उसकी आवाज़ के उचित रूप से शासन नहीं किया जा सकता। इंग्लैंड में, कैथरीन मैकॉले ने तर्क दिया कि पुरुषों और महिलाओं के बीच के तथाकथित अंतर प्रकृति से नहीं, बल्कि असमान शिक्षा से उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने आग्रह किया कि लड़कों और लड़कियों को समान शैक्षिक अवसर मिलने चाहिए, जो उन प्रमुख विचारों का पूर्वानुमान था जिन्हें वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने बाद में विकसित किया। मिलकर, ये उदाहरण दिखाते हैं कि महिलाएँ निष्क्रिय दर्शक नहीं, बल्कि सार्वजनिक और नागरिक जीवन से अपने स्वयं के बहिष्करण का विरोध करने के लिए राजनीतिक सिद्धांत का प्रयोग करने वाली सक्रिय सहभागी थीं।

3.6 फ़्रांसीसी क्रांति और नारीवादी राजनीति

फ़्रांसीसी क्रांति के दौरान, महिलाएँ राजनीतिक जीवन में अत्यधिक सक्रिय हो गईं, उन्होंने मान्यता और अधिकारों की माँग के लिए क्लब बनाए, याचिकाएँ प्रस्तुत कीं और सार्वजनिक प्रदर्शनों में भाग लिया। ओलंप दे गूज की *डिक्लेरेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ वुमन* (1790) ने इन प्रयासों का उदाहरण प्रस्तुत किया, और यह दावा किया कि समानता में महिलाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए, अन्यथा स्वतंत्रता और न्याय के क्रांतिकारी आदर्श अधूरे हैं। इतिहासकार जोन स्कॉट इस सक्रियता के एक केंद्रीय विरोधाभास को रेखांकित करती हैं: समानता का दावा करने के लिए, महिलाओं को *महिलाओं के रूप में* बोलने के लिए विवश होना पड़ा, और इस प्रकार वे उसी श्रेणी पर एक साथ बल भी दे रही थीं और उससे जूझ भी रही थीं जिसे वे चुनौती देना चाहती थीं। अपनी ऊर्जा और साहस के बावजूद, महिलाओं को कड़ी प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ा—राजनीतिक क्लब बंद कर दिए गए, नेताओं को कारावास में डाल दिया गया, और स्वयं दे गूज को मृत्युदंड दे दिया गया। यह प्रसंग एक प्रमुख तनाव को स्पष्ट करता

है: क्रांतिकारी सिद्धांतों ने नारीवादी दावों के लिए स्थान उत्पन्न किया, परंतु गहराई से जमी पुरुष-प्रधान संरचनाओं ने उनके साकार होने का हिंसक प्रतिरोध किया।

3.7 फ़्रांसीसी क्रांति के बाद ब्रिटेन में नारीवाद की स्वीकृति

फ़्रांसीसी क्रांति के पश्चात्, ब्रिटिश समाज ने क्रांतिकारी उत्साह को अस्थिरता के स्रोत के रूप में देखा, और इसी क्रम में महिलाओं के अधिकारों के किसी भी समर्थन को खतरनाक माना गया। मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट, जिन्होंने क्रांति के कुछ पहलुओं का बचाव किया और महिलाओं की समानता का समर्थन किया, को परिणामस्वरूप कट्टरपंथी, स्त्रियोचित गुणों से रहित और राजनीतिक अराजकता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया। उनके तर्कों का मूल्यांकन प्रायः उनकी दार्शनिक या नैतिक योग्यता के आधार पर करने के बजाय भय और सामाजिक चिंता के चश्मे से किया गया, जिसने ब्रिटेन में उनकी स्वीकृति को आकार दिया और इस धारणा को सुदृढ़ किया कि स्वयं नारीवाद सामाजिक व्यवस्था के लिए एक खतरा है।

3.8 वॉल्स्टनक्राफ़्ट के तर्क (विंडिकेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ वुमन, 1792)

3.8.1 बौद्धिक विरासत और लक्ष्य

मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट की *विंडिकेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ वुमन* (1792) सीधे रूसो की बौद्धिक विरासत से, विशेष रूप से *एमील* में व्यक्त उनके उन विचारों से संवाद करती है जिन्होंने तथाकथित "स्त्रीत्व के पंथ" का गुणगान किया। उन्होंने इन प्रचलित धारणाओं को चुनौती दी कि महिलाएँ स्वाभाविक रूप से दुर्बल होती हैं, मुख्य रूप से पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए अस्तित्व में हैं, और घरेलू क्षेत्र तक सीमित रहने के लिए नियत हैं। इन मान्यताओं का सामना करके, वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने यह उजागर करने का प्रयास किया कि प्रकृति के बजाय सामाजिक और शैक्षिक प्रथाओं ने किस प्रकार महिलाओं की निर्भरता उत्पन्न की और उनके नैतिक तथा बौद्धिक विकास को सीमित किया।

3.8.2 महिलाएँ और पितृसत्तावाद

वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने तर्क दिया कि महिलाओं की तथाकथित दुर्बलता कोई प्राकृतिक गुण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक अनुकूलन का परिणाम थी। पितृसत्तावाद—जिसे सुरक्षा या देखभाल के रूप में प्रस्तुत किया गया—महिलाओं को नियंत्रित करने के एक उपकरण के रूप में कार्य करता था, जो शिक्षा, संपत्ति और राजनीतिक भागीदारी तक उनकी पहुँच को सीमित करता था। इस थोपी गई निर्भरता ने स्त्री-अक्षमता का आभास उत्पन्न किया। वास्तव में, समाज ने उसी दुर्बलता को उत्पन्न किया जिसे वह अंतर्निहित बताता था, और वॉल्स्टनक्राफ़्ट के नारीवादी उलटाव ने यह रेखांकित किया कि महिलाएँ ठीक इसीलिए दुर्बल दिखाई देती हैं क्योंकि उन्हें व्यवस्थित रूप से निर्भर बनाकर रखा जाता है।

3.8.3 भावना और तर्क

वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने अठारहवीं शताब्दी के संवेदनशीलता के पंथ की आलोचना की, जिसने महिलाओं की भावनात्मक कोमलता का गुणगान किया और स्त्रीत्व को मुख्य रूप से भावुकतापूर्ण बताया। उन्होंने तर्क दिया कि तर्क-रहित भावना हेरफेर का एक रूप बन जाती है, जो महिलाओं को आकर्षक परंतु राजनीतिक रूप से मौन, प्रशंसित परंतु निर्भर बनाए रखती है। इसके उत्तर में, उन्होंने तर्क का एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक उपकरण के रूप में बचाव किया, जो महिलाओं को नैतिक स्वाधीनता, स्वशासन, तथा प्राधिकार का मूल्यांकन करने, उसकी आलोचना करने और उसका प्रतिरोध करने की क्षमता प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। वॉल्स्टनक्राफ़्ट के लिए, सच्ची स्वतंत्रता के लिए तर्कसंगतता द्वारा निर्देशित भावनात्मक परिपक्वता आवश्यक थी, जो महिलाओं को स्वायत्त नैतिक और राजनीतिक कर्ताओं के रूप में पूर्णतः भाग लेने देती है।

3.8.4 कानूनी अधिकार और प्रतिनिधित्व

वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने तर्क दिया कि केवल शिक्षा पर्याप्त नहीं थी; महिलाओं के तर्कसंगत और नैतिक विकास के साथ-साथ कानूनी और नागरिक अधिकार भी होने चाहिए। उन्होंने आर्थिक स्वाधीनता सुनिश्चित करने के लिए संपत्ति के अधिकारों, विवश निर्भरता को कम करने के लिए व्यवसायों तक पहुँच, और महिलाओं को अन्याय को चुनौती देने में सक्षम बनाने के लिए नागरिक संरक्षणों पर बल दिया। प्रतिनिधित्व, यद्यपि संक्षेप में उल्लिखित है, तार्किक रूप से इसी से निकलता था: यदि महिलाओं को कानून का पालन करना है, तो उसे आकार देने में उनकी भी आवाज़ होनी चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित हो कि सहमति सचमुच सार्वभौमिक है। ऐसा करते हुए, उन्होंने ज्ञानोदय के सार्वभौमिकता के दावे का सामना किया, और यह उजागर किया कि यदि आधी जनसंख्या बाहर रखी जाए तो उसका वचन निरर्थक है। तथापि, उन्होंने इस प्रश्न का पूर्ण समाधान नहीं किया कि महिलाएँ अपने समय की पुरुष-प्रधान संस्थाओं के भीतर राजनीतिक शक्ति कैसे प्राप्त कर सकती थीं।

3.9 वॉल्स्टनक्राफ़्ट में सैद्धांतिक तनाव

वॉल्स्टनक्राफ़्ट के तर्क, यद्यपि युगांतरकारी हैं, अपने समय के सैद्धांतिक तनावों में ही निहित रहते हैं। उन्होंने तर्कसंगतता के एक ऐसे मॉडल को स्वीकार किया जिसे बड़े पैमाने पर पुरुषोचित माना जाता था, सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच कठोर विभाजन को बनाए रखा, और उदारवादी व्यक्तिवाद की मान्यताओं को विरासत में पाया। साथ ही, उन्होंने पूर्ण समानता का समर्थन करते हुए माताओं और घरेलू देखभालकर्ताओं के रूप में महिलाओं की भूमिकाओं की पुष्टि करने का भी प्रयास किया—एक अनसुलझा तनाव जो उनके ढाँचे की सीमाओं को रेखांकित करता है। ये अंतर्विरोध बाद की नारीवादी आलोचनाओं के लिए आधारभूत बन गए, विशेष रूप से उन आलोचनाओं के लिए जिन्होंने ज्ञानोदय के तर्क और उदारवादी राजनीतिक सिद्धांत की संरचनाओं में निहित लैंगिक मान्यताओं पर प्रश्न उठाए।

3.10 ये विषय अध्याय के तर्क में किस प्रकार सुसंगत बैठते हैं

समग्र रूप से देखने पर, ये विषय वॉल्स्टनक्राफ़्ट के तर्क की केंद्रीय दिशा को स्पष्ट करते हैं। पितृसत्तावाद की उनकी आलोचना यह उजागर करती है कि संरचनात्मक निर्भरता प्राकृतिक अधिकारों के दावों को किस प्रकार कमज़ोर करती है। तर्क-रहित भावना के स्वच्छंदतावादी आदर्श को चुनौती देकर, वे राजनीतिक नियंत्रण के उस रूप को उजागर करती हैं जो महिलाओं को मौन और निर्भर बनाए रखता है। कानूनी अधिकारों और प्रतिनिधित्व पर उनका आग्रह स्वतंत्रता के अर्थ को पूर्ण नागरिक और राजनीतिक व्यक्तित्व तक विस्तारित करता है। ऐसा करते हुए, वॉल्स्टनक्राफ़्ट एक साथ ज्ञानोदय के ढाँचे के भीतर कार्य भी करती हैं और उसका अतिक्रमण भी करती हैं—उसके तर्क और अधिकारों के आदर्शों पर निर्माण करते हुए उसके बहिष्करणों को भी रेखांकित करती हैं। सार्वजनिक/निजी विभाजन से लेकर पुरुषीकृत तर्कसंगतता तक, जिन अनसुलझे तनावों से वे जूझती हैं, वे ज्ञानोदय चिंतन की बाद की नारीवादी आलोचनाओं की वैचारिक नींव रखते हैं।

3.11 सारांश

यह अध्याय अठारहवीं शताब्दी के ज्ञानोदय चिंतन के साथ मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट के आलोचनात्मक संवाद और सार्वभौमिक अधिकारों के उसके दावों की सीमाओं का परीक्षण करता है। जहाँ ज्ञानोदय ने तर्क, स्वतंत्रता और प्राकृतिक अधिकारों का उत्सव मनाया, वहीं रूसो, वॉल्टेयर, मॉन्टेस्क्यू और दिदरो जैसे प्रमुख विचारकों ने महिलाओं को बाहर रखा, और उन्हें भावना द्वारा शासित तथा केवल निजी क्षेत्र के लिए उपयुक्त चित्रित किया। इस अंतर्विरोध ने नारीवादी आलोचना की नींव रखी, क्योंकि वॉल्स्टनक्राफ़्ट और अन्य प्रारंभिक आवाज़ों ने ज्ञानोदय के सिद्धांतों के चयनात्मक अनुप्रयोग को चुनौती दी।

कॉन्डोर्से और वॉन हिपेल सहित कुछ पुरुष विचारकों ने पहचाना कि तर्क का तर्कशास्त्र महिलाओं के समावेश की माँग करता है, और उन्होंने तर्क दिया कि लैंगिक अंतर सामाजिक रूप से निर्मित हैं और महिलाओं का बहिष्करण अत्याचार के समान है। अमेरिका में अबीगेल ऐडम्स और इंग्लैंड में कैथरीन मैकॉले जैसी समानांतर नारीवादी आवाज़ों ने भी राजनीतिक बहिष्करण और असमान शिक्षा के अन्याय को रेखांकित किया, और दिखाया कि महिलाओं ने अपनी अधीनता का विरोध करने के लिए राजनीतिक सिद्धांत का सक्रिय रूप से प्रयोग किया।

फ़्रांसीसी क्रांति के दौरान, महिलाओं की सक्रियता—क्लबों, याचिकाओं और ओलंप दे गूज की *डिक्लेरेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ वुमन* जैसी घोषणाओं के माध्यम से—ने क्रांतिकारी आदर्शों की संभावनाओं और सीमाओं, दोनों को प्रदर्शित किया। सक्रियता के लिए महिलाओं को स्वयं को महिलाओं के रूप में प्रस्तुत करना पड़ा, जिससे वे उन्हीं श्रेणियों की पुष्टि कर रही थीं जिन्हें वे चुनौती देना चाहती थीं, और उन्हें हिंसक दमन का सामना करना पड़ा। ब्रिटेन में, समानता और क्रांति के कुछ पहलुओं का वॉल्स्टनक्राफ़्ट द्वारा बचाव किए जाने के कारण उन्हें कट्टरपंथी और खतरनाक के रूप में चित्रित किया गया, जो नारीवादी दावों के प्रति सामाजिक प्रतिरोध को रेखांकित करता है।

अपनी *विंडिकेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ वुमन* (1792) में, वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने तर्क दिया कि महिलाओं की तथाकथित दुर्बलता सांस्कृतिक रूप से उत्पन्न थी, जिसमें पितृसत्तावाद और सामाजिक मानदंड निर्भरता को बनाए रखते थे तथा शिक्षा, संपत्ति के अधिकारों और राजनीतिक भागीदारी को सीमित करते थे। उन्होंने अठारहवीं शताब्दी के संवेदनशीलता के पंथ की आलोचना की, यह दिखाते हुए कि तर्क-रहित भावना राजनीतिक नियंत्रण के एक उपकरण के रूप में कार्य करती थी। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि नैतिक स्वाधीनता, स्वशासन और प्राधिकार की आलोचना करने की क्षमता के लिए तर्क आवश्यक है।

वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने इन अंतर्दृष्टियों को कानूनी और नागरिक अधिकारों तक विस्तारित किया, और महिलाओं के लिए पूर्ण नैतिक और राजनीतिक व्यक्तित्व प्राप्त करने हेतु संपत्ति के अधिकारों, व्यावसायिक अवसरों, नागरिक संरक्षणों और प्रतिनिधित्व को आवश्यक बताया। तथापि, उन्होंने अपने युग की कुछ मान्यताओं को बनाए रखा, जिनमें पुरुषीकृत तर्कसंगतता, सार्वजनिक/निजी विभाजन और उदारवादी व्यक्तिवाद सम्मिलित हैं, जिससे ऐसे अनसुलझे तनाव उत्पन्न हुए जिनकी बाद के नारीवादी सिद्धांतकारों ने और गहराई से जाँच की।

समग्र रूप से, पितृसत्तावाद, भावना, और कानूनी तथा राजनीतिक जीवन से बहिष्करण की उनकी आलोचना यह दर्शाती है कि उन्होंने ज्ञानोदय चिंतन को किस प्रकार विरासत में पाया भी और उसका अतिक्रमण भी किया। वॉल्स्टनक्राफ़्ट के तर्कों ने तर्क, अधिकारों और समानता की नारीवादी आलोचनाओं की वैचारिक नींव रखी, और लिंग, शिक्षा तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर वाद-विवादों में उनके कार्य की स्थायी प्रासंगिकता को रेखांकित किया।

3.12 शब्दावली

1. **ज्ञानोदय सार्वभौमवाद** – अठारहवीं शताब्दी का यह विचार कि सभी मनुष्यों में तर्क है और इसलिए वे प्राकृतिक अधिकारों को साझा करते हैं; व्यवहार में, प्रायः चयनात्मक रूप से लागू किया गया, जिसमें महिलाओं को बाहर रखा गया।
2. **पितृसत्तावाद (पैटर्नलिज़्म)** – सुरक्षा के रूप में छिपा हुआ सामाजिक या राजनीतिक नियंत्रण; वॉल्स्टनक्राफ़्ट के विश्लेषण में, महिलाओं की निर्भरता को उचित ठहराने और शिक्षा, संपत्ति तथा नागरिक जीवन तक उनकी पहुँच को सीमित करने के लिए प्रयुक्त।
3. **संवेदनशीलता का पंथ (कल्ट ऑफ़ सेंसिबिलिटी)** – स्वच्छंदतावादी युग का यह आदर्श कि महिलाएँ मुख्य रूप से भावुक और कोमल होती हैं; परिष्कार के लिए प्रशंसित, परंतु महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक रूप से निष्क्रिय बनाए रखने के लिए प्रयुक्त।
4. **तर्कसंगतता** – तर्कपूर्ण चिंतन और निर्णय की क्षमता; ज्ञानोदय के विमर्श में पुरुषोचित मानी गई, परंतु वॉल्स्टनक्राफ़्ट के लिए, महिलाओं की नैतिक और राजनीतिक स्वायत्तता के केंद्र में।

5. **ब्लूस्टॉकिंग्स** – अठारहवीं शताब्दी के इंग्लैंड में शिक्षित, बौद्धिक रूप से सक्रिय महिलाओं का एक समूह, जिसने सामाजिक रूप से स्वीकार्य घरेलू मानदंडों के भीतर रहते हुए महिलाओं की शिक्षा का समर्थन किया।

6. **कॉन्डोर्से** – फ़्रांसीसी ज्ञानोदय विचारक जिन्होंने तर्क दिया कि महिलाओं की तर्कसंगत क्षमताएँ पुरुषों के समान थीं और उन्हें राजनीतिक जीवन से बाहर रखना अन्यायपूर्ण था।

7. **वॉन हिपेल** – जर्मन ज्ञानोदय विचारक जिन्होंने यह दृढ़ता से कहा कि लैंगिक अंतर प्राकृतिक नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से उत्पन्न हैं, और पुरुष सक्रिय रूप से महिलाओं की निर्भरता को बनाए रखते हैं।

8. **अबीगेल ऐडम्स** – प्रारंभिक अमेरिकी नारीवादी आवाज़, जिन्होंने अपने पति जॉन ऐडम्स को "महिलाओं को याद रखने" की चेतावनी दी, और महिलाओं की सहमति के बिना शासन करने की असंगति को रेखांकित किया।

9. **कैथरीन मैकॉले** – अंग्रेज़ लेखिका जिन्होंने तर्क दिया कि अनुभूत लैंगिक अंतर असमान शिक्षा से उत्पन्न हुए, और लड़कों तथा लड़कियों के लिए समान शैक्षिक अवसरों की माँग की।

10. **फ़्रांसीसी क्रांति में नारीवादी सक्रियता** – क्रांति के दौरान महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी, जिसमें क्लब, याचिकाएँ और घोषणाएँ सम्मिलित थीं; ओलंप दे गूज इसका उदाहरण हैं।

11. **डिक्लेरेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ वुमन** – ओलंप दे गूज द्वारा 1790 का दस्तावेज़, जिसने यह दावा किया कि स्वतंत्रता और समानता के क्रांतिकारी आदर्शों में महिलाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

12. **सार्वजनिक/निजी विभाजन** – सार्वजनिक (राजनीतिक, कानूनी) जीवन और निजी (घरेलू, पारिवारिक) जीवन के बीच वैचारिक पृथक्करण; प्रायः राजनीति से महिलाओं के बहिष्करण को उचित ठहराने के लिए प्रयुक्त।

13. **कानूनी और नागरिक अधिकार** – संरक्षण और हक़, जिनमें संपत्ति के अधिकार, व्यवसायों तक पहुँच और नागरिक संरक्षण सम्मिलित हैं, जो महिलाओं की स्वायत्तता और राजनीतिक भागीदारी के लिए आवश्यक हैं।

14. **प्रतिनिधित्व** – यह सिद्धांत कि जिन पर शासन किया जाता है, उनकी कानूनों को आकार देने में आवाज़ होनी चाहिए; वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने तर्क दिया कि यह महिलाओं पर भी समान रूप से लागू होता है।

15. **सैद्धांतिक तनाव** – वॉल्स्टनक्राफ़्ट के चिंतन में अनसुलझे अंतर्विरोध, जिनमें पुरुषोचित मानी गई तर्कसंगतता, सार्वजनिक/निजी भेदों और उदारवादी व्यक्तिवाद पर निर्भरता सम्मिलित है, जिनकी बाद के नारीवादी सिद्धांतकारों ने जाँच की।

16. **नारीवादी चेतना** – महिलाओं के सामाजिक और राजनीतिक बहिष्करण के प्रति जागरूकता और उसकी आलोचना; प्रारंभिक नारीवादी चिंतन में प्रत्यक्ष पीछे हटने के कालों में भी यह बनी रही।

3.13 अभ्यास प्रश्न

1. पितृसत्तावाद की वॉल्स्टनक्राफ़्ट की आलोचना का, और यह महिलाओं की तथाकथित दुर्बलता संबंधी मान्यताओं को किस प्रकार चुनौती देती है, इसका आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2. वॉल्स्टनक्राफ़्ट के दर्शन में भावना और तर्क के बीच संबंध की चर्चा कीजिए। वे किस प्रकार प्रस्तावित करती हैं कि तर्क महिलाओं के लिए एक राजनीतिक उपकरण के रूप में कार्य कर सकता है?
3. कानूनी अधिकारों, शिक्षा और प्रतिनिधित्व के पक्ष में वॉल्स्टनक्राफ़्ट के तर्क की व्याख्या कीजिए। वे इन्हें महिलाओं की स्वायत्तता के लिए आवश्यक क्यों मानती हैं?
4. वॉल्स्टनक्राफ़्ट के चिंतन में अनसुलझे सैद्धांतिक तनावों और बाद के नारीवादी सिद्धांत के लिए उनके महत्त्व का विश्लेषण कीजिए।
5. पुरुष और महिला, दोनों के योगदानों को रेखांकित करते हुए, प्रारंभिक नारीवादी विचारों के विकास पर ज्ञानोदय चिंतन और फ़्रांसीसी क्रांति के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए।

3.14 अतिरिक्त पठन सामग्री

- सी. जोन्स (2002) 'मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट्स विंडिकेशन्स एंड देयर पॉलिटिकल ट्रेडिशन', सी. जॉनसन (संपा.) द कैम्ब्रिज कम्पैनियन टू मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट में, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 42-58.

अध्याय 4

उदारवादी उपयोगितावाद; स्वतंत्रता, मताधिकार और लोकतंत्र का समर्थन; महिलाओं की पराधीनता

4.1 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई के अंत तक विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. शास्त्रीय बेंथमवादी उपयोगितावाद की सीमाओं की और इस बात की **व्याख्या करना** कि मिल ने एक अधिक नैतिक और उदारवादी संस्करण क्यों विकसित किया।
2. *उदारवादी उपयोगितावाद* की अवधारणा को **परिभाषित करना**—यह उपयोगिता को स्वतंत्रता, समानता और नैतिक उत्तरदायित्व के साथ किस प्रकार जोड़ता है।
3. मिल के नैतिक सिद्धांत में *स्व-संबंधी (सेल्फ़-रिगार्डिंग)* और *पर-संबंधी (अदर-रिगार्डिंग)* कार्यों के बीच **भेद करना** और *हानि सिद्धांत (हार्म प्रिंसिपल)* को समझना।
4. मिल की तीन आवश्यक स्वतंत्रताओं का **वर्णन करना**: विचार की स्वतंत्रता, कार्य की स्वतंत्रता ("जीवन के प्रयोग"), और संघ बनाने की स्वतंत्रता।
5. इस बात का **परीक्षण करना** कि मिल स्वतंत्रता को वैयक्तिकता, बौद्धिक विकास और मानवीय प्रसन्नता से किस प्रकार जोड़ते हैं।
6. मताधिकार और प्रतिनिधि लोकतंत्र के पक्ष में मिल के तर्कों की **चर्चा करना**, जिनमें योग्यता, शिक्षा और *बहुल मतदान (प्लूरल वोटिंग)* पर उनके विचार सम्मिलित हैं।
7. आधुनिक आलोचनाओं का **मूल्यांकन करना**—विशेष रूप से ग्रोलियोस के इस तर्क का कि मिल के लोकतंत्र ने श्रमिक वर्ग को सशक्त बनाने की तुलना में पूँजीवाद की अधिक रक्षा की।
8. द *सब्जेक्शन ऑफ़ वुमन* में मिल के नारीवादी विचारों की **व्याख्या करना**, जिनमें "प्राकृतिक" स्त्री-हीनता की उनकी अस्वीकृति और कानूनी तथा राजनीतिक समानता की उनकी माँग सम्मिलित है।
9. इस बात का **विश्लेषण करना** कि महिलाओं की स्वतंत्रता और नागरिक भागीदारी मिल के व्यापक उदारवादी और लोकतांत्रिक दर्शन के भीतर तार्किक रूप से किस प्रकार सुसंगत बैठती है।
10. स्वतंत्रता, न्याय, समानता और नैतिक प्रगति को जोड़ते हुए, आधुनिक राजनीतिक चिंतन में मिल के समग्र योगदान का **आकलन करना**।

4.2 प्रस्तावना

इकाई II से **इकाई III** की ओर गति आधुनिक राजनीतिक चिंतन के बौद्धिक इतिहास में एक प्रमुख मोड़ को चिह्नित करती है—**स्वच्छंदतावादी आलोचना से उदारवादी पुनर्निर्माण तक**।

इकाई II में हमने **ज्यां-जैक्स रूसो** और **मैरी वॉल्स्टनक्राफ़्ट** जैसे विचारकों का अध्ययन किया, जिन दोनों ने ज्ञानोदय के सार्वभौमवाद के अंतर्विरोधों और आधुनिक सभ्यता के वचनों—और विफलताओं—से संघर्ष किया। रूसो ने उजागर किया कि प्रगति, संपत्ति और असमानता ने मानवता की प्राकृतिक अच्छाई को किस प्रकार भ्रष्ट कर दिया था, जबकि उनकी **सामान्य इच्छा** की अवधारणा ने सामूहिक स्वशासन के माध्यम से नैतिक स्वतंत्रता के पुनर्निर्माण का प्रयास किया। वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने इस आलोचना को आधुनिक पितृसत्ता तक विस्तारित किया, और उजागर किया कि स्वयं ज्ञानोदय के तर्क को किस प्रकार लैंगिक बना दिया गया था और चयनात्मक रूप से लागू किया गया था। महिलाओं की शिक्षा, नैतिक स्वाधीनता और कानूनी अधिकारों के लिए उनके आह्वान ने यह माँग की कि स्वतंत्रता और समानता के आदर्श वास्तव में सार्वभौमिक हों।

फिर भी रूसो और वॉल्स्टनक्राफ़्ट, दोनों ही, अलग-अलग तरीकों से, आधुनिकता द्वारा उन्मुक्त की गई सामाजिक और आर्थिक शक्तियों के प्रति संशयशील बने रहे। रूसो ने वाणिज्य और बड़े पैमाने के समाजों पर अविश्वास किया, इस भय से कि वे नागरिक सद्गुण को विघटित कर देते हैं। वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने भी देखा कि भावना, निर्भरता और सामाजिक पदानुक्रम तर्क और समानता को निरंतर विकृत कर रहे थे। इस प्रकार उनका चिंतन आधुनिकता की *नैतिक अंतरात्मा* का प्रतिनिधित्व करता है—सत्ता, धन और स्वार्थ से संचालित विश्व में नैतिक गहराई, करुणा और समानता को पुनर्स्थापित करने का आह्वान।

इकाई III के साथ, हम आधुनिक राजनीतिक दर्शन के **उदारवादी चरण** में प्रवेश करते हैं, जहाँ ये विरासत में मिले तनाव—स्वतंत्रता और प्राधिकार, समानता और पदानुक्रम, नैतिक कर्तव्य और सामाजिक व्यवस्था के बीच—तेज़ी से बदलते औद्योगिक समाजों के संदर्भ में पुनः परखे जाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी ने नई सामाजिक वास्तविकताएँ देखीं: पूँजीवाद, नगरीकरण, वर्ग-संघर्ष और प्रतिनिधि सरकार की माँगें। **जॉन स्टुअर्ट मिल** जैसे विचारकों ने तर्क में ज्ञानोदय की आस्था का वैयक्तिकता और नैतिक प्रगति के प्रति स्वच्छंदतावादी चिंताओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया।

मिल का **उदारवादी उपयोगितावाद** का दर्शन ठीक इसी संश्लेषण का प्रयास करता है। जहाँ रूसो ने सामुदायिक नैतिक इच्छा पर और वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने तर्कसंगत समानता पर बल दिया, वहीं मिल स्वतंत्रता की नैतिक और राजनीतिक इकाई के रूप में **व्यक्ति** की ओर मुड़ते हैं। उनकी परियोजना यह दिखाना है कि स्वायत्तता, शिक्षा और भागीदारी पर आधारित आधुनिक स्वतंत्रता सामूहिक कल्याण और सामाजिक व्यवस्था के साथ किस प्रकार सह-अस्तित्व में रह सकती है। वे पूर्ववर्ती नैतिक आलोचना को **उपयोगिता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र और लैंगिक**

समानता के एक व्यवस्थित उदारवादी नीतिशास्त्र में रूपांतरित करते हैं—और उन्नीसवीं शताब्दी के चिंतन में स्वतंत्रता और प्रतिनिधि सरकार का सबसे प्रभावशाली समर्थन प्रस्तुत करते हैं।

संक्षेप में, इकाई II से इकाई III की ओर संक्रमण **स्वच्छंदतावादी नैतिक विद्रोह से उदारवादी संस्थागत पुनर्निर्माण** के मार्ग को रेखांकित करता है। रूसो और वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने ज्ञानोदय को भीतर से चुनौती दी; मिल, उनकी नैतिक तात्कालिकता को विरासत में पाकर, लोकतांत्रिक और औद्योगिक युग की माँगों को पूरा करने के लिए उसके आदर्शों का पुनर्निर्माण करते हैं। जहाँ रूसो ने पूछा कि *मनुष्य समाज में स्वतंत्र कैसे रह सकते हैं*, और वॉल्स्टनक्राफ़्ट ने माँग की कि *महिलाओं को भी तर्क और अधिकारों में भागीदार होना चाहिए*, वहीं मिल इस प्रश्न का उत्तर खोजते हैं कि *जन-लोकतंत्र, सामाजिक अनुरूपता और आर्थिक शक्ति के युग में स्वतंत्रता कैसे बची रह सकती है*।

इस प्रकार, इकाई III इस संवाद के अगले चरण—**स्वतंत्रता, मताधिकार और समानता की उदारवादी पुनर्परिभाषा**—का आरंभ **जॉन स्टुअर्ट मिल** के नैतिक और राजनीतिक दर्शन के माध्यम से करती है।

4.3 शास्त्रीय से उदारवादी उपयोगितावाद तक: पृष्ठभूमि

अध्याय यह स्थापित करने से आरंभ होता है कि उपयोगितावाद का शास्त्रीय बेंथमवादी संस्करण— जो सुख को अधिकतम करने और दुख को न्यूनतम करने पर केंद्रित है—सार्वभौमिक परोपकार पर आधारित ब्रिटिश नैतिक दर्शन का न तो पहला और न ही सबसे रोचक रूप है। "अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख," यद्यपि एक केंद्रीय सिद्धांत है, उसे उन पूर्ववर्ती और परवर्ती दार्शनिकों ने भी अपनाया था जो बेंथम के संकीर्ण दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे। इसलिए, उपयोगितावादी अध्ययनों को बेंथमवादी मॉडल के उत्तराधिकारियों तक सीमित नहीं रखना चाहिए।

इसके अतिरिक्त, बीसवीं शताब्दी के उपयोगितावादी सिद्धांत, जो बड़े पैमाने पर बेंथम के सिद्धांतों पर आधारित थे, आधुनिक दार्शनिक आलोचना के सामने अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं, विशेष रूप से न्याय की माँगों के साथ उनके टकराव के कारण। इसलिए, शास्त्रीय आधार पर उपयोगितावाद का विकास जारी रखना न तो आवश्यक है और न ही लाभदायक। एक नई नींव—**उपयोगितावाद का उदारवादी पुनर्निर्माण**—की आवश्यकता है।

सिद्धांत का पुनर्निर्माण करने से पहले, लेखक उन तीन प्रमुख समस्याओं की पहचान करते हैं जो ऐतिहासिक रूप से उपयोगितावाद को परेशान करती रही हैं: (1) परोपकार का **मानकीय औचित्य** (व्यक्ति को दूसरों की प्रसन्नता को क्यों बढ़ावा देना चाहिए), (2) **मूल्यमीमांसीय (एक्सियोलॉजिकल) समस्या** (प्रसन्नता या मूल्य किससे बनता है), और (3) **अनुप्रयोग का क्षेत्र** (नैतिक सिद्धांतों को व्यवहार में किस प्रकार लागू किया जाना चाहिए)।

II. उपयोगितावाद की मूलभूत समस्याएँ

पहली प्रमुख समस्या **परोपकार के औचित्य** से संबंधित है। उपयोगितावादी लंबे समय से यह दृढ़ता से कहते आए हैं कि प्रसन्नता और निष्पक्षता केंद्रीय नैतिक सिद्धांत हैं, परंतु आलोचक पूछते हैं: *किसी को दूसरों की प्रसन्नता क्यों*

चाहनी चाहिए? तर्क, सहानुभूति, भाषा और सामाजिक आवश्यकता के आधार पर इसके उत्तर देने के प्रयास किए गए हैं। उदाहरण के लिए, कुछ लोग तर्क देते हैं कि चूँकि "अधिक शुभ, कम शुभ से बेहतर है," इसलिए प्रसन्नता को अधिकतम किया जाना चाहिए। अन्य मानवीय सहानुभूति या सामाजिक सहयोग का सहारा लेते हैं। फिर भी इनमें से कोई भी तर्क निर्णायक रूप से यह प्रदर्शित नहीं करता कि व्यक्ति सार्वभौमिक परोपकार का अभ्यास करने के लिए बाध्य हैं। स्वार्थी व्यक्ति प्रसन्नता की नैतिक प्रधानता को नकार सकते हैं और इसके बजाय व्यक्तिगत या पारिवारिक कल्याण को प्राथमिकता दे सकते हैं। इस प्रकार, जब तक उपयोगितावाद को कर्तव्य या शालीनता की प्रतिद्वंद्वी नैतिकताओं जितना प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता, तब तक यह अविश्वसनीय बना रहता है।

दूसरी समस्या मूल्यमीमांसीय है—यह परिभाषित करना कि प्रसन्नता या उपयोगिता किससे बनती है।

- **बेंथमवादी सुखवाद** ने प्रसन्नता को मात्रात्मक रूप से मापे जा सकने वाले इंद्रिय-सुख तक सीमित कर दिया। परंतु यह बेतुके परिणाम सुझाता है: अंतहीन परंतु आदिम संवेदना का जीवन (जैसे एक सीप का) एक छोटे, समृद्ध मानवीय जीवन से बेहतर प्रतीत हो सकता है; या बमुश्किल संतुष्ट प्राणियों की एक विशाल जनसंख्या एक छोटी, आनंदपूर्वक परिपूर्ण जनसंख्या से बेहतर प्रतीत हो सकती है। ऐसे निहितार्थ घृणास्पद हैं।

- **इच्छा या वरीयता उपयोगितावाद**, जो प्रसन्नता को तर्कसंगत इच्छाओं की संतुष्टि के रूप में परिभाषित करता है, भद्दे सुखवाद से तो बचता है परंतु चक्रीय (सर्कुलर) हो जाता है। यदि "तर्कसंगतता" को इस बात से परिभाषित किया जाए कि नैतिक कर्ता क्या चाहते हैं, और नैतिकता को तर्कसंगत इच्छाओं से परिभाषित किया जाए, तो यह अपने ही निष्कर्ष को पहले से मान लेता है।

- **आदर्श या वस्तुनिष्ठ उपयोगितावाद** प्रसन्नता को संस्कृति, ज्ञान या सहानुभूति जैसे वस्तुनिष्ठ शुभों के साथ एकरूप करता है। निम्न सुखों से बचते हुए भी, यह अभिजातवाद या पितृसत्तावाद को आमंत्रित करता है: या तो केवल सुसंस्कृत अल्पसंख्यकों को लाभ पहुँचाना, या स्वायत्तता की कीमत पर सभी पर परिष्कार थोपना।

तीसरी समस्या उपयोगितावादी सिद्धांतों के अनुप्रयोग से संबंधित है। क्या उपयोगिता को प्रत्येक कार्य द्वारा मापा जाना चाहिए या सामान्य नियमों द्वारा? क्या केवल कार्यों के पूर्वानुमेय प्रभावों की गिनती होनी चाहिए, या उनके वास्तविक परिणामों की? क्या नैतिक कर्ताओं को कुल प्रसन्नता पर विचार करना चाहिए या औसत प्रसन्नता पर? और क्या हमारा उन हानियों के लिए जो हम करते हैं और उन हानियों के लिए जिन्हें हम केवल रोकने में विफल रहते हैं, समान उत्तरदायित्व है? ये प्रश्न दिखाते हैं कि उपयोगितावाद को त्यागने की नहीं, बल्कि पुनर्निर्माण की आवश्यकता है।

III. उदारवादी उपयोगितावाद की व्युत्पत्ति

उपयोगितावाद का पुनर्निर्माण करने के लिए, लेखक **द्वंद्वात्मक रूप से** आरंभ करते हैं, और **उपयोगिता**, **समानता** तथा **स्वतंत्रता** के सिद्धांतों को जोड़ते हैं। बेंथम ने उपयोगिता और निष्पक्ष समानता पर बल दिया—सभी की गणना एक के रूप में होती है और किसी की भी एक से अधिक नहीं—परंतु उन्होंने स्वतंत्रता और अधिकारों की उपेक्षा की, जिसके परिणामस्वरूप ऐसे सूत्रीकरण बने जो उत्पीड़न को भी उचित ठहरा सकते थे, यदि उससे शुद्ध प्रसन्नता बढ़ती हो।

तर्क कुख्यात **अखाड़े (एम्फ़ीथिएटर) के उदाहरण** से आरंभ होता है: दस हज़ार दर्शक एक व्यक्ति को शेरों द्वारा खाए जाते देखकर छोटे-छोटे सुख प्राप्त करते हैं, जबकि एक व्यक्ति अत्यधिक पीड़ा सहता है। यदि कुल सुख पीड़ा से अधिक हो, तो शास्त्रीय सुखवादी गणना इस तमाशे को स्वीकृति दे देगी, फिर भी ऐसा निष्कर्ष नैतिक रूप से अपमानजनक है। "अनैतिक सुखों" को बाहर करने या केवल "तर्कसंगत" सुखों को स्वीकार करने के प्रयास विफल हो जाते हैं—या तो चक्रीय तर्क के कारण या अल्पसंख्यक हितों की निंदा के कारण। इसके अतिरिक्त, अतार्किक सुखों को "असामान्य" के रूप में परिभाषित करना अपरंपरागत जीवन-शैलियों पर बहुमत के अत्याचार को उचित ठहराने का जोखिम उठाता है।

एक वैकल्पिक वस्तुनिष्ठतावादी कदम—मूल्य को आत्मनिष्ठ सुख के बजाय **मानवीय आवश्यकताओं** पर आधारित करना—कुछ आशाजनक है। आवश्यकताओं को पदानुक्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है: स्वास्थ्य से पहले अस्तित्व, आनंद से पहले स्वास्थ्य। इस विवरण के अनुसार, पीड़ित का अस्तित्व दर्शकों के आनंद से अधिक महत्त्वपूर्ण है, जिससे वह प्रदर्शन रद्द हो जाता है। फिर भी यह पदानुक्रम पितृसत्तावाद का जोखिम उठाता है: यदि शारीरिक स्वास्थ्य सुख से अधिक महत्त्वपूर्ण है, तो राज्य सभी अस्वास्थ्यकर आनंदों (उदाहरण के लिए, अत्यधिक नमक या वसा) पर प्रतिबंध लगा सकता है। इसलिए स्वयं स्वतंत्रता को एक आवश्यकता और नैतिक मूल्य के रूप में माना जाना चाहिए।

जॉन स्टुअर्ट मिल का **हानि सिद्धांत** प्रमुख सुधार प्रस्तुत करता है: शक्ति का प्रयोग केवल दूसरों को होने वाली हानि को रोकने के लिए किया जा सकता है, किसी व्यक्ति के अपने हित के लिए नहीं। यह स्वायत्तता को पुनर्स्थापित करता है। विशुद्ध रूप से *स्व-संबंधी* आचरण हस्तक्षेप से मुक्त है; केवल वे *पर-संबंधी* कार्य, जो दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, प्रतिबंधित किए जा सकते हैं। इस प्रकार, **उदारवादी उपयोगितावाद** नैतिक और कानूनी बाध्यता को पर-संबंधी मामलों तक सीमित करके शास्त्रीय उपयोगितावाद से भिन्न है।

तथापि, कठोर उदारवाद—जो कर्तव्य को प्रत्यक्ष हानि से बचने तक सीमित करता है—बहुत आगे चला जाता है, और चूकों (ओमिशन्स) तथा अप्रत्यक्ष हानि के लिए नैतिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा करता है। उपयोगितावाद पारंपरिक रूप से नैतिक लेखे-जोखे में कार्यों और चूकों, दोनों को सम्मिलित करता है। **आवश्यकताओं के पदानुक्रम** का उपयोग करके संतुलन स्थापित किया जा सकता है: स्व-संबंधी आचरण या तो (a) दूसरों की

आवश्यकताओं को बाधित नहीं करता, या (b) समान या उच्चतर स्तर पर अपनी स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसके विपरीत, पर-संबंधी कार्य समतुल्य औचित्य के बिना दूसरों को हानि पहुँचाते हैं।

आवश्यकता-पदानुक्रम, स्वतंत्रता और समानता का यह एकीकरण **उदारवादी उपयोगितावाद** को परिभाषित करता है: कर्ता अपनी स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति तब तक कर सकते हैं जब तक वे दूसरों की मूल आवश्यकताओं में बाधा न डालें, और पर-संबंधी हानि तब तक गलत है जब तक वह समान रूप से मूलभूत सुरक्षा के लिए आवश्यक न हो।

IV. उदारवादी उपयोगितावाद का औचित्य

उदारवादी उपयोगितावाद दो आधारभूत सिद्धांतों पर टिका है:

- **A. अधिकतम आवश्यकता-संतुष्टि का सिद्धांत:** कार्य तब उचित हैं जब वे विकल्पों की तुलना में मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि को अधिकतम करते हैं।

- **B. पदानुक्रमिक आवश्यकताओं का सिद्धांत:** मूल आवश्यकताओं—अस्तित्व, स्वास्थ्य, स्वतंत्रता— को सुख या आराम जैसी व्युत्पन्न आवश्यकताओं पर प्राथमिकता प्राप्त है।

यह ढाँचा न्याय के बारे में नैतिक अंतर्ज्ञानों को समाहित करते हुए शुभ को अधिकतम करने के उपयोगितावाद के सामान्य लक्ष्य को बनाए रखता है। यह बेंथमवादी बेतुकेपन से बचता है क्योंकि आवश्यकता-संतुष्टि गुणात्मक और संरचित है।

आपत्तियाँ बनी रहती हैं। कुछ मामले पदानुक्रम को चुनौती देते हैं—जैसे दूसरों की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करके कोमा में पड़े रोगियों को जीवित रखना, या कई प्रत्यारोपण-रोगियों को बचाने के लिए एक स्वस्थ राहगीर का बलिदान देना। उदारवादी उपयोगितावाद यह स्पष्ट करके इनका समाधान करता है कि पदानुक्रम **शब्दकोशीय क्रमवाला (लेक्सिकोग्राफ़िकल)** है (गुणात्मक, अंकगणितीय नहीं)। मूल आवश्यकताएँ कमतर आवश्यकताओं से अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं, परंतु समान स्तर की आवश्यकताओं का अंधाधुंध विनिमय नहीं किया जा सकता। ऐसे टकरावों से निपटने के लिए, सिद्धांत यह जोड़ता है:

- **C. पर-संबंधी आवश्यकता-बाधा का सिद्धांत:** किसी एक व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति किसी दूसरे की मूल आवश्यकताओं को बाधित करके नहीं की जा सकती।

नैतिक दुविधाओं पर लागू करने पर, यह अंग निकालने के लिए एक जीवन का बलिदान देने का निषेध करता है, परंतु **ट्रॉली केस** जैसे अनुमेय अपवादों के लिए स्थान छोड़ता है, जहाँ मारना और मरने देना संदर्भ के अनुसार भिन्न होते हैं। यद्यपि सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक दुखद दुविधा को विशुद्ध उपयोगितावादी तर्क के भीतर हल

नहीं किया जा सकता, फिर भी यह सीमाओं को पहचानकर सुसंगति बनाए रखता है—**नीतिशास्त्र नैतिक त्रासदी को समाप्त नहीं कर सकता**, परंतु तर्कसंगत नैतिक सीमाएँ परिभाषित कर सकता है।

V. उदारवादी उपयोगितावाद की मूल्यमीमांसा (मूल्य का सिद्धांत)

उदारवादी उपयोगितावाद में अंतर्निहित मूल्य का सिद्धांत *शुभ* को मात्र संवेदनाओं के रूप में नहीं, बल्कि पदानुक्रमिक रूप से व्यवस्थित **आवश्यकताओं** की संतुष्टि के रूप में परिभाषित करता है। **जी.एच. वॉन राइट** के आधार पर, आवश्यकताएँ लक्ष्यों से संबंधित होती हैं:

- **आवश्यक लक्ष्य** (अस्तित्व, स्वास्थ्य, कल्याण, प्रसन्नता) **आवश्यक आवश्यकताओं** का आधार हैं।
- **आकस्मिक लक्ष्य** (विलासिता, प्रतिष्ठा, संपत्ति) **अनावश्यक आवश्यकताओं** को उत्पन्न करते हैं।

अतः यह उभरता है:

- **D. आवश्यक और आकस्मिक लक्ष्यों का सिद्धांत:** आवश्यक लक्ष्यों से जुड़ी आवश्यकताओं का स्थान ऊँचा है और उन्हें नैतिक प्राथमिकता प्राप्त है।

यह परिष्कृत पदानुक्रम पहले देखी गई अतियों को रोकता है। उदाहरण के लिए, कोमा में पड़े व्यक्तियों के मात्र अस्तित्व में "अच्छे जीवन" के लिए आवश्यक सार्थक चेतना का अभाव होता है। इसी प्रकार, संभावित हत्याओं को रोकने के लिए लोबोटॉमी करना व्यक्तिगत पहचान को नष्ट कर देता है— जो स्वायत्तता और कल्याण जैसे आवश्यक लक्ष्यों का उल्लंघन है।

फिर भी आवश्यकताओं का वर्गीकरण संदर्भ-निर्भर है; कुछ सीमांत मामलों (जैसे आत्म-सम्मान के लिए कार चाहने वाला व्यक्ति) का अमूर्त रूप से निर्णय नहीं किया जा सकता और वे सैद्धांतिक के बजाय अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र से संबंधित हैं।

आगे, सिद्धांत दो और मूल्यमीमांसीय परिष्कार जोड़ता है:

- **E. जागरूकता का सिद्धांत:** नैतिक विचार केवल उन्हीं प्राणियों पर लागू होता है जो पीड़ा या क्षति का अनुभव करने में सक्षम हैं। अचेतन सत्ताओं (जैसे पौधों) की आवश्यकताएँ होती हैं, परंतु नैतिक स्थिति नहीं। यह भेद एक पैमाना प्रस्तुत करता है—अचेतन प्राणी, संवेदनशील प्राणी, और *व्यक्ति* (अपनी निरंतरता के प्रति जागरूक आत्म-चेतन प्राणी)। संवेदनशील प्राणी पीड़ा से नैतिक सुरक्षा के पात्र हैं; व्यक्तियों का निरंतर अस्तित्व में एक अतिरिक्त नैतिक हित होता है।

- **F. स्वायत्तता का सिद्धांत:** स्वायत्त कर्ताओं द्वारा स्वतंत्र रूप से और जानबूझकर चुनी गई आवश्यकता-संतुष्टि का नैतिक महत्त्व बलपूर्वक या अनजाने में प्राप्त संतुष्टि से अधिक है। आत्म-निर्धारण स्वयं में एक नैतिक लक्ष्य बन जाता है।

मिलकर, ये छह सिद्धांत एक आवश्यकता-आधारित वस्तुनिष्ठ नीतिशास्त्र प्रदान करते हैं जो **पीड़ा-मुक्ति**, **अस्तित्व** और **स्वायत्तता** को आधारभूत मूल्यों के रूप में महत्त्व देता है। नैतिक जगत सुख से आगे बढ़कर जागरूकता, आत्म-निर्देशन और गरिमा को समाहित कर लेता है।

VI. कार्य, नियम, परिणाम और उत्तरदायित्व

इन विचारों को लागू करने के लिए स्पष्ट पद्धतिगत नियमों की आवश्यकता है।

1. **कार्य बनाम नियम उपयोगितावाद:** उदारवादी उपयोगितावाद **कार्य उपयोगितावाद** का समर्थन करता है, जो कठोर नियम-पालन के बजाय व्यक्तिगत कार्यों का मूल्यांकन करता है। नियम केवल सामान्य मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं, निरपेक्ष के रूप में नहीं।

2. **कार्यों और चूकों के लिए उत्तरदायित्व:** मिल का अनुसरण करते हुए, नैतिक उत्तरदायित्व चूकों तक विस्तृत है। कोई व्यक्ति *करके* या *न करके* हानि पहुँचा सकता है। फिर भी उदारवादी ढाँचा आवश्यकता-पदानुक्रम द्वारा इसे सीमित करता है—व्यक्तियों को दूसरों की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की रक्षा के लिए छोटी-मोटी रुचियों का त्याग करना चाहिए, परंतु वे अपने स्वयं के मूल कल्याण का त्याग करने के लिए बाध्य नहीं हैं।

3. **पूर्वानुमेय परिणाम:** नैतिक निर्णय वास्तविक परिणामों पर नहीं, बल्कि इस बात पर निर्भर होना चाहिए कि कोई कर्ता किन परिणामों का **उचित रूप से पूर्वानुमान** लगा सकता था। कर्ताओं को अप्रत्याशित परिणामों के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता (जैसे "डूबते हिटलर" के उदाहरण में)। यह नैतिक उत्तरदायित्व को मनमाने पश्चदृष्टि-निर्णय से सुरक्षित रखता है।

4. **जनसंख्या नीतिशास्त्र:** शास्त्रीय उपयोगितावाद "घृणास्पद निष्कर्ष (रिपग्नेंट कन्क्लूज़न)" का सामना करता है—कि दुखी जीवन जीने वाली एक विशाल जनसंख्या एक छोटी, प्रसन्न जनसंख्या से बेहतर हो सकती है। उदारवादी उपयोगितावाद इससे इस प्रकार बचता है:

    - **K. वास्तविक या भावी अस्तित्व का सिद्धांत:** केवल उन्हीं प्राणियों की आवश्यकताओं की गणना होती है जो विद्यमान हैं या अनिवार्य रूप से विद्यमान होंगे। हम समग्र प्रसन्नता के लिए नए जीवन उत्पन्न करने के कर्तव्य से बँधे नहीं हैं, परंतु हमें विद्यमान या पूर्वानुमेय प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने से बचना चाहिए।

5. **कुल बनाम औसत प्रसन्नता:** उदारवादी मॉडल दोनों को अस्वीकार करता है। यह किसी अमूर्त योग या औसत को अधिकतम करने के बजाय ठोस आवश्यकताओं की संतुष्टि पर केंद्रित है।

6. **नकारात्मक बनाम सकारात्मक उपयोगितावाद:** कार्ल पॉपर के नकारात्मक उपयोगितावाद ने केवल पीड़ा को न्यूनतम करने को प्राथमिकता दी, परंतु यह शून्यवाद (निहिलिज़्म) का जोखिम उठाता है—यदि संवेदनशील जीवन को समाप्त करके सारी पीड़ा समाप्त हो जाए, तो वह "सर्वोत्तम" होगा। उदारवादी उपयोगितावाद दोनों पक्षों को इस प्रकार एकीकृत करता है:

    - **L. सकारात्मक उपयोगितावाद का सिद्धांत:** नैतिकता में पीड़ा से राहत देना *और* सकारात्मक कल्याण को बढ़ावा देना, दोनों सम्मिलित हैं। प्रसन्नता, गरिमा और आत्म-साक्षात्कार का अंतर्निहित महत्त्व है, केवल पीड़ा के अभाव का नहीं।

परिणाम उपयोगितावादी नीतिशास्त्र का एक मानवीय और व्यावहारिक रूप से संतुलित संस्करण है—जो अत्यधिक माँगों से बचता है और सामाजिक उत्तरदायित्व को नकारे बिना स्वतंत्रता की रक्षा करता है।

VII. अंतिम समेकन: उदारवादी उपयोगितावाद के सिद्धांत

संपूर्ण सिद्धांत को सिद्धांतों के दो समूहों में संक्षेपित किया जा सकता है:

A. मानकीय और मूल्यमीमांसीय आधार

1. **A – अधिकतम आवश्यकता-संतुष्टि:** उचित कार्य मानवीय आवश्यकताओं की समग्र संतुष्टि को अधिकतम करते हैं।

2. **B – पदानुक्रमिक आवश्यकताएँ:** मूल आवश्यकताओं का स्थान व्युत्पन्न आवश्यकताओं से ऊपर है।

3. **C – पर-संबंधी आवश्यकता-बाधा:** किसी की भी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उसी स्तर पर किसी दूसरे की आवश्यकताओं को बाधित करके नहीं की जानी चाहिए।

4. **D – आवश्यक और आकस्मिक लक्ष्य:** अस्तित्व, स्वास्थ्य और प्रसन्नता से जुड़ी आवश्यकताएँ अंतर्निहित रूप से श्रेष्ठ हैं।

5. **E – जागरूकता:** नैतिक रूप से केवल चेतन प्राणियों की आवश्यकताओं की गणना होती है।

6. **F – स्वायत्तता:** स्वतंत्र रूप से चुनी गई, सूचित आवश्यकता-संतुष्टि नैतिक रूप से बलपूर्वक प्राप्त रूपों से उच्चतर है।

B. क्रियात्मक और पद्धतिगत अनुप्रयोग

7. **G – कार्य-उपयोगितावाद:** प्रत्येक कार्य का निर्णय उसके अपने संदर्भगत परिणामों के आधार पर किया जाना है।
8. **H – कार्यों और चूकों की समरूपता:** चूकें नैतिक रूप से कार्यों के समतुल्य हैं।
9. **J – पूर्वानुमेय परिणाम:** औचित्य उन परिणामों पर निर्भर करता है जिनका कर्ता पूर्वानुमान लगा सकते हैं।
10. **K – वास्तविक या भावी अस्तित्व:** नैतिक चिंता केवल विद्यमान या अनिवार्य रूप से विद्यमान होने वाले प्राणियों पर लागू होती है।
11. **L – सकारात्मक उपयोगितावाद:** नैतिकता में हानि की रोकथाम और प्रसन्नता का संवर्धन, दोनों सम्मिलित हैं।

संक्षिप्त सूत्र इस दृष्टिकोण को संक्षेप में व्यक्त करते हैं:

- **LU (उदारवादी उपयोगितावाद):** मूल आवश्यकता-संतुष्टि को अधिकतम करना तब तक उचित है जब तक इसमें दूसरों की आवश्यक आवश्यकताओं का बलिदान सम्मिलित न हो।
- **OL (उदारवादी उपयोगितावाद की रूपरेखा):** किसी दूसरे की मूल आवश्यकता-संतुष्टि को बाधित करना तब तक गलत है जब तक दूसरों की समान आवश्यकताओं की रक्षा के लिए यह आवश्यक न हो।

स्वरूप-निर्धारण और महत्त्व

इस प्रकार उदारवादी उपयोगितावाद एक **न्यूनतम परंतु स्थिर नैतिक सिद्धांत** के रूप में उभरता है। यह उपयोगितावाद के करुणामय लक्ष्य—सार्वभौमिक कल्याण—को बनाए रखता है, फिर भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्वायत्तता और न्याय के माध्यम से उसे संतुलित करता है। यह सत्तावादी परोपकार और स्वार्थी उदारवाद, दोनों की अतियों को अस्वीकार करता है।

यह सिद्धांत न तो असंभव बलिदानों की माँग करता है और न ही मनमानी हानि की अनुमति देता है। यह स्वीकार करता है कि नैतिकता प्रत्येक दुखद टकराव का समाधान नहीं कर सकती, परंतु प्रसन्नता, अधिकारों और स्वतंत्रता के बीच संतुलन के लिए तर्कसंगत, मानवीय मानदंड प्रदान करता है। उपयोगिता, समानता और स्वतंत्रता को एकीकृत करके, यह नवीनीकृत उपयोगितावाद पश्चिमी नैतिक परंपरा के भीतर सबसे सुसंगत नैतिक संश्लेषण के रूप में खड़ा है—*शास्त्रीय से उदारवादी उपयोगितावाद की ओर* एक कदम।

4.4 जॉन स्टुअर्ट मिल के स्वतंत्रता के विचार को समझना

जॉन स्टुअर्ट मिल की *ऑन लिबर्टी* (1859), जो उनकी पत्नी हैरियट को समर्पित है, उस काल में लिखी गई जब वे उस बात से अत्यंत चिंतित थे जिसे उन्होंने बढ़ता हुआ "मत का अत्याचार (टिरैनी ऑफ़ ओपिनियन)" कहा। मिल का मानना था कि आधुनिक समाज को अब मुख्य रूप से राजाओं या सरकारों से नहीं, बल्कि अनुरूपता के दबाव से खतरा है—वे अपेक्षाएँ, रीति-रिवाज, दृष्टिकोण और सार्वजनिक निर्णय जो चुपचाप व्यक्तियों को बाकी सभी की तरह सोचने और व्यवहार करने के लिए विवश करते हैं। हैरियट को लिखे एक पत्र में, उन्होंने यहाँ तक चेतावनी दी कि सामाजिक सुधारक स्वयं "स्वतंत्रता-घाती (लिबर्टीसाइड)" बनते जा रहे थे, अर्थात् वे अपने नैतिक विचारों को सभी पर थोपने का प्रयास करके अनजाने में स्वतंत्रता को नष्ट कर रहे थे। **सामाजिक अत्याचार** का यह भय—नियंत्रण का एक ऐसा रूप जो शरीर को कैद नहीं करता, बल्कि "स्वयं आत्मा को दास बना लेता है"—*ऑन लिबर्टी* का आरंभ-बिंदु है। मिल तर्क देते हैं कि ऐसा अत्याचार कानूनी उत्पीड़न से अधिक खतरनाक है क्योंकि यह लोगों को भीतर से आकार देता है, उनकी वैयक्तिकता को कुचल देता है और स्वतंत्र रूप से सोचने की उनकी क्षमता को दुर्बल कर देता है। इसलिए उनकी पुस्तक का केंद्रीय लक्ष्य समाज के प्राधिकार और व्यक्ति की स्वाधीनता के बीच सही संतुलन खोजना है, और जीवन के उस क्षेत्र को चिह्नित करना है जिसमें प्रत्येक मनुष्य को बलप्रयोग के भय के बिना—चाहे वह राज्य से हो या जनमत से—कार्य करने, सोचने, बोलने और चुनने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए।

मिल स्पष्ट करते हैं कि मानवीय स्वतंत्रता का यह संरक्षित क्षेत्र तीन घनिष्ठ रूप से जुड़ी स्वतंत्रताओं से बना है। पहली है **विचार और भावना की स्वतंत्रता**, जिसमें हर विषय—राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक या वैज्ञानिक—पर मत की पूर्ण स्वतंत्रता सम्मिलित है। दूसरी है **रुचियों और लक्ष्यों की स्वतंत्रता**, अपने चरित्र और रुचियों के अनुसार अपने जीवन की रूपरेखा बनाने और उसे संचालित करने की स्वतंत्रता, बशर्ते व्यक्ति दूसरों को हानि न पहुँचाए। तीसरी है **संघ बनाने की स्वतंत्रता**, उन शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए दूसरों के साथ जुड़ने का अधिकार जो किसी को हानि नहीं पहुँचाते। मिलकर, ये **वैयक्तिकता** के लिए आवश्यक शर्तें बनाती हैं, जिसे मिल सर्वोच्च मानवीय शुभ मानते हैं। उनके लिए, स्वतंत्रता केवल प्रतिबंध का अभाव नहीं है; यह वह क्षेत्र है जिसमें मनुष्य विकसित हो सकते हैं, विवेक का विकास कर सकते हैं, जीने के तरीकों के साथ प्रयोग कर सकते हैं, और यह खोज सकते हैं कि वे वास्तव में किसे महत्त्व देते हैं। जो समाज इस स्वतंत्रता से इनकार करता है, वह अपने सदस्यों को पूर्ण रूप से विकसित व्यक्ति बनने से रोकता है और उन्हें रीति-रिवाज का निष्क्रिय अनुयायी बना देता है।

मिल स्वतंत्रता का बचाव **विचार और चर्चा की स्वतंत्रता** से आरंभ करते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि सत्य को केवल खुले वाद-विवाद के वातावरण में ही खोजा और बनाए रखा जा सकता है। किसी भी मत को—चाहे वह सत्य हो या असत्य—चुप कराना समाज को हानि पहुँचाता है। यदि कोई मत सत्य है, तो उसका दमन लोगों को अपनी भूलें सुधारने के अवसर से वंचित कर देता है; यदि वह असत्य है, तो उसका सामना करना समझ को तीक्ष्ण बनाता है और सत्य को सुदृढ़ करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मिल इस बात पर बल देते हैं कि सही विश्वास भी, जब निष्क्रिय रूप से स्वीकार किए जाते हैं, तो अपनी समस्त जीवंतता खो देते हैं। जो व्यक्ति किसी विश्वास की

व्याख्या या बचाव नहीं कर सकता, वह उसे वास्तव में "जानता" नहीं है; वह केवल उसे दोहराता है। इसलिए, प्रत्येक सिद्धांत, चाहे वह कितना भी आपत्तिजनक या "अनैतिक" प्रतीत हो, चुनौती के लिए खुला रहना चाहिए। केवल निरंतर चर्चा के माध्यम से ही लोग आज्ञापालन की अंधी आदतों के बजाय सक्रिय, तर्कशील मस्तिष्क प्राप्त करते हैं। इसी कारण, मिल एक ऐसी बौद्धिक संस्कृति चाहते हैं जिसमें सिद्धांत प्रतिस्पर्धा करें, टकराएँ और एक-दूसरे की परीक्षा लें, जिससे समाज अधिक विचारशील, आत्म-आलोचनात्मक और प्रगति करने में सक्षम बने।

परंतु मिल यह भी समझते हैं कि यदि वाणी प्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाती है, तो अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता संभव नहीं है। वे प्रसिद्ध रूप से स्पष्ट करते हैं कि किसी पुस्तक में सार्वजनिक रूप से यह तर्क देना कि "अनाज-व्यापारी गरीबों को भूखा मारते हैं" अनुमेय है, परंतु किसी अनाज-व्यापारी के घर के बाहर एक क्रुद्ध भीड़ के सामने यही बात चिल्लाकर कहना अनुमेय नहीं है। वे कहते हैं कि मुद्दा यह नहीं है कि मत आपत्तिजनक है या नहीं, बल्कि यह है कि क्या उसका उपयोग हिंसा के लिए जानबूझकर उकसावे के रूप में किया जा रहा है। वाणी को केवल तभी प्रतिबंधित किया जा सकता है जब वह हानि के लिए प्रत्यक्ष उकसावा हो—तब नहीं जब वह केवल दूसरों को आघात पहुँचाती, क्रुद्ध करती या विचलित करती हो।

इसके बाद मिल अपने तर्क को विचार से **आचरण** तक विस्तारित करते हैं। यदि व्यक्ति अपने विश्वासों को रखने और अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्र हैं, तो उन्हें उन पर कार्य करने के लिए भी स्वतंत्र होना चाहिए—जब तक उनके कार्य दूसरों को हानि न पहुँचाएँ। मनुष्यों को विभिन्न "जीवन के प्रयोग" करने की स्वतंत्रता की आवश्यकता है, ताकि वे खोज सकें कि किस प्रकार के जीवन उनके चरित्र के अनुकूल हैं। भले ही कुछ जीवन-शैलियाँ दूसरों से अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण या सुखी हों, लोगों को उनका अनुसरण करने के लिए विवश करना उसी चीज़ को नष्ट कर देता है जो नैतिक और बौद्धिक विकास को संभव बनाती है: **चुनाव**। मिल मानव स्वभाव की तुलना एक मशीन के बजाय एक बढ़ते हुए वृक्ष से करते हैं। एक मशीन अपनी रूपरेखा के अनुसार कार्य करती है, परंतु एक वृक्ष अपनी आंतरिक ऊर्जा से बढ़ता है। उसी प्रकार, व्यक्तियों को बाहर से ढाले जाने के बजाय अपने स्वयं के अनुभवों के माध्यम से विकसित होना चाहिए। मिल के लिए, वैयक्तिकता—अपने जीवन को भीतर से आकार देने की क्षमता—मानवीय गरिमा और उच्चतर प्रसन्नता का स्रोत है। यह केवल असाधारण लोगों या प्रतिभाशालियों की नहीं, बल्कि मूलभूत बुद्धि और अनुभव वाले सभी वयस्कों की है। प्रतिभाशाली लोग प्रेरणा दे सकते हैं, परंतु वे आज्ञापालन की माँग नहीं कर सकते। विवश अनुकरण आदेश देने वाले और आज्ञा मानने वाले, दोनों को भ्रष्ट करता है।

मिल के तर्क के केंद्र में उनका **"अत्यंत सरल सिद्धांत," अर्थात् हानि सिद्धांत** है: समाज किसी व्यक्ति पर विधिसम्मत रूप से शक्ति का प्रयोग केवल दूसरों को होने वाली हानि को रोकने के लिए कर सकता है। व्यक्ति का अपना हित—चाहे शारीरिक हो, नैतिक हो या आध्यात्मिक—हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त कारण नहीं है। यह सिद्धांत **पितृसत्तावाद** (लोगों को उनके अपने लाभ के लिए विवश करना) और **नैतिकतावाद (मॉरलिज़्म)** (व्यवहार को केवल इसलिए दंडित करना क्योंकि वह दूसरों को आपत्तिजनक लगता है), दोनों को अस्वीकार करता है। मिल स्पष्ट

उदाहरण देते हैं: किसी को ढहते हुए पुल को पार करने से रोकना केवल इसलिए अनुमत है क्योंकि वह खतरे को नहीं जानता; एक बार चेतावनी दिए जाने के बाद, उसे निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। इसी प्रकार, घृणा की भावनाएँ—जैसे सूअर का मांस खाने के प्रति किसी मुसलमान की अरुचि या मद्यपान के प्रति किसी प्यूरिटन की अप्रसन्नता—कानूनी प्रतिबंधों को उचित नहीं ठहरा सकतीं। मिल के लिए, हानि का अर्थ किसी के अधिकारों या महत्त्वपूर्ण हितों का उल्लंघन करना है, उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचाना नहीं।

साथ ही, मिल यह स्वीकार करते हैं कि लोगों के कुछ **सामाजिक दायित्व** होते हैं। व्यक्तियों को कर चुकाने चाहिए, आवश्यकता पड़ने पर समुदाय की रक्षा करनी चाहिए, और यदि ऐसा करने में बड़ी व्यक्तिगत कीमत न चुकानी पड़े तो संकट में पड़े दूसरों की सहायता करनी चाहिए। व्यापार और वाणिज्य, निजी व्यवहार के विपरीत, नियंत्रित किए जा सकते हैं क्योंकि वे दूसरों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। ये कर्तव्य स्वतंत्रता का खंडन नहीं करते क्योंकि वे सहयोग और निष्पक्षता से संबंधित हैं, व्यक्तिगत आत्म-निर्देशन से नहीं।

मिल अपने पूरे तर्क में उपयोगितावादी बने रहते हैं, परंतु वे उपयोगिता की व्याख्या एक "व्यापक अर्थ" में करते हैं—केवल सुख के रूप में नहीं, बल्कि प्रगतिशील, आत्म-निर्देशित प्राणियों के रूप में मनुष्यों के दीर्घकालिक विकास के रूप में। स्वतंत्रता सत्य, प्रसन्नता, सृजनात्मकता और नैतिक आत्म-निर्देशन को बढ़ावा देती है। इसलिए, मिल के दृष्टिकोण में, स्वतंत्रता और उपयोगितावाद एक-दूसरे का समर्थन करते हैं: स्वतंत्र, आत्म-निर्धारक व्यक्तियों वाला समाज सबसे सुखी और सबसे प्रगतिशील होता है।

मिल को बेहतर ढंग से समझने के लिए, हम **सी. एल. टेन की कृति: मिल्स ऑन लिबर्टी: ए क्रिटिकल गाइड, संपादक सी. एल. टेन, 2009** की सशक्त व्याख्या का उपयोग करते हैं, जो दिखाती है कि मिल के विचार समकालीन मुद्दों पर किस प्रकार लागू होते हैं। टेन स्पष्ट करते हैं कि मिल का वैयक्तिकता का बचाव धार्मिक स्वतंत्रता से आगे बढ़कर नैतिक और सांस्कृतिक विविधता के सभी रूपों तक विस्तृत है। जिस प्रकार स्वतंत्रता एक धार्मिक समाज में नास्तिकों की रक्षा करती है, उसी प्रकार उसे समलैंगिकों, सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों और हानिरहित परंतु अपरंपरागत जीवन जीने वाले किसी भी व्यक्ति की रक्षा करनी चाहिए। मॉर्मन बहुविवाह का मिल का अपना उदाहरण यह दिखाता है: यदि वयस्क स्वेच्छा से ऐसी व्यवस्थाओं में प्रवेश करते हैं, तो राज्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए; परंतु यदि समुदाय सदस्यों को फँसाने या असहमति को रोकने के लिए आंतरिक बलप्रयोग का उपयोग करता है, तो चुनाव की वास्तविक स्वतंत्रता को पुनर्स्थापित करने के लिए हस्तक्षेप उचित है। मिल इसी प्रकार असीमित माता-पिता के प्राधिकार को अस्वीकार करते हैं और अनिवार्य शिक्षा का समर्थन करते हैं—मूल्यों को थोपने के लिए नहीं, बल्कि बच्चों को स्वायत्तता के लिए तैयार करने के लिए। बच्चों के प्रति पितृसत्तावाद केवल उनकी भावी स्वाधीनता के विकास के लिए उचित है, उन्हें निर्भर बनाए रखने के लिए नहीं।

सी. एल. टेन मिल से प्रेरित बाद के वाद-विवादों का भी मानचित्र प्रस्तुत करते हैं। कुछ विद्वान पूछते हैं कि क्या मिल नकारात्मक स्वतंत्रता (हस्तक्षेप से मुक्ति) का बचाव करते हैं या एक समृद्धतर, सकारात्मक स्वतंत्रता का। अन्य यह

अन्वेषण करते हैं कि उनका उदारवाद उपयोगितावादी न्याय से किस प्रकार जुड़ता है या जॉन रॉल्स से उसकी तुलना कैसी है। जेराल्ड गॉस मिल के उदारवाद को तटस्थता और पारस्परिकता के रूप में देखते हैं, जबकि फ्रैंक लवेट यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या "अहस्तक्षेप" स्वैच्छिक दासता या महिलाओं की अधीनता की मिल की अस्वीकृति को पूरी तरह स्पष्ट कर सकता है। वेंडी डॉनर और जेरेमी वाल्ड्रन जैसे नारीवादी और बहुसांस्कृतिक विद्वान यह परीक्षण करते हैं कि वैयक्तिकता उत्पीड़ित समूहों और अल्पसंख्यक संस्कृतियों पर किस प्रकार लागू होती है। जस्टिन बर्ली जैसे जैवनीतिशास्त्री मिल के "जीवन के प्रयोगों" के विचार को प्रजनन संबंधी चुनावों और आनुवंशिक प्रौद्योगिकियों तक विस्तारित करते हैं। रॉबर्ट यंग और रोनाल्ड ड्वॉर्किन जैसे दार्शनिक इस पर वाद-विवाद करते हैं कि क्या मिल का पितृसत्तावाद-विरोध कुछ ऐसे हस्तक्षेपों की अनुमति देता है जो वास्तव में लोगों की स्वायत्तता को आत्म-विनाशकारी कार्यों से बचाते हैं।

टेन यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मिल इन सभी वाद-विवादों का स्वागत करते, क्योंकि मिल के अपने सिद्धांतों के अनुसार, कोई भी मत—मिल का मत भी—आलोचना से बच नहीं सकता। *ऑन लिबर्टी* का स्थायी महत्त्व उसके इस आग्रह में निहित है कि मानवता की प्रगति उस नैतिक और बौद्धिक क्षेत्र की रक्षा पर निर्भर करती है जिसमें वैयक्तिकता विकसित हो सके, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अन्य सभी की समान स्वतंत्रता के साथ सामंजस्य में अपने स्वयं के हित की प्राप्ति कर सके। मिल तर्क देते हैं कि समाज को एक कठोर मशीन नहीं, बल्कि एक जीवंत और विविधतापूर्ण क्षेत्र होना चाहिए जहाँ मनुष्य चुनाव, सृजनात्मकता, भिन्नता और पारस्परिक सम्मान के माध्यम से विकसित होते हैं।

4.5 जे. एस. मिल में मताधिकार और लोकतंत्र का समर्थन

जॉन स्टुअर्ट मिल ने **मताधिकार** के प्रश्न को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सामूहिक स्वशासन के साथ सामंजस्य स्थापित करने की अपनी व्यापक परियोजना के भाग के रूप में देखा। मिल के लिए, मत देने का अधिकार केवल एक राजनीतिक हक़ नहीं, बल्कि नागरिक उत्तरदायित्व के विकास का एक साधन था। उनका विश्वास था कि सार्वजनिक मामलों में भागीदारी नागरिकों की नैतिक और बौद्धिक क्षमताओं का पोषण करती है, और इस प्रकार व्यक्ति और समुदाय, दोनों को सुदृढ़ करती है। तथापि, मिल ने मताधिकार को एक बिना शर्त अधिकार नहीं माना। उन्होंने बार-बार **योग्यता** के विचार पर बल दिया—यह विश्वास कि मतदाताओं में अपने मत का उत्तरदायित्वपूर्ण प्रयोग करने के लिए शिक्षा, तर्कसंगतता और नागरिक सद्गुण का एक मूलभूत स्तर होना चाहिए। यही कारण है कि मिल ने **मताधिकार के विस्तार** का, विशेष रूप से श्रमिक वर्गों के लिए, समर्थन किया, परंतु साथ ही **बहुल मतदान** का प्रस्ताव भी रखा, एक ऐसी व्यवस्था जो "शिक्षित" या अधिक "सुसंस्कृत" लोगों को अतिरिक्त मत प्रदान करती थी। मिल के दृष्टिकोण में, बहुल मतदान यह सुनिश्चित करता था कि राजनीतिक निर्णय बहुमत की आवश्यकताओं और सुशासन के लिए आवश्यक बुद्धिमत्ता, दोनों को प्रतिबिंबित करें। इस प्रकार, मिल के राजनीतिक चिंतन में मताधिकार का विस्तार और मताधिकार पर प्रतिबंध साथ-साथ विद्यमान थे।

मिल का **लोकतंत्र का समर्थन** सशक्तीकरण और संयम के बीच इसी प्रकार के संतुलन पर आधारित था। मिल के लिए, लोकतंत्र मुख्य रूप से इसलिए उचित नहीं था कि वह बहुमत की इच्छा को व्यक्त करता था, बल्कि इसलिए कि वह भागीदारी के माध्यम से नागरिकों के नैतिक विकास को बढ़ाता था। **भागीदारी**, **प्रतिनिधित्व**, **शिक्षित नागरिक-वर्ग** और **संविधानवाद** जैसे शब्द उनके तर्क के केंद्र में थे। भागीदारी आत्म-विकास के अवसर प्रदान करती थी; प्रतिनिधित्व यह सुनिश्चित करता था कि विविध सामाजिक हितों को संस्थागत अभिव्यक्ति मिले; एक शिक्षित नागरिक-वर्ग आवेग के ऊपर विचार-विमर्श को बनाए रखता था; और संविधानवाद लोकतांत्रिक शक्ति के संभावित दुरुपयोग पर सीमाएँ लगाता था। मिल **बहुमत के अत्याचार** से डरते थे, विशेष रूप से तब जब संख्यात्मक बहुमत अल्पसंख्यकों के दमन के लिए राज्य-शक्ति का उपयोग कर सकते थे। इसलिए, उनकी लोकतंत्र की दृष्टि में संस्थागत सुरक्षा-उपाय और उन लोगों के लिए भारित प्रभाव सम्मिलित थे जिन्हें वे सार्वजनिक हित में योगदान देने के लिए बेहतर रूप से सक्षम मानते थे। मिल के हाथों में, लोकतंत्र एक नैतिक-प्रशिक्षण संस्था और अपरिष्कृत मत, अशिक्षित मतदाताओं तथा आवेगपूर्ण सामूहिक व्यवहार के विरुद्ध एक विस्तृत रक्षा-व्यवस्था, दोनों बन गया।

ये पक्ष सीधे मिल की **उदारवादी मान्यताओं** से निकलते हैं। मिल का विश्वास था कि व्यक्ति अपनी क्षमताओं में भिन्न होते हैं, और समाज को तब लाभ होता है जब राजनीतिक शक्ति इस प्रकार वितरित की जाए जो इन भिन्नताओं को प्रतिबिंबित करे। उनके उदारवाद ने प्रगति, तर्कसंगत सुधार और नैतिक शिक्षा पर बल दिया—ऐसे मूल्य जिन्हें वे मुख्य रूप से मध्यम वर्गों और व्यावसायिक समूहों से जोड़ते थे। इसलिए, उनका लोकतांत्रिक सुधारवाद सतर्क, योग्यतावादी और पितृसत्तात्मक था: वे अधिकारों का व्यापक विस्तार करना चाहते थे, परंतु कभी इतना व्यापक नहीं कि वह सामाजिक व्यवस्था, संपत्ति-संबंधों या शिक्षित वर्गों के सांस्कृतिक प्राधिकार को अस्थिर कर दे। मताधिकार, बहुल मतदान, संवैधानिक नियंत्रणों और चरित्र-निर्माण के उनके प्रस्ताव, सभी स्वतंत्रता का पदानुक्रम के साथ और समानता का योग्यता के साथ सामंजस्य स्थापित करने के इसी प्रयास से उत्पन्न होते हैं।

यद्यपि मिल का मानना था कि वे शिक्षा, योग्यता और संवैधानिक सुरक्षा-उपायों के माध्यम से लोकतंत्र को परिष्कृत करके उसका बचाव कर रहे थे, समकालीन विद्वत्ता ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या इन परिष्कारों ने लोकतंत्र को सुदृढ़ किया या अंततः उसे कमज़ोर कर दिया। सबसे प्रभावशाली पुनर्व्याख्याओं में से एक वासिलिस ग्रोलियोस की है, जो तर्क देते हैं कि मिल के प्रस्तावों— विशेष रूप से मताधिकार, बहुल मतदान और राजनीतिक योग्यता पर उनके विचारों—को केवल दार्शनिक सिद्धांतों के रूप में ही नहीं, बल्कि उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के प्रतिबिंब के रूप में भी समझा जाना चाहिए जिसे वे बनाए रखना चाहते थे। ग्रोलियोस सुझाव देते हैं कि मिल का लोकतंत्र का बचाव उनके पूँजीवाद के बचाव से अविभाज्य था, और बहुमत की शक्ति के बारे में उनके भय वर्ग-संघर्ष और श्रमिकों के राजनीतिक कर्तृत्व के बारे में गहरी चिंताओं को उजागर करते हैं।

वासिलिस ग्रोलियोस का लेख "जे.एस. मिल्स व्यूज़ ऑन डेमोक्रेसी आफ़्टर 1848" जॉन स्टुअर्ट मिल की एक निरंतर, आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करता है, और यह तर्क देता है कि मिल अधिकांश टीकाकारों की मान्यता

की तुलना में कहीं कम लोकतांत्रिक और पूँजीवादी सिद्धांतों के प्रति कहीं अधिक प्रतिबद्ध थे। ग्रोलियोस यह रेखांकित करने से आरंभ करते हैं कि मिल का दार्शनिक मानवशास्त्र—मानव स्वभाव और नैतिक विकास के बारे में उनकी मान्यताएँ—उन संयत पूँजीवादी मूल्यों से आकार लेता था जिन्हें उन्होंने स्वाभाविक और अनिवार्य मानकर आत्मसात कर लिया था। चूँकि मिल इन मूल्यों को मानवीय सुधार के नैतिक ताने-बाने का हिस्सा मानते थे, इसलिए वे कभी भी समाजवाद या पूर्णतः समतावादी लोकतंत्र को पूरे मन से नहीं अपना सके। समकालीन विद्वत्ता में जो मिल का "कट्टरपंथ" या "आद्य-समाजवाद" प्रतीत होता है, वह ग्रोलियोस की व्याख्या में एक ऐसे विचारक की गलत समझ है जो सदैव पूँजीपति वर्ग की विश्वदृष्टि और हितों से बँधा रहा। अधिक से अधिक, मिल ने श्रमिक वर्ग की कुछ माँगों के प्रति सहानुभूति रखी, परंतु यह सहानुभूति केवल तब तक बनी रही जब तक ये माँगें पूँजीवादी उत्पादन की मूलभूत संरचना को चुनौती नहीं देती थीं। उनका सुधारवाद, यद्यपि भाषा में कभी-कभी गर्मजोशी भरा था, सतर्क, पितृसत्तात्मक और मौजूदा पदानुक्रमों को रूपांतरित करने के बजाय उन्हें स्थिर करने की ओर उन्मुख था।

ग्रोलियोस इस बात पर बल देते हैं कि 1848 की क्रांतियों के बाद के मिल के लेखन भी—जिन्हें प्रायः उनके सबसे प्रगतिशील लेखन माना जाता है—जन-शासन और लोकप्रिय संप्रभुता के प्रति एक गहरे भय को उजागर करते हैं। फ़्रांस की उथल-पुथल ने मिल के चिंतन को विशेष रूप से आकार दिया, और उन्हें मताधिकार के विस्तार का समर्थन जनसाधारण को सशक्त बनाने के लिए नहीं, बल्कि उन्हें शांत करने के लिए करने को प्रेरित किया। मिल के लिए, श्रमिकों को संसद में आवाज़ देने से शक्ति-संबंध नहीं बदलेंगे; बल्कि, इससे उन्हें यह अनुभूति मिलेगी कि उनकी बात सुनी जा रही है, और इस प्रकार संपत्ति को खतरे में डाले बिना असंतोष कम होगा। यह उसे उजागर करता है जिसे ग्रोलियोस मिल का "पितृसत्तात्मक समावेशन" कहते हैं: श्रमिक वर्ग को केवल इस शर्त पर भाग लेना चाहिए कि भागीदारी उन्हें पूँजीवादी हितों को अपने हितों के अनुरूप देखना सिखाए। मिल ने राजनीतिक परिपक्वता को निजी संपत्ति की स्वीकृति के बराबर माना, जिसका अर्थ है कि उनके लिए लोकतंत्र पूँजीवादी मानदंडों को आत्मसात करने की शर्त पर निर्भर था। इस प्रकाश में, व्यापक मताधिकार के लिए उनका समर्थन समानता के प्रति प्रतिबद्धता कम, और संभावित चुनौती देने वालों को एकीकृत करके पूँजीवाद को स्थिर करने की एक रणनीति अधिक प्रतीत होता है।

मिल की द्विधा की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्तियों में से एक उनका बहुल मतदान का समर्थन है—एक ऐसी व्यवस्था जिसमें "शिक्षित" या "सुसंस्कृत" लोगों को दूसरों की तुलना में अधिक मत प्राप्त होंगे। मिल ने इसका बचाव बुद्धिमत्ता और अज्ञान के बीच संतुलन स्थापित करने के एक तर्कसंगत उपाय के रूप में किया, परंतु ग्रोलियोस तर्क देते हैं कि इसने राजनीतिक शक्ति को व्यावसायिक पद, बाज़ार-स्थिति और उस सांस्कृतिक पूँजी से जोड़कर केवल वर्गीय विशेषाधिकार का पुनरुत्पादन किया जो केवल कुछ वर्गों के पास थी। शारीरिक श्रमिकों को, जो शोषण और शिक्षा के सीमित अवसरों द्वारा आकार दी गई परिस्थितियों में जीते थे, ठीक उन्हीं वंचनाओं के लिए दंडित किया गया जो

पूँजीवादी व्यवस्था ने उन पर थोपी थीं। मिल ने इन संरचनात्मक असमानताओं की व्याख्या व्यवस्थागत अन्याय के बजाय व्यक्तिगत अपर्याप्तता के संकेतों के रूप में की। इस प्रकार विभेदित मताधिकार का उनका प्रस्ताव समान राजनीतिक स्थिति के ज्ञानोदय-विचार का खंडन करता था और उसी पदानुक्रम को जड़ जमाता था जिसे वे नरम करने का दावा करते थे।

ग्रोलियोस इन अंतर्विरोधों की दार्शनिक जड़ों को मिल की सिस्टम ऑफ़ लॉजिक तक ले जाते हैं, जहाँ मिल अपने प्रस्तावित "स्वभाव-विज्ञान (एथोलॉजी)"—चरित्र-निर्माण का अध्ययन—का विकास करते हैं, परंतु कभी यह स्पष्ट नहीं करते कि चरित्र के ऐसे नियम ऐतिहासिक रूप से कैसे बनते हैं या सामाजिक रूप से कैसे अंतर्निहित होते हैं। ग्रोलियोस तर्क देते हैं कि यह पद्धतिगत अस्पष्टता मिल को यह समझने से रोकती है कि मानवीय चरित्र आर्थिक संरचनाओं और उत्पादन-संबंधों द्वारा आकार लेता है। इसके विपरीत, मार्क्स ने एक द्वंद्वात्मक पद्धति प्रस्तुत की जिसने श्रम, संपत्ति और शोषण के बीच आंतरिक संबंधों को उजागर किया। मिल के अद्वंद्वात्मक ढाँचे ने उन्हें मानवीय प्रेरणा के एक स्थिर दृष्टिकोण के साथ छोड़ दिया और उन्हें इस तथ्य के प्रति अंधा बना दिया कि पूँजीवाद स्वयं उन आदतों, चुनावों और "चरित्रों" का निर्माण करता है जिनका उपयोग मिल ने फिर असमान राजनीतिक शक्ति को उचित ठहराने के लिए किया। चूँकि उन्होंने श्रम को एक सृजनात्मक, शैक्षिक या मुक्तिदायी गतिविधि के रूप में नहीं देखा, इसलिए मिल ने शारीरिक श्रम का अवमूल्यन किया और बौद्धिक श्रम को ऊँचा स्थान दिया, और इस प्रकार उसी पूँजीवादी भेद का पुनरुत्पादन किया जो पूँजीपति, उद्यमी और पेशेवर का गुणगान करते हुए श्रमिक का अवमूल्यन करता है।

यह वैचारिक पूर्वाग्रह फ़्रांसीसी क्रांति और 1848 की घटनाओं पर मिल के चिंतन में पुनः उभरता है। मिल ने फ़्रांसीसी किसानों द्वारा लुई नेपोलियन के चुनाव की आलोचना की, और उनके चुनाव को अज्ञान का प्रमाण बताकर खारिज कर दिया। ग्रोलियोस के लिए, ऐसी टिप्पणियाँ मिल के इस दृढ़ विश्वास को उजागर करती हैं कि ऐतिहासिक प्रगति जनसाधारण द्वारा नहीं, बल्कि "स्व-निर्मित" औद्योगिक वर्गों—वाणिज्यिक और विनिर्माण अभिजातों, जिनकी वे निरंतर सभ्यता के वाहकों के रूप में प्रशंसा करते थे—द्वारा संचालित होगी। मिल का मानना था कि ये समूह नैतिक और बौद्धिक, दोनों श्रेष्ठताओं के मूर्त रूप थे। ग्रोलियोस के आकलन में, यह विश्वास दर्शाता है कि मिल ने बुर्जुआ व्यक्तिवाद की विचारधारा को कितनी गहराई से आत्मसात कर लिया था, जहाँ आर्थिक सफलता को सद्गुण और राजनीतिक योग्यता के संकेत के रूप में माना जाता है।

कंसिडरेशन्स ऑन रिप्रेज़ेंटेटिव गवर्नमेंट की ओर मुड़ते हुए, ग्रोलियोस दिखाते हैं कि लोकतंत्र के प्रति मिल की हिचकिचाहट अपरिवर्तित बनी रही। मिल ने राजनीतिक भागीदारी को सभी नागरिकों से संबंधित एक प्राकृतिक अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि ऐसी चीज़ के रूप में प्रस्तुत किया जो केवल तभी प्रदान की जानी चाहिए जब व्यक्ति "तैयार" हों—एक ऐसी तैयारी जिसे शिक्षा, परिष्कार और पूँजीवादी मानदंडों की स्वीकृति से मापा जाता है। इस प्रकार अधिकार बिना शर्त के बजाय सशर्त थे। यहाँ तक कि श्रमिक-वर्ग के प्रतिनिधियों के लिए उन्होंने जो

स्थान बनाया, वह भी साधनात्मक था: विधायिका में उनकी उपस्थिति उनकी समान स्थिति की मान्यता के रूप में नहीं, बल्कि उनकी नागरिक परिपक्वता की परीक्षा के रूप में कार्य करेगी। मिल की केंद्रीय चिंता वर्गीय सामंजस्य को बनाए रखना थी, जिसका अर्थ था स्वामित्व के पूँजीवादी संबंधों को बनाए रखना और साथ ही इस बात से इनकार करना कि ये संबंध असमानता उत्पन्न करते हैं। इसलिए, उनके संस्थागत प्रस्ताव समावेशी प्रतीत होते हुए असमानता को बनाए रखने के लिए अभिकल्पित थे।

असमानता का मिल का मानक समाधान—शिक्षा और अवसर—ग्रोलियोस को काल्पनिक (यूटोपियन) और नैतिक रूप से टालमटोल करने वाला प्रतीत हुआ। जब समाज शिक्षित करने में विफल रहता है, तो मिल अशिक्षितों को "धैर्यपूर्वक सहन करने" की सलाह देते हैं, एक ऐसा कथन जिसकी व्याख्या ग्रोलियोस भाग्यवादी और वर्ग-संघर्ष की उपेक्षा करने वाले के रूप में करते हैं। अज्ञान और निर्धनता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों को चुनौती देने के बजाय, मिल इन परिस्थितियों का नैतिकीकरण करते हैं और सहनशीलता को एक नागरिक सद्गुण के रूप में चित्रित करते हैं। बहुल मतदान के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, जिसे उन्होंने अस्थायी नहीं माना, यह सिद्ध करती है कि वे समान राजनीतिक शक्ति में एक दूरस्थ आदर्श के रूप में भी विश्वास नहीं करते थे। अपनी सबसे उदार स्थिति में भी, मिल का लोकतंत्र संपत्ति और विशेषाधिकार की रक्षा के लिए गढ़ा गया एक योग्यतातंत्र (मेरिटोक्रेसी) था।

मिल के बाद के संसदीय भाषणों का ग्रोलियोस का विश्लेषण इस व्याख्या की और पुष्टि करता है। मिल ने बार-बार अपने रूढ़िवादी सहयोगियों को आश्वस्त किया कि श्रमिक वर्ग तक प्रतिनिधित्व का विस्तार उनके प्रभुत्व की ओर नहीं ले जाएगा। बल्कि, यह उन्हें प्रचलित व्यवस्था में शांतिपूर्वक एकीकृत कर देगा। मिल ने "ईमानदार लोकतंत्र" का वर्णन निर्धन बहुमत के शासन के रूप में नहीं, बल्कि एक संतुलित प्रतिनिधित्व के रूप में किया जिसमें सभी वर्ग—धनी वर्ग सहित—औपचारिक प्रभाव बनाए रखें। जब मिल ने कहा कि श्रमिक वर्ग प्रतिनिधित्व "इसलिए चाहता है क्योंकि वे मनुष्य हैं, इसलिए नहीं कि वे गरीब हैं," तो ग्रोलियोस तर्क देते हैं कि उन्होंने लोकतंत्र को उसके सामाजिक-आर्थिक अर्थ से खाली कर दिया। वर्ग को नैतिक रूप से अप्रासंगिक मानकर, मिल ने उन संरचनात्मक असमानताओं को छिपा दिया जिन्हें लोकतंत्र को उजागर करना चाहिए। ग्रोलियोस का तर्क है कि इस सार्वभौमवादी वाक्पटुता ने समाजवादी रूपांतरण के एक उपकरण के रूप में लोकतंत्र की संभावना को निष्प्रभावी कर दिया।

मिल संयत क्यों बने रहे, इसकी व्याख्या करते हुए, ग्रोलियोस उल्लेख करते हैं कि मिल के जीवनकाल में ब्रिटेन में कोई सशक्त समाजवादी आंदोलन नहीं था। इस अभाव ने मिल को लोकतंत्र को उत्पादन में निहित संघर्ष के क्षेत्र के बजाय नैतिक शिक्षा और अंतर-वर्गीय विचार-विमर्श का विषय मानने दिया। जहाँ मार्क्स ने श्रम और संपत्ति के सामाजिक संबंधों को रूपांतरित करने का प्रयास किया, वहीं मिल का लक्ष्य केवल उनका नैतिकीकरण करना और उन्हें नरम करना था। उनका मतभेद एक गहरे अंतर को प्रतिबिंबित करता है: मार्क्स के लिए, श्रम, संपत्ति और राजनीतिक शक्ति ऐतिहासिक और भौतिक संबंध हैं जो असमानता उत्पन्न करते हैं; मिल के लिए, वे प्राकृतिक

संस्थाएँ हैं जिनमें उनके मूल स्वरूप को बदले बिना सुधार किया जा सकता है। इस प्रकार मिल का सुधारवाद मार्क्स की क्रांतिकारी आलोचना के विपरीत के रूप में उभरता है।

व्याख्यात्मक विद्वत्ता की समीक्षा करते हुए, ग्रोलियोस उल्लेख करते हैं कि मैकफ़र्सन जैसे विचारक बाज़ार-निर्भरता और लोकतांत्रिक समानता के बीच तनाव को स्वीकार करते हैं, जबकि थॉम्पसन और उर्बिनाती जैसे अन्य विचारक विचार-विमर्श और नागरिक सहभागिता पर बल देकर मिल का लोकतांत्रिक सिद्धांत के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। ग्रोलियोस दृढ़ता से उन लोगों का पक्ष लेते हैं जो पूँजीवादी उत्पादन और लोकतांत्रिक समानता के बीच असंगति को रेखांकित करते हैं। वे तर्क देते हैं कि मिल को एक लोकतंत्रवादी के रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास उनकी राजनीतिक अर्थव्यवस्था की वर्गीय नींवों की उपेक्षा करते हैं। उदाहरण के लिए, उर्बिनाती का यह दावा कि बहुल मतदान समानता के अनुरूप है क्योंकि यह विचार-विमर्श को बढ़ावा देता है, इस बात को अनदेखा कर देता है कि राजनीतिक प्रभाव तक असमान पहुँच स्वयं विचार-विमर्श को कमज़ोर करती है। मिल के "विचार-विमर्शी लोकतंत्र (डेलिबरेटिव डेमोक्रेसी)" के मॉडल ने पहले से शक्तिशाली लोगों की आवाज़ को बढ़ाया और उनके हितों को सामान्य हित के रूप में छिपा दिया।

ग्रोलियोस यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पूँजीवाद के प्रति मिल का लगाव उनके लोकतांत्रिक चिंतन के हर पहलू में व्याप्त है। "सामान्य हित" को बुर्जुआ हितों के साथ एकरूप करके, मिल का दर्शन न तो शोषण की जड़ों को देख सका और न ही वास्तविक समानता की ओर किसी मार्ग की कल्पना कर सका। "बहुमत के अत्याचार" का उनका भय, वास्तव में, श्रमिक-वर्ग की शक्ति और उससे उन्मुक्त हो सकने वाले सामाजिक रूपांतरण का भय था। मिल की स्वतंत्रता की अवधारणा अंततः पूँजी की स्वतंत्रता की सेवा करती थी, और उनकी समानता की धारणा एक नैतिक कल्पना बनी रही जिसने उत्पादन के पदानुक्रमिक संबंधों को स्थिर किया। इस अर्थ में, मिल का लोकतांत्रिक सिद्धांत पूँजीवाद को चुनौती देने के बजाय उसे बनाए रखने के एक तंत्र के रूप में कार्य करता था।

फिर भी ग्रोलियोस मिल के ऐतिहासिक महत्त्व को स्वीकार करते हैं। मिल ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था को सामाजिक दर्शन से जोड़ने में सहायता की और "सामाजिक प्रश्न" को गंभीरता से लिया, और ऐसी नींव रखी जिसका उपयोग बाद में कल्याणकारी और सामाजिक-लोकतांत्रिक सुधारकों ने किया। ग्रोलियोस अनुमान लगाते हैं कि यदि मिल आज जीवित होते, तो वे संभवतः बाज़ार-शासन के पक्ष में लोकतंत्र को सिकोड़ने के नवउदारवादी प्रयासों का विरोध करते। परंतु उनकी अपनी दार्शनिक प्रतिबद्धताएँ दिखाती हैं कि पूँजीवादी उत्पादन की संरचना का समाधान किए बिना, स्वतंत्रता और समानता सार्वभौमिक अधिकारों के बजाय विशेषाधिकार बने रहते हैं। इसलिए, मिल एक लोकतंत्रवादी कम, और एक ऐसे उदारवादी सुधारक अधिक प्रतीत होते हैं जिन्होंने पूँजीवाद की मूलभूत असमानताओं को अक्षुण्ण छोड़ते हुए उसे मानवीय बनाने का प्रयास किया—एक ऐसी अंतर्दृष्टि जो आधुनिक राजनीतिक चिंतन में लोकतंत्र और पूँजीवाद के बीच स्थायी तनाव को रेखांकित करती है।.....मताधिकार और लोकतंत्र का समर्थन... इसे अंत में यथावत उपयोग करें

समग्र रूप से, **मताधिकार** और **लोकतंत्र** पर मिल के विचार एक जटिल दृष्टि प्रस्तुत करते हैं: भाषा में समावेशी, उद्देश्य में विकासात्मक, परंतु संचालन में प्रतिबंधात्मक। योग्यता, शिक्षा और बहुल मतदान पर उनका आग्रह एक ऐसे लोकतंत्र को उजागर करता है जो सामाजिक पदानुक्रम का प्रबंधन करते हुए उदारवादी मूल्यों की रक्षा के लिए ढाला गया है। ग्रोलियोस की आलोचना मिल के राजनीतिक चिंतन में अंतर्निहित वर्ग-आधारित मान्यताओं को उजागर करके और यह तर्क देकर इस चित्र को और तीक्ष्ण बनाती है कि उनके लोकतांत्रिक आदर्श पूँजीवादी उत्पादन और संपत्ति-संबंधों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता द्वारा संरचनात्मक रूप से सीमित रहे। साथ मिलाकर पढ़ने पर, मिल की आत्म-समझ और ग्रोलियोस की पुनर्व्याख्या विद्यार्थियों को एक गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं: लोकतंत्र का बचाव कभी भी विशुद्ध रूप से दार्शनिक नहीं होता; यह सदैव उस सामाजिक विश्व को प्रतिबिंबित करता है जिसमें कोई विचारक रहता है और उन सीमाओं को भी जिनकी वह राजनीतिक समानता के लिए कल्पना करता है।

4.6 महिलाओं की पराधीनता

विस्तृत मताधिकार, योग्य नागरिकता और लोकतांत्रिक भागीदारी की नैतिक नींवों के पक्ष में अपने तर्कों पर निर्माण करते हुए, जॉन स्टुअर्ट मिल द *सब्जेक्शन ऑफ़ वुमन* में अपनी उदारवादी प्रतिबद्धताओं को लैंगिक असमानता की एक गहरी आलोचना तक विस्तारित करते हैं। मिल के लिए, लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक नैतिक वचन है: यदि स्वतंत्रता मानवीय विकास की सर्वोच्च शर्त है, और यदि भागीदारी व्यक्तियों की अपनी क्षमताओं के विकास की समान क्षमता पर आधारित है, तो महिलाओं की अधीनता आधुनिक समाज के भीतर सबसे स्पष्ट अंतर्विरोध का प्रतिनिधित्व करती है। यही कारण है कि यह ग्रंथ, जो 1860–61 में लिखा गया और महिलाओं के मताधिकार तथा संपत्ति-अधिकारों के लिए मिल के संसदीय अभियानों के बाद 1869 में प्रकाशित हुआ, उनके लोकतांत्रिक सुधारवाद की स्वाभाविक निरंतरता बन जाता है। मिल इस मान्यता को चुनौती देकर आरंभ करते हैं कि महिलाओं की कथित हीनता "प्राकृतिक" है। वे तर्क देते हैं कि जिसे समाज "प्राकृतिक" कहता है, वह केवल प्रथागत है, और प्रथा केवल सत्य का मुखौटा पहने हुए पुरानी शक्ति है। चूँकि महिलाओं की शिक्षा, अवसरों और आत्म-समझ को पुरुष प्राधिकार द्वारा आकार दिया गया है, इसलिए महिलाओं की अंतर्निहित प्रकृति के बारे में किसी भी दावे को प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। मिल के तर्क में, लैंगिक पदानुक्रम की कानूनी और भावनात्मक नींव तर्क पर नहीं, बल्कि विरासत में मिले "बल के नियम" पर टिकी है, जो आधुनिक संस्थाओं के भीतर बची हुई पूर्व-आधुनिक विश्व की एक स्मृति है। इसे उजागर करने के लिए, वे घरेलू दासता के उत्तेजक सादृश्य का उपयोग करते हैं, और दिखाते हैं कि महिलाओं से न केवल श्रम, बल्कि स्नेह की भी अपेक्षा की जाती है—कि किस प्रकार उनकी भावनाओं, चुनावों और यहाँ तक कि आत्म-अवधारणाओं को पुरुष-सुविधा की सेवा के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। राजनीतिक प्रभुत्व के विपरीत, जो दृश्य और चुनौती-योग्य होता है, घरेलू प्रभुत्व अंतरंग, निरंतर, और इसलिए प्रतिरोध के लिए अधिक कठिन बन जाता है।

अधीनता की उत्पत्ति की इस आलोचना से, मिल विवाह-अनुबंध की ओर बढ़ते हैं, जो सबसे स्पष्ट कानूनी स्थल है जहाँ असमानता बनाए रखी जाती है। विक्टोरियाई इंग्लैंड में, पति अपनी पत्नी की संपत्ति, उसकी आय, उसकी आवाजाही और उसके बच्चों के साथ उसके संबंध को नियंत्रित करता था; वह केवल उसकी मौन स्वीकृति से ही कार्य कर सकती थी। मिल इसे दासता से भी अधिक पूर्ण बंधन का एक रूप मानते हैं, इसलिए नहीं कि महिलाएँ समान शारीरिक हिंसा सहती हैं, बल्कि इसलिए कि वे "हर घड़ी और हर पल" बँधी रहती हैं, एक साथ पति, गृहस्थी और समाज के लिए उपलब्ध रहती हैं। वे तर्क देते हैं कि लोकतंत्र को सार्थक बनाने के लिए, कानून को पहले महिलाओं को अधिकार, स्वामित्व और नागरिकता के योग्य व्यक्तियों के रूप में मान्यता देनी चाहिए। यह माँग केवल कानूनी नहीं, बल्कि नैतिक है: केवल एक समान विवाह ही पारस्परिकता और सम्मान की उन आदतों का विकास कर सकता है जिनकी एक लोकतांत्रिक समाज को आवश्यकता होती है। इसी भावना में, मिल सभी व्यवसायों में महिलाओं के प्रवेश का समर्थन करते हैं। यद्यपि वे, विक्टोरियाई भावना के अनुरूप, यह मानते हैं कि एक विवाहित महिला गृह-प्रबंधन को अपने केंद्रीय उत्तरदायित्व के रूप में चुन सकती है, फिर भी वे इस बात पर बल देते हैं कि "कमाने की शक्ति" गरिमा के लिए आवश्यक है और महिलाओं को पुरुषों द्वारा एकाधिकृत व्यवसायों तक पूर्ण पहुँच मिलनी चाहिए। इस दावे को कि महिलाओं में योग्यता का अभाव है, अनुभवजन्य आधार पर खारिज कर दिया जाता है: महिलाओं को उन्हीं क्षेत्रों में प्रशिक्षण से वंचित रखा गया है जिनका उपयोग उनके बहिष्करण को उचित ठहराने के लिए किया जाता है। वे महारानी एलिज़ाबेथ का उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि जब अवसर दिया गया, तो महिलाओं ने असाधारण क्षमता दिखाई है। वे तर्क देते हैं कि जिसे स्त्रियोचित कोमलता या घबराहट कहा जाता है, वह प्रायः अप्रयुक्त प्रतिभाओं, सीमित भूमिकाओं और सामाजिक रूप से विकसित दुर्बलता का परिणाम होती है।

मिल इसे राजनीतिक अधिकारों तक विस्तारित करते हैं: यदि महिलाएँ कानूनों के अधीन हैं, यदि वे कर चुकाती हैं, और यदि वे प्राधिकार की व्यवस्थाओं के अंतर्गत रहती हैं, तो उन्हें भी पुरुषों के समान "यह चुनने का अधिकार है कि उन पर कौन शासन करे।" महिलाओं को मताधिकार से बाहर रखना आधुनिक स्वतंत्रता के मूल तर्क का खंडन करता है, जिसने पुरुषों के लिए जन्म-आधारित पदानुक्रमों को पहले ही त्याग दिया है, परंतु महिलाओं के लिए उन्हें बनाए रखता है। वे पुरुषों और महिलाओं के बीच कथित मानसिक अंतरों का कारण प्रकृति को नहीं, बल्कि शिक्षा और अवसर के अंतरों को मानते हैं, और दिखाते हैं कि महिलाओं संबंधी रूढ़िबद्ध धारणाएँ विभिन्न संस्कृतियों में व्यापक रूप से भिन्न होती हैं, जो उनकी कृत्रिमता को उजागर करता है। वे कहते हैं कि महिलाओं द्वारा महान कृतियों का अभाव अक्षमता का नहीं, बल्कि बहिष्करण का परिणाम है; सृजनात्मकता के लिए समय, प्रशिक्षण और सामाजिक अनुमति की आवश्यकता होती है, और ये सभी ऐतिहासिक रूप से महिलाओं को नहीं दिए गए। मिल एक सशक्त नैतिक और सामाजिक तर्क के साथ समापन करते हैं: महिलाओं की अधीनता को समाप्त करने से समाज को गहन लाभ होंगे। इससे बच्चे इस विश्वास से मुक्त होकर बड़े हो सकेंगे कि वे जन्म से श्रेष्ठ हैं; इससे मानवीय प्रगति के लिए उपलब्ध बौद्धिक संसाधन दोगुने हो जाएँगे; इससे पुरुषों और महिलाओं के बीच संबंध समृद्ध होंगे, क्योंकि

साहचर्य पदानुक्रम के बजाय समानता पर आधारित होगा; और इससे स्वयं महिलाओं के लिए "निजी प्रसन्नता में अवर्णनीय लाभ" होगा, जिन्हें जीवन की तीसरी महान आवश्यकता—स्वतंत्रता—से वंचित रखा गया है। मिल के लिए, महिलाओं की मुक्ति कोई विशेष हित नहीं, बल्कि आधुनिकता के लोकतांत्रिक वचन की तार्किक पूर्णता है। जो समाज अपनी आधी जनसंख्या को स्वतंत्रता से वंचित रखता है, वह स्वयं को क्षीण करता है, और अपने नैतिक तथा बौद्धिक जीवन को "कम समृद्ध" छोड़ देता है। इसलिए मिल का नारीवाद उनके लोकतंत्र के सिद्धांत से अलग नहीं, बल्कि उसकी सबसे गहन परीक्षा के रूप में खड़ा है: जो लोकतंत्र महिलाओं को बाहर रखता है, वह अभी लोकतांत्रिक नहीं है, और जो स्वतंत्र समाज महिलाओं को अस्वतंत्र रखता है, वह अपने ही सिद्धांतों के साथ विश्वासघात करता है।

4.7 सारांश

इस इकाई में, हमने समझा कि **जॉन स्टुअर्ट मिल** ने **उपयोगितावादी नीतिशास्त्र** और **उदारवादी राजनीतिक दर्शन**, दोनों को किस प्रकार रूपांतरित किया, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सामाजिक कल्याण के साथ, लोकतंत्र का नैतिक विकास के साथ, और समानता का योग्यता के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। **जेरेमी बेंथम** के शास्त्रीय उपयोगितावाद से आगे बढ़कर, मिल ने सिद्धांत का पुनर्निर्माण उन उदारवादी नींवों पर किया जो मानवीय गरिमा, नैतिक स्वायत्तता और न्याय का सम्मान करती हैं।

शास्त्रीय से उदारवादी उपयोगितावाद तक

हमने यह समझने से आरंभ किया कि शास्त्रीय, बेंथमवादी उपयोगितावाद ने नैतिकता को संकीर्ण रूप से परिभाषित किया—सुख को अधिकतम करने और दुख को न्यूनतम करने के रूप में। बेंथम का "अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख" समग्र कल्याण को लक्ष्य बनाता था, परंतु न्याय, अधिकारों और वैयक्तिकता की जटिलता की उपेक्षा करता था। बीसवीं शताब्दी की आलोचनाओं ने ऐसे सिद्धांत की तीन प्रमुख समस्याओं को उजागर किया:

1. **परोपकार का औचित्य** (व्यक्ति को दूसरों की प्रसन्नता को क्यों बढ़ावा देना चाहिए);
2. **मूल्यमीमांसीय समस्या** (प्रसन्नता वास्तव में किससे बनती है); और
3. **व्यावहारिक अनुप्रयोग की समस्या** (उपयोगितावादी सिद्धांतों को वास्तविक जीवन में नैतिक निर्णय का मार्गदर्शन किस प्रकार करना चाहिए)।

शास्त्रीय उपयोगितावाद इनमें से प्रत्येक परीक्षण में विफल रहा। प्रसन्नता को मात्रात्मक सुख तक सीमित करके, यह अनैतिक परिणामों को स्वीकृति दे सकता था—उदाहरण के लिए, किसी दूसरे व्यक्ति की पीड़ा से प्राप्त सामूहिक आनंद को स्वीकृति देना, जैसा कि "अखाड़े के उदाहरण" में है। बेंथम की गणना ने स्वतंत्रता और नैतिक सीमाओं की उपेक्षा की, जिससे ऐसे निष्कर्ष उत्पन्न हुए जो न्याय का उल्लंघन करते हैं।

इसका समाधान करने के लिए, मिल और बाद के सुधारकों ने नैतिकता को संवेदनाओं पर नहीं, बल्कि **मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि** पर आधारित किया, जो एक **नैतिक पदानुक्रम** में व्यवस्थित हैं—अस्तित्व, स्वास्थ्य और स्वतंत्रता जैसी मूल आवश्यकताएँ आराम या विलासिता जैसे गौण सुखों से पहले आती हैं। इसी विचार से **उदारवादी उपयोगितावाद** का उदय हुआ, जो **उपयोगिता, समानता और स्वतंत्रता** को एकीकृत करता है। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतंत्र रूप से तब तक कर सकते हैं जब तक वे दूसरों की मूल आवश्यकताओं का उल्लंघन न करें। इस प्रकार, स्वतंत्रता स्वयं एक नैतिक मूल्य बन जाती है, और नैतिक कार्य का लक्ष्य स्वायत्तता का सम्मान करते हुए आवश्यकता-संतुष्टि को अधिकतम करना होता है।

मिल का **हानि सिद्धांत** प्रमुख सुधार बन जाता है: समाज शक्ति का प्रयोग केवल दूसरों को होने वाली हानि को रोकने के लिए कर सकता है, कभी भी केवल नैतिक अनुरूपता को लागू करने या व्यक्तियों को स्वयं से बचाने के लिए नहीं। तथापि, कठोर उदारवाद, चूकों और अप्रत्यक्ष हानियों की उपेक्षा करके, बहुत आगे चला जाता है; मिल के उदारवादी पारस्परिक उत्तरदायित्व के माध्यम से इसे संतुलित करते हैं—लोगों को दूसरों की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की रक्षा के लिए छोटी-मोटी रुचियों का त्याग करना चाहिए, परंतु अपने स्वयं के मूल कल्याण का नहीं।

उदारवादी उपयोगितावाद छह **मानकीय और मूल्यमीमांसीय सिद्धांतों** पर टिका है:

- **A – अधिकतम आवश्यकता-संतुष्टि:** उचित कार्य मानवीय आवश्यकताओं की समग्र संतुष्टि को अधिकतम करते हैं।
- **B – पदानुक्रमिक आवश्यकताएँ:** मूल आवश्यकताओं का स्थान व्युत्पन्न आवश्यकताओं से ऊपर है।
- **C – पर-संबंध:** किसी की भी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उसी स्तर पर किसी दूसरे की आवश्यकताओं को नकारकर नहीं की जानी चाहिए।
- **D – आवश्यक बनाम आकस्मिक लक्ष्य:** अस्तित्व, स्वास्थ्य और प्रसन्नता विलासिता या प्रतिष्ठा से अंतर्निहित रूप से श्रेष्ठ हैं।
- **E – जागरूकता:** नैतिक चिंता केवल उन चेतन प्राणियों पर लागू होती है जो पीड़ा या परिपूर्णता का अनुभव करने में सक्षम हैं।
- **F – स्वायत्तता:** स्वतंत्र रूप से चुनी गई, सूचित आवश्यकता-संतुष्टि नैतिक रूप से बलपूर्वक या अज्ञानवश प्राप्त संतुष्टि से श्रेष्ठ है।

क्रियात्मक दृष्टि से, यह मॉडल कठोर नियमों के बजाय **कार्य-उपयोगितावाद** का समर्थन करता है; नैतिकता का निर्णय आकस्मिक परिणामों के बजाय **पूर्वानुमेय परिणामों** के आधार पर करता है; **कार्यों और चूकों**, दोनों को नैतिक रूप से महत्त्वपूर्ण मानता है; चिंता को केवल **विद्यमान या अनिवार्य रूप से विद्यमान होने वाले प्राणियों** तक विस्तारित करता है; और एक **सकारात्मक उपयोगितावाद** को अपनाता है जो पीड़ा को कम करने और प्रसन्नता, गरिमा तथा आत्म-साक्षात्कार को बढ़ावा देने, दोनों को महत्त्व देता है।

इन परिष्कारों के माध्यम से, मिल का **उदारवादी उपयोगितावाद** एक मानवीय और स्थिर नैतिक सिद्धांत के रूप में उभरता है। यह सार्वभौमिक कल्याण के प्रति उपयोगितावाद की करुणा को बनाए रखता है, परंतु स्वतंत्रता, समानता और न्याय के माध्यम से उसे संतुलित करता है, और सत्तावादी परोपकार तथा स्वार्थी व्यक्तिवाद, दोनों को अस्वीकार करता है। यह स्वीकार करता है कि नैतिक जीवन सारी त्रासदी को समाप्त नहीं कर सकता, परंतु नैतिक निर्णयों के लिए तर्कसंगत, संतुलित मानदंड प्रदान करता है।

मिल के स्वतंत्रता के विचार को समझना

इसके बाद हमने मिल की उत्कृष्ट कृति, ***ऑन लिबर्टी* (1859)** का अन्वेषण किया, जो उनकी पत्नी **हैरियट टेलर मिल** के बौद्धिक सहयोग से लिखी गई थी। जिसे उन्होंने बढ़ता हुआ "**मत का अत्याचार**" कहा, उससे विचलित होकर मिल ने देखा कि आधुनिक समाज में स्वतंत्रता का मुख्य शत्रु राजनीतिक निरंकुशता नहीं, बल्कि **सामाजिक अनुरूपता** है—वह सार्वजनिक दबाव जो व्यक्तियों को एक जैसा सोचने, कार्य करने और अनुभव करने के लिए विवश करता है। उन्होंने चेतावनी दी कि सुधारक स्वयं "स्वतंत्रता-घाती" बनते जा रहे थे, और नैतिक एकरूपता थोपकर अनजाने में स्वतंत्रता को नष्ट कर रहे थे। यह सूक्ष्म "आत्मा की दासता" उनकी जाँच का आरंभ-बिंदु बनी।

मिल ने एक स्वतंत्र और प्रगतिशील समाज के लिए आवश्यक स्वतंत्रता के तीन मूल **क्षेत्रों** की पहचान की:

1. **विचार और भावना की स्वतंत्रता** — धर्म, राजनीति, दर्शन और विज्ञान में मत की पूर्ण स्वतंत्रता।
2. **कार्य की स्वतंत्रता ("रुचियाँ और लक्ष्य")** — अपने जीवन की रूपरेखा अपनी इच्छानुसार बनाने का अधिकार, बशर्ते दूसरों को कोई हानि न हो।
3. **संघ बनाने की स्वतंत्रता** — शांतिपूर्ण और हानिरहित उद्देश्यों के लिए दूसरों के साथ एकजुट होने की स्वतंत्रता।

ये स्वतंत्रताएँ **वैयक्तिकता** के लिए आवश्यक ढाँचा बनाती हैं, जिसे मिल मानवता के सर्वोच्च शुभ के रूप में परिभाषित करते हैं। स्वतंत्रता केवल नियंत्रण का अभाव नहीं है; यह आत्म-विकास, प्रयोग और व्यक्तिगत मूल्य की खोज के लिए नैतिक क्षेत्र है। जो समाज इस क्षेत्र का बलिदान करता है, वह मानवीय प्रगति का गला घोंट देता है।

मिल विचार की स्वतंत्रता का बचाव इसलिए करते हैं क्योंकि केवल खुली चर्चा के माध्यम से ही सत्य जीवित रह सकता है। मतों को चुप कराना मानवता को वंचित करता है—यदि कोई मत सत्य है, तो उसका दमन सत्य को

नकारता है; यदि असत्य है, तो यह विरोधाभास के माध्यम से समझ को तीक्ष्ण बनाने में सहायता करता है। सही सिद्धांत भी, जब निष्क्रिय रूप से स्वीकार किए जाते हैं, तो अपनी जीवंतता खो देते हैं। वास्तविक ज्ञान के लिए आदत नहीं, बल्कि तर्क आवश्यक है। इसलिए, सभी विश्वासों—धार्मिक, नैतिक या राजनीतिक—को आलोचना के लिए खुला रहना चाहिए।

तथापि, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमाएँ हैं। वाणी को केवल तभी प्रतिबंधित किया जा सकता है जब वह प्रत्यक्ष रूप से हानि के लिए उकसाती हो। मिल इसे "अनाज-व्यापारियों" के उदाहरण से स्पष्ट करते हैं: अलोकप्रिय मतों को लिखित रूप में व्यक्त करना अनुमेय है, परंतु उसी दावे पर एक हिंसक भीड़ को भड़काना अनुमेय नहीं है। सीमा व्यावहारिक हानि है, अपमान या आघात नहीं।

स्वतंत्रता को आचरण तक विस्तारित करते हुए, मिल यह मानते हैं कि वयस्कों को अपने चुनावों—अपने "**जीवन के प्रयोगों**"—के अनुसार जीने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। भीतर से बढ़ते हुए वृक्ष की तरह, प्रत्येक व्यक्ति को बाहरी रूपरेखा से नहीं, बल्कि आंतरिक ऊर्जा से विकसित होना चाहिए। इस प्रकार स्वतंत्रता असाधारण और सामान्य, दोनों प्रकार के लोगों में वैयक्तिकता, सृजनात्मकता और नैतिक शक्ति का पोषण करती है।

इस दर्शन के केंद्र में मिल का **हानि सिद्धांत** स्थित है: बलप्रयोग केवल दूसरों को होने वाली हानि को रोकने के लिए उचित है, कभी भी किसी व्यक्ति के अपने हित के लिए नहीं। यह **पितृसत्तावाद** (लोगों को "उनके अपने लाभ के लिए" विवश करना) और **नैतिकतावाद** (कार्यों को केवल इसलिए प्रतिबंधित करना क्योंकि दूसरों को वे नापसंद हैं), दोनों को अस्वीकार करता है। हानि का अर्थ किसी के अधिकारों या आवश्यक हितों का उल्लंघन है, आत्मनिष्ठ अपमान नहीं। वे स्वीकार करते हैं कि सभी नागरिकों के कुछ मूल दायित्व हैं—कर, रक्षा, आपात स्थितियों में सहायता—और यह कि व्यापार तथा सार्वजनिक कार्यों को नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि वे अनिवार्य रूप से दूसरों को प्रभावित करते हैं। परंतु व्यक्तिगत आत्म-निर्देशन पवित्र बना रहता है।

मिल के "व्यापक-अर्थ उपयोगितावाद" में, स्वतंत्रता स्वयं सत्य, विविधता और सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करके मानवीय प्रसन्नता की सेवा करती है। आत्म-विकासशील व्यक्तियों का समाज सबसे सुखी और सबसे प्रगतिशील होता है।

सी. एल. टेन की व्याख्या के माध्यम से, हमने समझा कि मिल के विचार आधुनिक वाद-विवादों का किस प्रकार पूर्वानुमान करते हैं। स्वतंत्रता न केवल धार्मिक असहमतों की, बल्कि सभी हानिरहित अल्पसंख्यकों की रक्षा करती है—नास्तिक, कलाकार, सांस्कृतिक अल्पसंख्यक, LGBTQ लोग, और अपरंपरागत रूप से जीने वाले अन्य लोग। मॉर्मन बहुविवाह के मिल के अपने उदाहरण का उपयोग करते हुए, टेन दिखाते हैं कि स्वैच्छिक व्यवस्थाएँ अनुमेय हैं, परंतु जब आंतरिक बलप्रयोग सदस्यों को फँसा लेता है, तो वास्तविक चुनाव को पुनर्स्थापित करने के लिए राज्य का हस्तक्षेप वैध है। इसी प्रकार, मिल **अनिवार्य शिक्षा** का समर्थन करते हैं—विश्वास थोपने के लिए नहीं, बल्कि बच्चों को स्वायत्तता के लिए तैयार करने के लिए। टेन आगे दिखाते हैं कि मिल का उदारवाद आज भी

तटस्थता, बहुसंस्कृतिवाद, जैवनीतिशास्त्र और स्वायत्तता पर चर्चाओं को किस प्रकार आकार देता है। अपने सिद्धांतों के प्रति सच्चे रहते हुए, मिल इन वाद-विवादों का स्वागत करते, क्योंकि कोई भी मत, स्वयं उनका मत भी, कभी आलोचना से सुरक्षित नहीं रखा जाना चाहिए।

अंततः, मिल समाज की कल्पना एक कठोर मशीन के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत जीव के रूप में करते हैं जहाँ विविधता, चर्चा और वैयक्तिकता नैतिक और बौद्धिक प्रगति को बनाए रखती हैं।

मताधिकार और लोकतंत्र का समर्थन

मिल का राजनीतिक दर्शन उनकी नैतिक दृष्टि को सामूहिक जीवन के क्षेत्र तक विस्तारित करता है। लोकतंत्र पर उनके चिंतन, मुख्यतः *कंसिडरेशन्स ऑन रिप्रेज़ेंटेटिव गवर्नमेंट* (1861) में, **व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सामूहिक स्वशासन के साथ** सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। मिल के लिए, **मताधिकार** केवल एक राजनीतिक अधिकार नहीं, बल्कि **नैतिक शिक्षा** का एक रूप है—भागीदारी विवेक, उत्तरदायित्व और लोक-भावना का विकास करती है।

मिल ने मताधिकार के विस्तार का, विशेष रूप से श्रमिक वर्गों के लिए, समर्थन किया, परंतु इस बात पर बल दिया कि मतदान **योग्यता**—शिक्षा, तर्कसंगतता और नागरिक सद्गुण—पर आधारित होना चाहिए। लोकतंत्र को स्थिर करने और निर्णय-निर्माण में गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए, उन्होंने **बहुल मतदान** का प्रस्ताव रखा, जिसमें अधिक शिक्षित या सक्षम लोगों को अतिरिक्त मत दिए जाते। इस व्यवस्था का लक्ष्य बहुमत के समावेशन को बौद्धिक मार्गदर्शन के साथ जोड़ना था, ताकि राजनीति लोकतांत्रिक और बुद्धिमत्तापूर्ण, दोनों बनी रहे।

इस प्रकार, मिल का लोकतंत्र **द्वि-स्तरीय** है: क्षेत्र में व्यापक परंतु क्रियान्वयन में सतर्क। यह प्रतिनिधित्व, एक सूचित नागरिक-वर्ग और उन संवैधानिक सीमाओं पर निर्भर करता है जो अल्पसंख्यकों को "बहुमत के अत्याचार" से बचाती हैं। उन्होंने लोकतंत्र को मुख्य रूप से बहुमत-शासन के रूप में नहीं, बल्कि एक **नैतिक-प्रशिक्षण संस्था** के रूप में देखा, जहाँ भागीदारी चरित्र को परिष्कृत करती है और सहयोग को प्रोत्साहित करती है। तथापि, उनका उदारवाद **योग्यतावादी और पितृसत्तात्मक** बना रहा—इस विश्वास में निहित कि समाज तब प्रगति करता है जब शिक्षित और नैतिक रूप से उन्नत लोग नेतृत्व करते हैं।

आधुनिक विद्वान **वासिलिस ग्रोलियोस** ने एक सशक्त पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की, और तर्क दिया कि मिल का उदारवादी लोकतंत्र पूँजीवादी मान्यताओं द्वारा गहराई से सीमित था। ग्रोलियोस के अनुसार, योग्यता और शिक्षा के लिए मिल की प्रशंसा वर्गीय पूर्वाग्रह को छिपाती थी: उन्होंने राजनीतिक परिपक्वता को बुर्जुआ मूल्यों और आर्थिक सफलता के बराबर माना। उनके "पितृसत्तात्मक समावेशन" के आदर्श ने श्रमिक लोगों को केवल सीमित भागीदारी की अनुमति दी, ताकि वे पूँजीवादी मानदंडों को चुनौती देने के बजाय उन्हें स्वीकार करें। बहुल मतदान का मिल का

समर्थन और नैतिक चिह्नों के रूप में संपत्ति, परिष्कार और शिक्षा में उनकी आस्था ने समावेशी प्रतीत होते हुए सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखा।

ग्रोलियोस ने इसका मूल मिल की *सिस्टम ऑफ़ लॉजिक* में उनके अपूर्ण **स्वभाव-विज्ञान (एथोलॉजी)** (चरित्र-निर्माण) के सिद्धांत में खोजा, जो यह समझने में विफल रहा कि मानवीय चरित्र सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं द्वारा आकार लेता है। मार्क्स के द्वंद्वात्मक विश्लेषण के विपरीत, मिल ने श्रम और संपत्ति को प्राकृतिक और सुधार-योग्य माना, व्यवस्थागत असमानता के स्रोतों के रूप में कभी नहीं। परिणामस्वरूप, उनका लोकतंत्र संपत्ति और विशेषाधिकार की रक्षा करने वाला एक नैतिक योग्यतातंत्र बना रहा। उन्होंने प्रतिनिधित्व को सामंजस्य का एक उपकरण माना, वर्ग-संघर्ष का नहीं।

यद्यपि ग्रोलियोस मिल की नैतिक गंभीरता और कल्याण तथा सामाजिक सुधार पर उनके स्थायी प्रभाव को स्वीकार करते हैं, फिर भी वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मिल के उदारवाद का लक्ष्य पूँजीवाद का अतिक्रमण करने के बजाय उसे "मानवीय बनाना" था। बहुमत के अत्याचार का उनका भय श्रमिक-वर्ग की शक्ति के प्रति एक चिंता को प्रतिबिंबित करता था। इस प्रकार, मिल एक कट्टरपंथी लोकतंत्रवादी कम और एक **उदारवादी सुधारक** अधिक प्रतीत होते हैं, जो पूँजीवादी सीमाओं के भीतर स्वतंत्रता और व्यवस्था में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। फिर भी, नैतिक विकास, शिक्षा और राजनीतिक अधिकारों को जोड़ने का उनका प्रयास लोकतांत्रिक सिद्धांत के लिए ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण बना हुआ है।

महिलाओं की पराधीनता

मिल की ***द सब्जेक्शन ऑफ़ वुमन*** **(1869)** उनके दर्शन की नैतिक और राजनीतिक पराकाष्ठा का प्रतिनिधित्व करती है। स्वतंत्रता और लोकतंत्र के अपने बचाव पर निर्माण करते हुए, मिल ने अपने उदारवादी सिद्धांतों को अपने युग के सबसे गहरे अन्याय—**लैंगिक असमानता**—पर लागू किया। उनके लिए, लोकतंत्र केवल एक संस्था नहीं, बल्कि एक नैतिक वचन है, और वह वचन तब तक टूटा हुआ है जब तक आधी मानवता निर्भर बनी रहती है।

वे इस दावे को ध्वस्त करके आरंभ करते हैं कि महिलाओं की अधीनता "प्राकृतिक" है। वे तर्क देते हैं कि जिसे समाज प्राकृतिक कहता है, वह केवल **प्रथा** है—सत्य के रूप में छिपी पुरानी शक्ति। महिलाओं की शिक्षा, भूमिकाएँ और मनोविज्ञान शताब्दियों के पुरुष-प्रभुत्व द्वारा आकार दिए गए हैं, इसलिए उनकी तथाकथित हीनता को प्रकृति के प्रमाण के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। पितृसत्ता, दासता की तरह, तर्क से नहीं, बल्कि "बल के नियम" से उत्पन्न हुई।

मिल **घरेलू दासता** के प्रभावशाली सादृश्य का उपयोग करते हैं: महिलाओं से न केवल शारीरिक रूप से, बल्कि भावनात्मक रूप से भी सेवा करने की अपेक्षा की जाती है—अपने स्वामियों से प्रेम करने और निर्भरता में अपनी पहचान खोजने की। स्नेह के रूप में छिपा यह अदृश्य बंधन प्रभुत्व को अधिक गहरा और प्रतिरोध के लिए अधिक

कठिन बना देता है। इसके बाद वे **विवाह-अनुबंध** की ओर मुड़ते हैं, और दिखाते हैं कि विक्टोरियाई कानून ने पत्नियों को कानूनी रूप से अधीन बना दिया था: उनकी संपत्ति, आय, आवाजाही और यहाँ तक कि उनके बच्चे भी पति के थे। मिल इसे "शाश्वत और पूर्ण" बंधन का एक रूप कहते हैं, क्योंकि यह महिलाओं को "हर घड़ी और हर पल" बाँधे रखता है। वे बल देकर कहते हैं कि जब तक यह असमानता बनी रहती है, तब तक सच्चा लोकतंत्र विद्यमान नहीं हो सकता।

नैतिक और राजनीतिक प्रगति के लिए, महिलाओं को संपत्ति, व्यवसाय और आत्म-निर्धारण के समान अधिकारों वाले **स्वतंत्र व्यक्तियों** के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। आर्थिक स्वाधीनता— "कमाने की शक्ति"—गरिमा के लिए आवश्यक है। मिल इन दावों का उपहास करते हैं कि महिलाओं में बौद्धिक या भावनात्मक शक्ति का अभाव है, यह तर्क देते हुए कि उनकी तथाकथित दुर्बलताएँ शिक्षा और अवसर से वंचित किए जाने का परिणाम हैं। **महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम** का उदाहरण दर्शाता है कि स्वतंत्रता दिए जाने पर महिलाएँ कितनी सक्षम हैं।

अपने तर्क को विस्तारित करते हुए, मिल दृढ़ता से कहते हैं कि यदि महिलाएँ कानूनों के अधीन हैं और कर चुकाती हैं, तो उन्हें भी यह निर्णय करने का समान अधिकार होना चाहिए कि उन पर कौन शासन करे। आधी जनसंख्या को मताधिकार से बाहर रखना स्वतंत्रता और समानता के प्रत्येक सिद्धांत का खंडन करता है। वे इस दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हैं कि लैंगिक अंतर प्राकृतिक या स्थिर हैं, और उनकी विशाल सांस्कृतिक भिन्नता की ओर संकेत करते हैं—जो इस बात का प्रमाण है कि वे सामाजिक रूप से निर्मित हैं।

मिल एक प्रभावशाली नैतिक और सामाजिक दृष्टि के साथ समापन करते हैं। महिलाओं की मुक्ति:

- समाज को विरासत में मिले अन्याय से मुक्त करेगी,
- मानवता के बौद्धिक और नैतिक संसाधनों को दोगुना करेगी,
- बच्चों का पालन-पोषण जन्म से श्रेष्ठता की शिक्षा दिए बिना करेगी,
- विवाह को समान व्यक्तियों की साझेदारी बनाएगी, और
- स्वयं महिलाओं के लिए अपार प्रसन्नता लाएगी, जिन्हें लंबे समय से "जीवन की तीसरी महान आवश्यकता—स्वतंत्रता" से वंचित रखा गया है।

मिल के लिए, **नारीवाद उदारवाद से अलग नहीं** है, बल्कि उसकी अंतिम परीक्षा है: जो समाज महिलाओं को अधीन रखते हुए स्वतंत्र होने का दावा करता है, वह अपने ही आदर्शों का खंडन करता है। इसलिए सच्चे लोकतंत्र को नैतिक, नागरिक और बौद्धिक जीवन में दोनों लिंगों को समान रूप से सम्मिलित करना चाहिए।

अंतिम चिंतन

इस इकाई में, हमने समझा कि जॉन स्टुअर्ट मिल ने नैतिक और राजनीतिक दर्शन का पुनर्निर्माण **उदारवादी उपयोगितावाद**, **व्यक्तिगत स्वतंत्रता**, **लोकतांत्रिक भागीदारी** और **लैंगिक समानता** के सिद्धांतों पर करने का प्रयास किया। उनकी व्यवस्था का लक्ष्य प्रसन्नता का न्याय के साथ, समानता का योग्यता के साथ, और स्वतंत्रता का नैतिक प्रगति के साथ संतुलन स्थापित करना था।

हमने सीखा कि उनके उदारवादी उपयोगितावाद ने सुख का स्थान *आवश्यकता-संतुष्टि* को दिया, स्वतंत्रता के माध्यम से नैतिक कर्तव्य को संतुलित किया, और नीतिशास्त्र को मानवीय गरिमा पर आधारित किया। उनकी *ऑन लिबर्टी* ने सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध विचार, वाणी और वैयक्तिकता का बचाव किया, जबकि उनकी *कंसिडरेशन्स ऑन रिप्रेज़ेंटेटिव गवर्नमेंट* ने लोकतंत्र को साधारण बहुमत-शासन के बजाय नागरिक सद्गुण की एक पाठशाला के रूप में पुनर्परिभाषित किया। अपनी योग्यतावादी सीमाओं के बावजूद, उनकी दृष्टि ने स्वतंत्रता को शिक्षा और नैतिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। द *सब्जेक्शन ऑफ़ वुमन* ने इसी तर्क को लैंगिक न्याय तक विस्तारित किया, और पितृसत्ता को अस्वतंत्रता के सबसे गहरे रूप के रूप में उजागर किया।

यद्यपि **वासिलिस ग्रोलियोस** जैसे आलोचक उनके लोकतांत्रिक आदर्शों के भीतर वर्गीय और पूँजीवादी पूर्वाग्रह को उजागर करते हैं, फिर भी मिल ज्ञानोदय के तर्क को आधुनिक उदारवाद से जोड़ने वाले एक केंद्रीय व्यक्तित्व बने हुए हैं। उनका चिंतन हमें याद दिलाता है कि समानता के बिना स्वतंत्रता अधूरी है, और लोकतंत्र को सच्चा होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति—पुरुष हो या महिला, धनी हो या निर्धन—की नैतिक स्वाधीनता पर आधारित होना चाहिए।

इसलिए इस इकाई में, हमने जॉन स्टुअर्ट मिल को एक ऐसे विचारक के रूप में समझा जिन्होंने उपयोगितावाद को मानवीय बनाया, लोकतंत्र को नैतिक रूप दिया, स्वतंत्रता का मानवीय विकास की नींव के रूप में बचाव किया, और आधुनिक समाज में न्याय के अंतिम मापदंड के रूप में स्वतंत्रता को महिलाओं तक विस्तारित किया।

4.8 शब्दावली

1. **उपयोगितावाद** – वह नैतिक सिद्धांत जिसके अनुसार उचित कार्य सर्वाधिक समग्र प्रसन्नता या कल्याण को बढ़ावा देते हैं।
2. **शास्त्रीय (बेंथमवादी) उपयोगितावाद** – जेरेमी बेंथम का संस्करण, जो विशुद्ध मात्रात्मक दृष्टि से सुख को अधिकतम करने और दुख को न्यूनतम करने पर केंद्रित है।
3. **उदारवादी उपयोगितावाद** – मिल का संशोधित संस्करण, जो स्वतंत्रता, समानता और व्यक्तिगत अधिकारों के प्रति सम्मान के माध्यम से नैतिक गहराई जोड़ता है।

4. **हानि सिद्धांत** – यह नियम कि शक्ति का उपयोग केवल दूसरों को होने वाली हानि को रोकने के लिए किया जा सकता है; स्व-संबंधी आचरण स्वतंत्र रहना चाहिए।

5. **स्व-संबंधी कार्य** – केवल व्यक्ति को प्रभावित करने वाले कार्य, जिन्हें समाज विधिसम्मत रूप से नियंत्रित नहीं कर सकता।

6. **पर-संबंधी कार्य** – दूसरों को प्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाने वाले या उनके अधिकारों का उल्लंघन करने वाले कार्य, जहाँ समाज हस्तक्षेप कर सकता है।

7. **स्वतंत्रता** – मिल के लिए, बलप्रयोग से मुक्त मानवीय विचार, वाणी और व्यवहार का क्षेत्र; वैयक्तिकता और विकास के लिए आवश्यक।

8. **वैयक्तिकता** – अपने स्वयं के विवेक के अनुसार सोचने, चुनने और जीने की क्षमता; मिल के दर्शन का एक नैतिक आदर्श।

9. **बहुल मतदान** – बुद्धिमत्ता और बहुमत-शासन में संतुलन स्थापित करने के लिए शिक्षित या योग्य लोगों को अधिक मत देने का मिल का प्रस्ताव।

10. **बहुमत का अत्याचार** – यह खतरा कि बहुमत के मत या हित वैयक्तिकता और अल्पसंख्यक अधिकारों का दमन कर सकते हैं।

11. **लोकतंत्र (मिल का दृष्टिकोण)** – सरकार का एक ऐसा रूप जो केवल संख्यात्मक बहुमत को अभिव्यक्त करने के बजाय नागरिकों को शिक्षित करता है और नैतिक चरित्र को परिष्कृत करता है।

12. **पितृसत्तावाद** – किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को "उसके अपने हित के लिए" प्रतिबंधित करना; मिल ने वयस्कों के लिए इसका विरोध किया।

13. **द सब्जेक्शन ऑफ़ वुमन** – मिल का 1869 का ग्रंथ, जो यह तर्क देता है कि महिलाओं की अधीनता प्रकृति का नहीं, बल्कि प्रथा का उत्पाद है, और पूर्ण समानता की माँग करता है।

14. **प्रथा बनाम प्रकृति** – मिल का यह भेद कि जिसे लोग "प्राकृतिक" कहते हैं, वह केवल लंबे समय से चली आ रही सामाजिक आदत या असमानता हो सकती है।

15. **घरेलू निरंकुशता** – विवाह में पुरुष-प्रभुत्व के लिए मिल का शब्द, जो निजी जीवन के भीतर दासता का एक छिपा हुआ रूप है।

4.9 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय / वैचारिक

1. मिल जैसे परवर्ती विचारकों के अनुसार शास्त्रीय बेंथमवादी उपयोगितावाद की मुख्य दुर्बलताएँ क्या थीं?
2. *उदारवादी उपयोगितावाद* को परिभाषित कीजिए। यह बेंथम के संस्करण से किस प्रकार भिन्न है?
3. मिल के *हानि सिद्धांत* को लिखिए और वैध सामाजिक हस्तक्षेप को परिभाषित करने में उसकी भूमिका की व्याख्या कीजिए।
4. *ऑन लिबर्टी* में मिल द्वारा वर्णित तीन मूल स्वतंत्रताओं को सूचीबद्ध कीजिए और उनकी व्याख्या कीजिए।
5. "मत का अत्याचार" या "बहुमत का अत्याचार" से मिल का अभिप्राय किस समस्या से है?
6. *बहुल मतदान* के लिए मिल के औचित्य की व्याख्या कीजिए और बताइए कि आलोचक इसे अलोकतांत्रिक क्यों मानते हैं।
7. मिल के लोकतंत्र के समर्थन की वासिलिस ग्रोलियोस की मुख्य आलोचना का सारांश लिखिए।
8. मिल महिलाओं की समानता को स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों से किस प्रकार जोड़ते हैं?
9. मिल महिलाओं की सामाजिक स्थिति की तुलना दासता या सेवकाई से क्यों करते हैं?
10. जब मिल कहते हैं कि जो "प्राकृतिक" है वह केवल "प्रथागत" हो सकता है, तो उनका क्या अभिप्राय है?

विश्लेषणात्मक / निबंधात्मक

1. चर्चा कीजिए कि मिल का *उदारवादी उपयोगितावाद* व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सामूहिक हित के साथ सामंजस्य किस प्रकार स्थापित करता है।
2. उदाहरणों सहित मिल की *ऑन लिबर्टी* में स्वतंत्रता और वैयक्तिकता के बीच संबंध का मूल्यांकन कीजिए।
3. लोकतांत्रिक समानता के प्रकाश में मिल के योग्यता और बहुल मतदान के विचार का आलोचनात्मक आकलन कीजिए।
4. "मिल का नारीवाद उनके उदारवाद की नैतिक पूर्णता है।" — *द सब्जेक्शन ऑफ़ वुमन* के संदर्भ में इस कथन की चर्चा कीजिए।
5. लोकतंत्र पर मिल और ग्रोलियोस के दृष्टिकोणों की तुलना कीजिए और उनमें अंतर बताइए। यह आलोचना उदारवाद और पूँजीवाद के बीच संबंध के बारे में क्या उजागर करती है?

4.10 अतिरिक्त पठन सामग्री

- मिल, जे.एस. 'ऑन लिबर्टी' एंड अदर राइटिंग्स, अध्याय 1, 3, 4.
- मिल, जे.एस. यूटिलिटेरियनिज़्म (इंडियामपोलिस: हिकेट पब्लिशिंग, 2001), अध्याय 1, 2, और 4
- रॉल्स, जे. लेक्चर्स ऑन द हिस्ट्री ऑफ़ पॉलिटिकल फ़िलॉसफ़ी, लेक्चर्स ऑन मिल, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृ. 251-314
- ऐक्टन, एच.बी. (1972), जॉन स्टुअर्ट मिल: यूटिलिटेरियनिज़्म, लिबर्टी एंड रिप्रेज़ेंटेटिव गवर्नमेंट, डेविड कैम्पबेल पब्लिशर्स लिमिटेड.
- एच. मैगिड (1987) 'जॉन स्टुअर्ट मिल', एल. स्ट्रॉस और जे. क्रॉप्सी (संपा.), हिस्ट्री ऑफ़ पॉलिटिकल फ़िलॉसफ़ी में, द्वितीय संस्करण. शिकागो: शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 784-801.
- पी. केली (2003) 'जे.एस. मिल ऑन लिबर्टी', डी. बाउचर और पी. केली (संपा.) पॉलिटिकल थिंकर्स: फ़्रॉम सुकरात टू द प्रेज़ेंट में. न्यूयॉर्क: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 324-359.

अध्याय 5

हेगेल का नैतिक जीवन: परिवार, नागरिक समाज और राज्य

5.1 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद, शिक्षार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. व्यक्तिगत और सामाजिक स्वतंत्रता की एकता के रूप में हेगेल की **नैतिक जीवन (ज़िटलिखकाइट)** की अवधारणा के अर्थ की **व्याख्या करना**।
2. नैतिक जीवन के तीन क्षेत्रों—**परिवार, नागरिक समाज और राज्य**—और उनके आंगिक अंतर्संबंधों का **वर्णन करना**।
3. यह **रेखांकित करना** कि हेगेल अपने प्रारंभिक विचारों को *द सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* (1802–03) से अपनी परिपक्व कृति *फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट* (1821) तक किस प्रकार विकसित करते हैं।
4. हेगेल के इस दृष्टिकोण की **चर्चा करना** कि मानवीय तर्क और नैतिकता केवल संस्थाओं और साझा प्रथाओं के भीतर ही उभरते हैं।
5. **मान्यता (आनरकेनुंग)** और **मध्यस्थता (फ़रमित्लुंग)** की अवधारणाओं का और नैतिक तथा राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण में उनकी भूमिका का **विश्लेषण करना**।
6. इस बात का **मूल्यांकन करना** कि हेगेल आर्थिक जीवन, कानूनी संरचनाओं और सरकार को नैतिक स्वतंत्रता और आत्म-साक्षात्कार से किस प्रकार जोड़ते हैं।
7. श्रम, संपत्ति और राज्य की हेगेल की आदर्शवादी व्याख्या की तुलना इन्हीं विचारों के मार्क्स के परवर्ती **भौतिकवादी रूपांतरण** से **करना**।
8. नैतिक जीवन को बनाए रखने और धन तथा निर्धनता के बीच संतुलन स्थापित करने में वर्ग, सद्गुण और नागरिक समाज के महत्त्व पर **आलोचनात्मक चिंतन करना**।

5.2 प्रस्तावना

पिछली इकाई में, हमने परखा कि **जॉन स्टुअर्ट मिल** ने *स्वतंत्रता और उपयोगिता*, *स्वाधीनता और लोकतंत्र*, तथा *नैतिक स्वायत्तता और सामाजिक प्रगति* में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किस प्रकार किया। मिल का सुधारवादी चिंतन **शास्त्रीय उदारवाद** के शिखर पर खड़ा था—जो सामाजिक सहयोग की आवश्यकता को स्वीकार

करते हुए वैयक्तिकता का बचाव करता था। **उदारवादी उपयोगितावाद**, **विचार और आचरण की स्वतंत्रता**, **लोकतांत्रिक भागीदारी** और **लैंगिक समानता** पर उनके विचार, सभी का लक्ष्य आधुनिक औद्योगिक समाज को उसकी आर्थिक नींवों को उखाड़े बिना मानवीय बनाना था। फिर भी, जैसा कि **वासिलिस ग्रोलियोस** जैसे आलोचकों ने प्रदर्शित किया, मिल का उदारवादी समाधान अंततः **पूँजीवादी संपत्ति और वर्गीय पदानुक्रम के प्रति अपनी प्रतिबद्धता** द्वारा सीमित बना रहा।

यह सीमा सीधे उन्नीसवीं शताब्दी के दर्शन के अगले महान चरण की ओर खुलती है: **उदारवादी सुधार से सामाजिक कट्टरपंथ की ओर संक्रमण**। मिल के मंडल के उदारवादी विचारकों ने नैतिक चिंता को सार्वभौमिक अधिकारों, समानता और शिक्षा तक विस्तारित किया था, परंतु वे अभी भी स्वतंत्रता की कल्पना मूलतः *व्यक्तिवादी* संदर्भ में करते थे। इसके विपरीत, "कट्टरपंथी दार्शनिकों—हेगेल और मार्क्स" ने स्वतंत्रता, न्याय और मानवीय विकास को **सामाजिक संबंधों की समग्रता** पर आधारित करने का प्रयास किया।

दोनों विचारकों ने इस दृढ़ विश्वास से आरंभ किया कि मनुष्य एक पृथक इच्छा नहीं, बल्कि एक **सामाजिक प्राणी** है, जिसका तर्क, नैतिकता और वैयक्तिकता केवल नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं के एक जाल के भीतर ही उभरते हैं। उनका कार्य यह दिखाना था कि ये संस्थाएँ किस प्रकार उत्पन्न होती हैं, विकसित होती हैं, और स्वयं मानवीय आत्मा (स्पिरिट) के विकास को अभिव्यक्त करती हैं।

इस प्रकार, जहाँ मिल **उदारवादी उपयोगितावादी परंपरा** की पराकाष्ठा का प्रतिनिधित्व करते हैं, वहीं **हेगेल और मार्क्स** उस **आलोचनात्मक परंपरा** का सूत्रपात करते हैं जो उसकी मान्यताओं को चुनौती देती है। हेगेल नीतिशास्त्र को **नैतिक जीवन (ज़िटलिखकाइट)** के एक सिद्धांत में रूपांतरित करते हैं—**परिवार, नागरिक समाज और राज्य** की एक गतिशील एकता—जिसमें स्वतंत्रता तर्कसंगत संस्थाओं में भागीदारी के माध्यम से साकार होती है। हेगेल के लिए, तर्क केवल निजी अंतरात्मा नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन की वह जीवंत व्यवस्था है जिसके माध्यम से व्यक्ति और समुदाय सामंजस्य प्राप्त करते हैं।

मार्क्स, हेगेल की पद्धति को विरासत में पाकर और उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन करके, इस आदर्शवादी विवरण को भौतिकवादी शब्दों में रूपांतरित करते हैं। उनका **ऐतिहासिक भौतिकवाद** यह उजागर करता है कि अर्थव्यवस्था और श्रम की संरचनाएँ चेतना, नैतिकता और राजनीति को किस प्रकार आकार देती हैं। मार्क्स की **मूल्य** की अवधारणा पूँजीवादी उत्पादन के भीतर शोषण के छिपे संबंधों को उजागर करती है—वह बिंदु जहाँ उदारवादी लोकतंत्र का समानता का वचन अपने विपरीत में बदल जाता है।

इस प्रकार, **इकाई IV: कट्टरपंथी उदारवादी सुधार से संरचनात्मक आलोचना** की ओर, **नैतिक स्वतंत्रता** से **ऐतिहासिक अनिवार्यता** की ओर, महान दार्शनिक संक्रमण के अध्ययन का आरंभ करती है।

- **अध्याय 5 हेगेल की नैतिक जीवन की अवधारणा** का विश्लेषण करेगा, और यह अन्वेषण करेगा कि व्यक्ति **परिवार, नागरिक समाज और राज्य** की परस्पर गुँथी संस्थाओं के भीतर स्वतंत्रता को किस प्रकार साकार करता है।

- **अध्याय 6** इसके बाद **कार्ल मार्क्स** की ओर मुड़ेगा, और उनके **ऐतिहासिक भौतिकवाद** के सिद्धांत तथा उनकी **मूल्य की अवधारणा** का परीक्षण करेगा, यह दिखाते हुए कि मार्क्स दर्शन को श्रम और उत्पादन की भौतिक प्रक्रियाओं में स्थापित करके हेगेल के आदर्शवाद को आत्मसात भी करते हैं और उलट भी देते हैं।

मिलकर, ये दोनों अध्याय **हेगेल के समग्र नैतिक व्यवस्था के दर्शन** से **पूँजीवादी समाज की मार्क्स की आलोचना** तक की गति को रेखांकित करते हैं, और आधुनिक यूरोपीय चिंतन के **उदारवादी** से **कट्टरपंथी** चरण की ओर बदलाव को चिह्नित करते हैं।

5.3 प्रारंभिक व्यवस्था

हेगेल का *सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* (1802–03) उनकी सबसे प्रारंभिक उपलब्ध पांडुलिपि है जिसमें हम उनके बाद के दर्शन का मूल स्वरूप पहले से ही देख सकते हैं। आरंभ से ही, हेगेल स्पष्ट करते हैं कि नैतिक जीवन को केवल तभी समझा जा सकता है जब विश्व का हमारा तात्कालिक अनुभव—जिसे वे **अंतःप्रज्ञा (इंट्यूशन)** कहते हैं—हमारी साझा सामाजिक अवधारणाओं, अर्थात् उस भाषा, उन मानदंडों और संस्थाओं के साथ पूर्ण सामंजस्य में लाया जाए जिनके माध्यम से समाज स्वयं को समझते हैं। वे मानवीय आत्मा का अध्ययन मन में पृथक किसी वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन के भीतर आकार लेने वाली वस्तु के रूप में करते हैं। यद्यपि प्रस्तावना अंतःप्रज्ञा और अवधारणा को एकजुट करने की आवश्यकता का संक्षेप में उल्लेख करती है, मुख्य पाठ इस बात पर केंद्रित है कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन के विभिन्न रूप किस प्रकार विकसित होते हैं और तार्किक रूप से एक-दूसरे में सुसंगत बैठते हैं। हेगेल इस विकास को चरणों में प्रस्तुत करते हैं: **"निरपेक्ष नैतिक जीवन"** से आरंभ करते हुए, जहाँ मनुष्य पहली बार भावना और साझा अर्थ के माध्यम से स्वयं का अनुभव करते हैं; **"स्वतंत्रता का नकारात्मक पक्ष"** से गुज़रते हुए, जहाँ संघर्ष, असमानता और अव्यवस्था प्रकट होते हैं; और अंततः **"वास्तविक नैतिक जीवन"** तक पहुँचते हुए, जहाँ स्वतंत्रता को संगठित और सुरक्षित करने के लिए स्थिर संस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। इस अंतिम चरण में, हेगेल सरकार के तीन स्तरों को रेखांकित करते हैं— **निरपेक्ष सरकार**, **सार्वभौमिक सरकार** और **स्वतंत्र सरकार**—परंतु सर्वोच्च स्तर की उनकी चर्चा अधूरी रह जाती है, जो केवल **राजतंत्र**, **अभिजाततंत्र** और **लोकतंत्र** के शास्त्रीय रूपों के साथ समाप्त होती है।

5.4 प्रकृति, पद्धति और क्षेत्र

यहाँ हेगेल की चर्चा पद्धति के एक अत्यंत विशिष्ट चुनाव से आकार लेती है। वे विचारों के ऐतिहासिक विकास को चरण-दर-चरण रेखांकित करने का प्रयास नहीं कर रहे (जिसे वे बाद में *जातिवृत्तीय (फ़ाइलोजेनेटिक)* विवरण कहते), और न ही वे इस बारे में कोई मनोवैज्ञानिक कहानी प्रस्तुत कर रहे हैं कि ये विचार व्यक्तिगत चेतना में किस प्रकार उभरते हैं (*व्यक्तिवृत्तीय (ऑन्टोजेनेटिक)*)। इसके बजाय, वे जाँच की एक **तार्किक** रेखा का अनुसरण करते हैं, और अवधारणाओं को उनके आंतरिक संबंधों और अनिवार्यता के संदर्भ में प्रकट करते हैं।

1803–1804 की बाद की *रियलफ़िलॉसफ़ी* पांडुलिपियों की तरह, यह प्रारंभिक पाठ शुद्ध तत्त्वमीमांसा के अमूर्त क्षेत्र में भटकने के बजाय **सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं** के निकट रहता है। उल्लेखनीय बात यह है कि हेगेल के परिपक्व दर्शन को परिभाषित करने वाले कितने ही विषय यहाँ पहले से ही दिखाई देते हैं। चिंतन की वे रेखाएँ जिन्हें हम बाद में *फ़ेनोमेनोलॉजी ऑफ़ स्पिरिट* (1807), *साइंस ऑफ़ लॉजिक* (1812–1816), *एनसाइक्लोपीडिया* (1817) और *फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट* (1821) में विस्तृत होते देखते हैं, यहाँ पहले से ही अंकुरित हो रही हैं।

सबसे उल्लेखनीय यह है कि इस प्रारंभिक चरण में भी, **मान्यता (आनरकेनुंग)** और **मध्यस्थता (फ़रमित्लुंग)** की अवधारणाएँ न केवल उपस्थित हैं, बल्कि केंद्रीय हैं। वे मार्गदर्शक सूत्रों के रूप में कार्य करती हैं जो मानवीय आत्मनिष्ठता को सामाजिक जीवन से, और व्यक्तियों को व्यापक संस्थागत विश्व से जोड़ती हैं।

5.5 नैतिक जीवन के स्तर

प्रथम स्तर: व्यवहार और प्राकृतिक नैतिक जीवन

हेगेल नैतिक जीवन के अपने विवरण का आरंभ उससे करते हैं जिसे वे **व्यवहार (प्रैक्टिस) का स्तर** कहते हैं, जहाँ मानवीय कार्य अभी भी तात्कालिक अंतःप्रज्ञा और भावना के बहुत निकट होता है। इस चरण में, व्यक्ति अभी पूर्ण रूप से विकसित अवधारणाओं के साथ कार्य नहीं करता; बल्कि वह आवश्यकता, इच्छा और अपने परिवेश को रूपांतरित करने के मूल प्रयास के माध्यम से विश्व को आत्मसात करता है।

हेगेल के लिए, व्यवहार वह गति है जिसमें व्यक्ति **श्रम के माध्यम से आवश्यकता पर विजय पाता है**, और इस प्रक्रिया के माध्यम से आनंद तक पहुँचता है। वे इसे वस्तु के साथ विषय (सब्जेक्ट) के सक्रिय संबंध के रूप में वर्णित करते हैं—स्वामित्व ग्रहण करने का एक प्रारंभिक रूप। फिर भी वे इस बात पर बल देते हैं कि वास्तविक स्वामित्व इस प्रथम चरण में वास्तव में विद्यमान नहीं होता; यहाँ यह कानूनी या सामाजिक रूप से मान्यता-प्राप्त दावे की तुलना में वस्तुओं के प्रति एक अनुभूत अभिमुखता अधिक है।

व्यवहार का यह प्रारंभिक रूप धीरे-धीरे विकसित होता है। यह **पौधों और पशुओं के उपयोग** से आरंभ होता है, जो प्रकृति को रूपांतरित करने का सबसे सरल तरीका है, और फिर **बुद्धि** के क्षेत्र तक विस्तृत होता है। हेगेल के शब्दों में, खाना और पीना विश्व के साथ इस तात्कालिक व्यावहारिक संबंध के सबसे स्पष्ट उदाहरण हैं।

साथ ही, **अवधारणा** सामान्य गतिविधियों के माध्यम से आकार लेने लगती है, जैसे **बच्चों का पालन-पोषण, औज़ारों का निर्माण और उपयोग, तथा भाषा का प्रारंभिक विकास**। ये कार्य पहले संकेत प्रदान करते हैं कि मानव जीवन विशुद्ध तात्कालिकता से आगे बढ़कर साझा अर्थ और चिंतन की ओर बढ़ रहा है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस अत्यंत मूलभूत स्तर पर भी, मनुष्य अलगाव में नहीं रहते। वे पहले से ही एक **समुदाय** में अंतर्निहित होते हैं, और हेगेल की रुचि इन दैनिक प्रथाओं के नीचे स्थित **तार्किक संरचना** में है—वह तरीका जिससे सामाजिक जीवन औपचारिक रूप से नैतिक या कानूनी बनने से बहुत पहले संगठित होता है।

हेगेल इस चरण को **"प्राकृतिक नैतिक जीवन"** कहते हैं। इसे किसी पौराणिक "प्राकृतिक अवस्था" के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। बल्कि, यह **सामाजिक अस्तित्व की तार्किक नींव** है, वह अंतर्निहित परत जिससे बाद में नैतिक और संस्थागत जीवन के अधिक जटिल रूप उभरते हैं।

द्वितीय स्तर: श्रम-विभाजन और मान्यता

नैतिक जीवन के दूसरे स्तर पर, हेगेल दिखाते हैं कि सामाजिक और आर्थिक संगठन मानवीय वैयक्तिकता को किस प्रकार गहरा करता है। जैसे-जैसे लोग अपने श्रम का विभाजन करने लगते हैं और अपनी तात्कालिक आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने लगते हैं, वे एक अधिशेष (सरप्लस) उत्पन्न करते हैं जिसका विनिमय किया जा सकता है। यह साधारण बदलाव वैयक्तिकता के अर्थ को बदल देता है: एक व्यक्ति अब केवल इससे परिभाषित नहीं होता कि वह विश्व से क्या लेता है, बल्कि इससे कि वह विनिमय के एक व्यापक जाल में क्या योगदान देता है। इस परिवेश में, व्यक्ति को केवल वस्तुओं के स्वामी के रूप में नहीं, बल्कि आवश्यकताओं और योगदानों की एक साझा व्यवस्था के भीतर स्थित व्यक्ति के रूप में मान्यता मिलती है। हेगेल इसे उस बिंदु के रूप में वर्णित करते हैं जहाँ विषय को "सार्वभौमिकता के रूप में" ग्रहण कर लिया जाता है, अर्थात् व्यक्ति के व्यक्तिगत प्रयास सामाजिक महत्त्व प्राप्त करते हैं और दूसरों द्वारा स्वीकार किए जाते हैं।

इस स्तर पर मान्यता **संपत्ति** के माध्यम से उत्पन्न होती है, जो केवल भौतिक स्वामित्व नहीं, बल्कि एक सामाजिक रूप से मान्य दावा है। एक बार कोई वस्तु संपत्ति बन जाती है, तो वह एक सार्वभौमिक ढाँचे में प्रवेश कर जाती है जहाँ अधिकार और दायित्व लागू होते हैं। यही कारण है कि हेगेल कहते हैं कि संपत्ति का सार्वभौमिक आयाम वह है जिसे हम **कानूनी अधिकार** कहते हैं। संपत्ति एक निजी तथ्य से अधिक बन जाती है; यह संस्थाओं द्वारा समर्थित एक कानूनी स्थिति बन जाती है। व्यक्ति के लिए, इसका अर्थ है कि उसका व्यक्तित्व— जिसे यहाँ अधिकार धारण करने की क्षमता के रूप में समझा गया है—एक अमूर्त परंतु सामाजिक रूप से सार्थक रूप ग्रहण कर लेता है। व्यक्ति केवल इसलिए स्वामी नहीं होता कि संयोग से कोई वस्तु उसके पास है, बल्कि इसलिए कि समाज उस स्वामित्व को मान्यता देता है।

इस प्रकार, हेगेल एक स्पष्ट प्रगति दिखाते हैं: **संपत्ति सार्वभौमिकता को जन्म देती है; सार्वभौमिकता कानूनी अधिकार बन जाती है; और कानूनी अधिकार मान्यता को संरचित करता है**। इसलिए मान्यता अब व्यक्तिगत भावना या मनोवैज्ञानिक स्वीकृति का विषय नहीं रह जाती। यह संस्थागत है। यह कानून और आर्थिक विनिमय की उन व्यवस्थाओं में निहित है जो व्यक्तियों को सामाजिक विश्व में एक साझा, वस्तुनिष्ठ स्थान प्रदान करती हैं।

तृतीय स्तर: मुद्रा, विनिमय और वैयक्तिकता का स्वरूप

नैतिक जीवन के तीसरे स्तर पर, हेगेल मुद्रा, व्यापार और अधिशेष के परिसंचरण को ऐसी नई शक्तियों के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो मानवीय वैयक्तिकता को नया रूप देती हैं। एक बार मुद्रा के आ जाने पर, व्यक्ति एक-दूसरे से केवल विशिष्ट वस्तुओं के उत्पादकों के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक आर्थिक जाल में परस्पर-विनिमेय सहभागियों के रूप में संबंधित होते हैं। हेगेल इसे "औपचारिक, संबंध-रहित मान्यता" कहते हैं: किसी व्यक्ति को उसके विशिष्ट गुणों, आवश्यकताओं या प्रतिभाओं की परवाह किए बिना, केवल एक ऐसे व्यक्ति के रूप में मान्यता मिलती है जो विनिमय-संबंधों में प्रवेश कर सकता है। इस अमूर्त आर्थिक क्षेत्र में, प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतंत्र इकाई के रूप में खड़ा होता है जिसे दूसरे इसलिए स्वीकार करते हैं क्योंकि वह क्रय, विक्रय और अनुबंधात्मक विनिमय की सार्वभौमिक प्रणालियों में भाग लेता है।

परंतु यह चरण मानवीय सामाजिक जीवन के भीतर गहरी असमानताओं को भी उजागर करता है। हेगेल की व्यवस्था में पहली बार, **स्वामित्व और दासता (लॉर्डशिप एंड बॉन्डेज)** की द्वंद्वात्मकता प्रकट होती है—अभी मान्यता के लिए एक नाटकीय दार्शनिक संघर्ष के रूप में नहीं, बल्कि मुद्रा-संचालित अर्थव्यवस्था के भीतर संसाधनों तक असमान पहुँच के एक ठोस परिणाम के रूप में। जब दो व्यक्ति इस परिवेश में एक-दूसरे का सामना करते हैं, तो वे जीवित प्राणियों के रूप में मिलते हैं, परंतु उनकी "जीवन की शक्ति" उनके धन, अवसरों और सामाजिक स्थिति के अनुसार भिन्न होती है। जिनके पास अधिक संसाधन होते हैं वे अधिक स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकते हैं, जबकि जिनके पास कम होता है वे निर्भर हो जाते हैं। इस प्रकार स्वतंत्र और निर्भर के बीच, अधिशेष पर नियंत्रण रखने वालों और अस्तित्व के लिए दूसरों पर निर्भर रहने वालों के बीच का संबंध, स्वामित्व और दासता का सबसे प्रारंभिक रूप बन जाता है।

हेगेल का आशय यह है कि यह संबंध इसलिए उत्पन्न नहीं होता कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से प्रभुत्व चाहते हैं। यह स्वयं बाज़ार द्वारा उत्पन्न संरचनात्मक असमानताओं से उभरता है। बाज़ार पहले सभी को विनिमय में भाग लेने देकर मान्यता को सार्वभौमिक बनाता है। फिर भी यही सार्वभौमिकता धन में ऐसे अंतर उत्पन्न करती है जो धीरे-धीरे अमीर और गरीब के बीच सामाजिक विभाजनों में कठोर हो जाते हैं। जैसे-जैसे ये असमानताएँ गहरी होती हैं, "प्राकृतिक नैतिक जीवन" का पूर्ववर्ती सामंजस्य टूट जाता है, और उसे जन्म देता है जिसे हेगेल "स्वतंत्रता का नकारात्मक पक्ष" या "अतिक्रमण" कहते हैं—एक ऐसा चरण जो संघर्ष, निर्भरता और नैतिक एकता के क्षरण से चिह्नित है।

5.6 स्वतंत्रता का नकारात्मक पक्ष: विनाश और प्रतिशोध

नकारात्मक स्वतंत्रता के चरण में, हेगेल वर्णन करते हैं कि जब नैतिक जीवन की पूर्ववर्ती सुसंगति ढह जाती है तो क्या होता है। एक बार साझा मानदंडों, पारस्परिक मान्यता और नियंत्रित विनिमय के बंधन टूट जाने पर, समाज अव्यवस्था और हिंसा से चिह्नित एक अवस्था में बह जाता है। इस अवस्था में, व्यक्ति कानून की स्थिरकारी शक्ति के बिना एक-दूसरे का सामना करते हैं, और हत्या, लूट, उत्पीड़न तथा व्यक्तिगत सम्मान पर आक्रमण जैसे कार्य सामान्य संभावनाएँ बन जाते हैं। प्रत्येक क्षति विशिष्ट रहती है, किसी विशिष्ट व्यक्ति पर लक्षित, और प्रत्येक प्रतिक्रिया निजी होती है, जो न्याय के किसी सार्वभौमिक सिद्धांत के बजाय व्यक्तिगत प्रतिशोध से प्रेरित होती है। यह खंडित विश्व वह है जहाँ स्वतंत्रता केवल विनाशकारी अर्थ में विद्यमान होती है—बिना सीमाओं के कार्य करने की स्वतंत्रता, जो अंततः स्वयं सामाजिक जीवन को कमज़ोर कर देती है।

प्रतिशोध यहाँ न्याय के सबसे प्रारंभिक रूप के रूप में उभरता है। चूँकि ऐसा कोई कानूनी ढाँचा नहीं होता जो गलतियों को सार्वभौमिक रूप से पहचाने जाने योग्य अपराधों में रूपांतरित कर सके, इसलिए लोग प्रतिकारात्मक कार्यों के माध्यम से प्रतिक्रिया देते हैं जो बल के माध्यम से संतुलन पुनर्स्थापित करने का प्रयास करते हैं। इस वातावरण में, **धमकी** एक आदिम सामाजिक तंत्र के रूप में कार्य करने लगती है—शक्ति का एक ऐसा प्रदर्शन जो सदैव पूर्ण हानि की संभावना लिए रहता है। धमकी के ऐसे निरंतर सामने से, व्यक्तियों में **सम्मान** की भावना विकसित होती है, जिसे औपचारिक अधिकारों या संस्थाओं के अभाव में अपनी सत्यनिष्ठा और स्थिति की रक्षा करने की आवश्यकता के रूप में समझा जाता है। सम्मान उस अमूर्त अधिकार का एक आद्य-रूप बन जाता है जिसकी गारंटी बाद में कानून द्वारा दी जाएगी।

तथापि, यह अराजक चरण केवल विनाशकारी नहीं है; इसमें नैतिक पुनर्निर्माण के बीज निहित हैं। अनियंत्रित स्वतंत्रता द्वारा उत्पन्न विनाश ही एक स्थिर सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता को उजागर करता है। इसी आवश्यकता से सरकार का विचार उत्पन्न होता है—एक ऐसा प्राधिकार जो निजी प्रतिकार को सार्वजनिक न्याय में और प्रतिशोध के बिखरे कार्यों को अधिकार के संस्थागत रूपों में रूपांतरित करने में सक्षम हो। इस प्रकार, स्वतंत्रता का नकारात्मक पक्ष प्राकृतिक नैतिक जीवन के पतन और संगठित नैतिक तथा राजनीतिक संस्थाओं के उदय के बीच सेतु बन जाता है।

5.7 सरकार का उदय: युद्ध और अधीनता से राजनीतिक व्यवस्था तक

जैसे-जैसे नैतिक जीवन आगे प्रकट होता है, हेगेल दिखाते हैं कि राजनीतिक प्राधिकार पहले शांतिपूर्ण सहयोग से नहीं, बल्कि समूहों के बीच प्रभुत्व के संबंधों से उभरता है। स्वामित्व और दासता का पूर्ववर्ती प्रतिरूप यहाँ पुनः प्रकट होता है, परंतु अब बड़े पैमाने पर, एक विजेता जनसमूह और एक विजित जनसमूह के बीच संबंध के रूप में। लूट के कार्यों के विपरीत—जो क्षणिक, पृथक और दीर्घकालिक व्यवस्था को बनाए रखने में असमर्थ होते हैं—

अधीनता एक स्थिर पदानुक्रम स्थापित करती है जो सरकार की नींव के रूप में कार्य कर सकता है। हेगेल तर्क देते हैं कि राजनीतिक संगठन तभी आकार लेता है जब एक समूह दूसरे को अधीन कर लेता है, क्योंकि इसी थोपी गई एकता के माध्यम से व्यवस्था पहली बार संभव होती है। इसलिए युद्ध और शांति एक द्वंद्वात्मक युग्म बनाते हैं: युद्ध सामंजस्य और साझा उद्देश्य उत्पन्न करता है, जबकि लंबी शांति इस एकता को उदासीनता में विघटित कर सकती है। इस अर्थ में, संघर्ष वह ऐतिहासिक क्षण बन जाता है जिसके माध्यम से राजनीतिक प्राधिकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

आध्यात्मिक समग्रता के रूप में नैतिक जीवन

हेगेल के लिए, नैतिक जीवन (ज़िटलिखकाइट) की पूर्ण विकसित संरचना व्यक्तिगत आत्मनिष्ठता की सामाजिक जीवन के सार्वभौमिक रूपों के साथ एकता का प्रतिनिधित्व करती है। वे इस एकता को उस बिंदु के रूप में वर्णित करते हैं जहाँ बुद्धि और मात्र विशिष्टता पर विजय एक साथ घटित होती हैं—जहाँ "आत्मा की आँखें" और "शरीर की आँखें" अंततः एक सीध में आ जाती हैं। इस प्रकार नैतिक जीवन कोई अमूर्तता नहीं, बल्कि एक जीवित व्यवस्था है जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामुदायिक व्यवस्था एक-दूसरे को सुदृढ़ करती हैं। इस व्यवस्था के भीतर, नैतिक गुण विभिन्न सामाजिक वर्गों में निहित सद्गुणों के रूप में प्रकट होते हैं, जिनमें से प्रत्येक नैतिक समग्र के एक विशिष्ट पहलू को अभिव्यक्त करता है।

नैतिक जीवन में सद्गुण

सद्गुण	वर्ग	कार्य
साहस	सैन्य वर्ग	रक्षा, कार्रवाई
ईमानदारी	वाणिज्यिक वर्ग	विनिमय, मध्यस्थता
विश्वास	कृषक वर्ग	उत्पादन, स्थिरता

हेगेल द्वारा "वर्ग" शब्द का प्रयोग आधुनिक अर्थ में आर्थिक श्रेणियों की ओर संकेत नहीं करता। बल्कि, यह विशिष्ट भूमिकाओं और उत्तरदायित्वों से जुड़े जीवन के व्यापक रूपों के बीच भेद करता है। इस प्रकार, सेनापति और सामान्य सैनिक, दोनों सैन्य वर्ग से संबंधित हैं; व्यापारी और पूँजीपति वाणिज्यिक वर्ग के अंतर्गत आते हैं; और बड़ा भूस्वामी तथा छोटा किसान मिलकर कृषक वर्ग बनाते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हेगेल वाणिज्यिक वर्ग के उस तत्त्व के आलोचक हैं जिसे वे **बुर्जुआ** कहते हैं। वे तर्क देते हैं कि इस वर्ग में सच्चे सद्गुण या साहस का अभाव है, क्योंकि वास्तविक सद्गुण स्वतंत्र वैयक्तिकता से उत्पन्न होता है, जबकि वाणिज्यिक वर्ग विनिमय के सार्वभौमिक, अवैयक्तिक रूपों के भीतर कार्य करने की प्रवृत्ति रखता है जो व्यक्तिगत नैतिक स्वतंत्रता के लिए बहुत कम स्थान छोड़ते हैं। जैसा कि हेगेल कहते हैं, यहाँ ईमानदारी केवल वर्ग की सार्वभौमिकता में विद्यमान है, वास्तविक नैतिक कर्तृत्व के लिए आवश्यक गहरी वैयक्तिकता के बिना।

5.8 सरकार के स्तर

निरपेक्ष सरकार (प्राकृतिक सरकार)

हेगेल के विवरण में, सरकार का सबसे प्रारंभिक रूप वह है जिसे वे "निरपेक्ष" या "प्राकृतिक" सरकार कहते हैं—एक ऐसा चरण जिसमें राजनीतिक प्राधिकार अभी भी उस सैन्य वर्ग से घनिष्ठ रूप से जुड़ा होता है जो पूरे समुदाय के हितों की रक्षा और प्रतिनिधित्व करता है। चूँकि शासकों को निजी प्रेरणाओं के बजाय सार्वभौमिक प्रेरणाओं से कार्य करना चाहिए, इसलिए हेगेल इस बात पर बल देते हैं कि प्राधिकार की मध्यस्थता उन लोगों द्वारा की जानी चाहिए जो स्वार्थ से सबसे कम प्रेरित हों, जैसे वृद्धजन (एल्डर्स) या पुरोहित। इस प्रारंभिक विन्यास में, केंद्रीय सिद्धांत **मध्यस्थता** है, मान्यता नहीं: सरकार उन व्यक्तियों के माध्यम से कार्य करती है जो व्यक्तिगत आवेगों से ऊपर खड़े होते हैं और समुदाय को एकता की ओर मार्गदर्शन देते हैं। शासन का यह रूप नकारात्मक स्वतंत्रता की अव्यवस्था के बाद नैतिक जीवन को स्थिर करने के एक प्रारंभिक प्रयास का मूर्त रूप है।

सार्वभौमिक सरकार (शक्तियों का पृथक्करण)

सार्वभौमिक सरकार के साथ, समाज अधिक जटिल और विभेदित हो जाता है, जिसके लिए ऐसी विशिष्ट शासन-व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है जो नैतिक समुदाय की प्रमुख आवश्यकताओं के अनुरूप हों। हेगेल ऐसी तीन व्यवस्थाओं की पहचान करते हैं: अर्थव्यवस्था, न्याय का प्रशासन और सार्वजनिक अनुशासन।

(a) आवश्यकताओं की व्यवस्था (अर्थव्यवस्था)

पहली उप-व्यवस्था अर्थव्यवस्था पर आधारित है, जिसे हेगेल परस्पर-निर्भरता और अंधी अनिवार्यता के क्षेत्र के रूप में वर्णित करते हैं। चूँकि अधिशेष और धन का मूल्य व्यक्तिगत नियंत्रण से परे उतार-चढ़ाव करता है, इसलिए आर्थिक जीवन सदैव समुदाय को अस्थिर करने का जोखिम लिए रहता है। हेगेल परिचित सामाजिक-आर्थिक खतरों को रेखांकित करते हैं: गहरी निर्धनता के साथ-साथ अत्यधिक धन का संकेंद्रण, व्यापार-चक्रों और बेरोज़गारी की पुनरावृत्ति, तथा अपर्याप्त अवसंरचना या अन्यायपूर्ण कराधान द्वारा समाज पर डाला गया दबाव। उनका निर्णय कठोर है: "महान धन, जो गहनतम निर्धनता से बँधा हुआ है … बर्बरता की निरंकुश पराकाष्ठा है।… सरकार को इस असमानता के विरुद्ध यथासंभव कठोर परिश्रम करना चाहिए।"

हेगेल के लिए, असमानता को कम करने के लिए दो प्रकार के हस्तक्षेप आवश्यक हैं। बाहरी रूप से, राज्य को अत्यधिक विषमताओं का प्रतिकार करने के लिए कराधान, विनियमन और सार्वजनिक संस्थाओं का उपयोग करना चाहिए। आंतरिक रूप से, व्यावसायिक वर्ग को स्वयं को संगठित करना चाहिए—गिल्डों, निगमों और संघों के माध्यम से—ताकि संघर्षों में मध्यस्थता हो और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा मिले। यह आंतरिक संगठन उसका एक प्रारंभिक पूर्वानुमान है जिसे हम अब **नागरिक समाज** कहते हैं, जहाँ आर्थिक कर्ता स्वयं का नियमन करते हैं और समुदाय के नैतिक जीवन में योगदान देते हैं।

(b) न्याय की व्यवस्था

दूसरी उप-व्यवस्था न्याय का प्रशासन है, जिसे निष्पक्ष नौकरशाहों के एक "सार्वभौमिक वर्ग" द्वारा संचालित किया जाता है। यद्यपि यह वर्ग ऐतिहासिक रूप से सैन्य वर्ग से उत्पन्न होता है, फिर भी इसका कार्य सैन्य के बजाय तर्कसंगत है। इसका कार्य अमूर्त अधिकार को बनाए रखना, कानून के समक्ष समानता बनाए रखना, और न्याय का प्रशासन इस प्रकार करना है जो नैतिक व्यवस्था के सार्वभौमिक सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करे।

(c) अनुशासन की व्यवस्था

तीसरी उप-व्यवस्था अनुशासन की व्यवस्था है, जिसमें शिक्षा, पुलिस-व्यवस्था और सैन्य प्रशिक्षण सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र नागरिकों के नैतिक निर्माण, सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव और नागरिक सद्गुण के विकास को सुनिश्चित करता है। इस क्षेत्र के माध्यम से, नैतिक सिद्धांत आंतरिक हो जाते हैं, और व्यक्तियों के व्यवहार तथा चरित्र को इस प्रकार आकार देते हैं कि समुदाय का नैतिक जीवन पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुनरुत्पादित होता रहे।

स्वतंत्र सरकार

सार्वभौमिक सरकार की विभेदित संरचनाओं से आगे, हेगेल एक अधिक विकसित रूप की ओर संकेत करते हैं जिसे वे **स्वतंत्र सरकार** कहते हैं। यद्यपि वे पांडुलिपि में इस चरण का विस्तार नहीं करते, फिर भी वे इसके तीन शास्त्रीय रूपों की पहचान करते हैं: लोकतंत्र, अभिजाततंत्र और राजतंत्र। ये रूप राजनीतिक स्वतंत्रता के उच्चतर, अधिक चिंतनशील विन्यासों का प्रतिनिधित्व करते हैं, परंतु हेगेल उनके विश्लेषण को बाद की कृतियों के लिए छोड़ देते हैं, जहाँ उनका आंतरिक तर्क और सामंजस्य अधिक स्पष्ट हो जाता है।

5.9 नैतिक जीवन की व्यवस्था का विश्लेषणात्मक सिंहावलोकन

हेगेल का *सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* किसी ऐतिहासिक कालक्रम के रूप में नहीं, बल्कि उन संरचनाओं के तार्किक प्रकटीकरण के रूप में विकसित होता है जो सामाजिक अस्तित्व को संभव बनाती हैं। फिर भी, अपने तार्किक रूप में भी, यह पाठ परिचित ऐतिहासिक प्रक्षेप-पथों को प्रतिबिंबित करता है—सामाजिक जीवन की प्राचीन एकता से, सामंती या पितृसत्तात्मक परिवेशों में व्यक्तिगत अधीनता के संबंधों से होते हुए, अंततः संवैधानिक सरकार की अधिक विभेदित संरचनाओं की ओर। हेगेल के लिए महत्त्वपूर्ण अनुभवजन्य समयरेखा नहीं, बल्कि वह तरीका है जिससे प्रत्येक चरण वैचारिक रूप से अगले चरण को उत्पन्न करता है।

कृति के केंद्र में यह विचार है कि नैतिक जीवन (ज़िटलिखकाइट) वस्तुनिष्ठ आत्मा (ऑब्जेक्टिव स्पिरिट) को अभिव्यक्त करता है: वे साझा संस्थाएँ, प्रथाएँ और मानदंड जिनके माध्यम से व्यक्ति स्वयं को एक बड़े विश्व के सदस्यों के रूप में जानने लगते हैं। हेगेल इस बात पर बल देते हैं कि आत्म-समझ का सबसे गहरा रूप—जिसे वे "बौद्धिक अंतःप्रज्ञा" कहते हैं—केवल नैतिक जीवन के भीतर ही साकार होता है। इसका अर्थ है कि साहस या

ईमानदारी जैसे सद्गुण, और तर्कसंगत निर्णय जैसी क्षमताएँ, निजी, जन्मजात गुण नहीं, बल्कि ऐसी सामाजिक उपलब्धियाँ हैं जो सामुदायिक संस्थाओं में भागीदारी के माध्यम से आकार लेती हैं।

इस पांडुलिपि का एक प्रमुख योगदान नैतिक श्रेणियों की सामाजिक उत्पत्ति का इसका विवरण है। मान्यता, सम्मान, न्याय और साहस जैसे शब्द न तो तत्त्वमीमांसीय "आत्मा के भागों" से उत्पन्न होते हैं, और न ही अमूर्त नैतिक मनोविज्ञान से। बल्कि, वे ठोस सामाजिक अंतःक्रियाओं से विकसित होते हैं: श्रम-विभाजन, संपत्ति का सृजन और विनिमय, कानून का उदय, और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का संघर्ष। उदाहरण के लिए, मान्यता एक व्यक्तिगत भावना बने रहने के बजाय कानूनी व्यक्तित्व और संपत्ति-अधिकारों के रूप में संस्थागत हो जाती है।

हेगेल बाज़ार और उसके अंतर्विरोधों का एक उल्लेखनीय रूप से प्रारंभिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करते हैं। जहाँ बाज़ार सार्वभौमिकता उत्पन्न करता है—विनिमय के माध्यम से व्यक्तियों को जोड़कर और चेतना के साझा रूप उत्पन्न करके—वहीं यह विनाशकारी असमानताएँ भी उत्पन्न करता है। अत्यधिक धन और अत्यधिक निर्धनता समाज को जोखिम में डालते हैं, और उसी नैतिक सामंजस्य को खतरे में डालते हैं जिस पर स्वतंत्रता निर्भर करती है। इसी कारण, नैतिक जीवन को उस संपत्तिहीनता और आर्थिक निर्भरता का प्रतिकार करना चाहिए जो समुदाय को अस्थिर करती है।

इस बिंदु पर नागरिक समाज महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यह निजी हित और सार्वभौमिक हित के बीच मध्यस्थता करता है, और गिल्डों, संघों तथा संगठित आर्थिक निकायों के माध्यम से कार्य करता है। यह सहभागी लोकतंत्र के आधुनिक विचारों का पूर्वानुमान करता है, यद्यपि हेगेल का संस्करण अभी भी संपत्तिहीनों को बाहर रखता है, जो उस काल की सीमाओं को प्रतिबिंबित करता है। नागरिक समाज के माध्यम से, व्यक्ति सामूहिक जीवन में भाग लेना, संघर्षों का नियमन करना और साझा कल्याण की प्राप्ति करना सीखते हैं।

पांडुलिपि यह भी स्पष्ट करती है कि प्रभुत्व के संबंध किस प्रकार विकसित होते हैं। स्वामित्व और दासता की पूर्ववर्ती द्वंद्वात्मकता एक स्वतंत्र सामाजिक चरण के रूप में बची नहीं रहती; बल्कि, उसका तर्क संस्थाओं के भीतर पुनः प्रकट होता है। नियोक्ता और कर्मचारी केवल जीवन-मृत्यु के प्रभुत्व के पूर्ववर्ती संघर्ष को दोहराते नहीं हैं। बल्कि, उस द्वंद्वात्मकता के ऐतिहासिक उत्तराधिकारी वह बन जाते हैं जिसे हेगेल "सार्वभौमिक वर्ग" कहते हैं—प्रशासक, न्यायाधीश और लोक सेवक, जो नैतिक संतुलन बनाए रखने के लिए उत्तरदायी हैं। उनके कार्य में, निर्भरता और स्वतंत्रता के बीच का पूर्ववर्ती संघर्ष कानून, शिक्षा और राजनीतिक प्राधिकार की एक तर्कसंगत व्यवस्था में आत्मसात हो जाता है।

अंत में, मान्यता स्वयं संपत्ति-अधिकारों और कानूनी व्यक्तित्व के माध्यम से स्थिर हो जाती है। जो पांडुलिपि के पूर्ववर्ती खंडों में एक नाज़ुक, अंतर्वैयक्तिक संघर्ष के रूप में आरंभ हुआ, वह कानून और नागरिक जीवन के ताने-बाने में निर्मित एक संस्थागत वास्तविकता बन जाता है। स्वामी और सेवक के बीच का प्रसिद्ध विरोध अधिक

परिपक्व नैतिक संस्थाओं के भीतर केवल एक संरचनात्मक क्षण के रूप में बना रहता है, और अब समग्र सामाजिक जीवन को परिभाषित नहीं करता।

5.10 नैतिक जीवन की व्यवस्था से परिपक्व दर्शन तक

अपनी प्रारंभिक पांडुलिपि द *सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* में, हेगेल ने यह समझने का प्रयास किया कि मनुष्य सरल सामाजिक अंतःक्रियाओं से एक सुव्यवस्थित नैतिक और राजनीतिक समुदाय तक कैसे पहुँचते हैं। यही विचार बाद में उनकी प्रमुख कृतियों में पुनः प्रकट होते हैं, परंतु अधिक परिष्कृत और व्यवस्थित ढंग से। इस विकास का अनुसरण करने के लिए, चरण-दर-चरण यह देखना सहायक होता है कि हेगेल ने आत्म, समाज और राज्य की अपनी समझ को धीरे-धीरे किस प्रकार नया रूप दिया।

हेगेल की *फ़ेनोमेनोलॉजी ऑफ़ स्पिरिट* (1807) पहली प्रमुख पुस्तक है जहाँ ये विचार अधिक स्पष्ट रूप लेते हैं। इसके सबसे प्रसिद्ध भागों में से एक "स्वामित्व और दासता" नामक खंड है। यहाँ, हेगेल यह स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि आत्म-चेतना—एक आत्म होने का हमारा बोध—अलगाव में विकसित नहीं होती। बल्कि, यह तब आकार लेती है जब एक आत्म दूसरे का सामना करता है। यह मुठभेड़ एक संघर्ष उत्पन्न करती है: प्रत्येक स्वतंत्र और योग्य के रूप में मान्यता पाना चाहता है। यद्यपि बाद के विचारकों, जैसे दार्शनिक अलेक्ज़ांद्र कोजेव, ने इसे सामाजिक संघर्ष के एक बड़े सिद्धांत में बदल दिया, हेगेल ने मूल रूप से इसका उपयोग यह दिखाने के लिए किया था कि व्यक्ति दूसरों के साथ संबंधों के माध्यम से अपनी सीमाओं, आवश्यकताओं और क्षमताओं के बारे में कैसे सीखते हैं। मान्यता, भय, निर्भरता और श्रम, सभी आत्म की इस शिक्षा के अंग हैं।

कई वर्षों बाद, *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ द फ़िलॉसॉफ़िकल साइंसेज़* (1817 से आरंभ) में, हेगेल उसी यात्रा का एक कहीं अधिक संक्षिप्त और संरचित संस्करण प्रस्तुत करते हैं। वे स्वामित्व और दासता की चर्चा को "आत्मनिष्ठ आत्मा (सब्जेक्टिव स्पिरिट)" के खंड में रखते हैं, जो इस बात से संबंधित है कि मानव मन किस प्रकार विकसित होता है। वे एक सरल क्रम रेखांकित करते हैं: पहले, मनुष्य इच्छा से कार्य करते हैं; फिर वे मान्यता के संबंधों में प्रवेश करते हैं (जो स्वामी–दास संघर्ष में दिखाई देता है); और अंततः, वे उस चरण तक पहुँचते हैं जिसे हेगेल "सार्वभौमिक आत्म-चेतना" कहते हैं, जहाँ व्यक्ति दूसरों के साथ शांतिपूर्ण, पारस्परिक मान्यता के माध्यम से स्वयं को समझता है। दूसरे शब्दों में, हम पहले इसलिए कार्य करते हैं क्योंकि हम चीज़ें चाहते हैं, फिर हम संघर्ष के माध्यम से सीखते हैं, और अंततः हम यह अनुभव करते हैं कि स्वतंत्रता तब सबसे अच्छी तरह कार्य करती है जब हम स्वयं को किसी दूसरे आत्म में सकारात्मक रूप से प्रतिबिंबित देखते हैं। यह अंतिम अंतर्दृष्टि नैतिक और राजनीतिक जीवन के लिए आधार तैयार करती है क्योंकि यह सिखाती है कि व्यक्ति और समुदाय शत्रु नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

इन विचारों का हेगेल का सबसे पूर्ण विवेचन *फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट* (1821) में प्रकट होता है। यहाँ वे व्यक्तिगत मनोविज्ञान से समाज, कानून और राज्य की संरचनाओं की ओर बढ़ते हैं। वे सामाजिक जीवन के इस विश्व—जिसे वे "वस्तुनिष्ठ आत्मा" कहते हैं—को तीन स्तरों में विभाजित करते हैं: अमूर्त अधिकार, नैतिकता (मोरैलिटी) और नैतिक जीवन। पहला स्तर, अमूर्त अधिकार, स्वतंत्रता के सबसे मूलभूत विचार से संबंधित है: कि व्यक्ति के पास कोई बाहरी क्षेत्र होना चाहिए जिसमें उसकी इच्छा वास्तविक बन सके। यही कारण है कि हेगेल तर्क देते हैं कि संपत्ति आवश्यक है। किसी वस्तु का स्वामी होना केवल आवश्यकताओं की पूर्ति के बारे में नहीं है। उनके लिए, यह वह तरीका है जिससे व्यक्ति दिखाता है कि वह एक तर्कसंगत प्राणी के रूप में विद्यमान है जो विश्व में कार्य कर सकता है।

दूसरा स्तर, नैतिकता, ध्यान को भीतर की ओर मोड़ता है। यहाँ हेगेल अभिप्राय, अंतरात्मा और व्यक्ति के उत्तरदायित्व-बोध की चर्चा करते हैं। इस चरण में, लोग सोचते हैं कि उनके कार्य सही हैं या गलत, और वे सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांतों के आधार पर स्वयं का मूल्यांकन करते हैं। परंतु यह चरण अभी भी व्यक्तिगत निर्णय लेने वाले पृथक व्यक्तियों पर बहुत अधिक केंद्रित रहता है।

अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर नैतिक जीवन (ज़िटलिखकाइट) है। यह वह स्थान है जहाँ व्यक्ति का आंतरिक नैतिक बोध और समाज के बाहरी कानून एक समुदाय की जीवंत संस्थाओं में एक साथ आते हैं। हेगेल नैतिक जीवन के तीन भागों का वर्णन करते हैं: परिवार, नागरिक समाज और राज्य। परिवार प्रेम और विश्वास का क्षेत्र है जहाँ व्यक्ति पहली बार स्वाभाविक रूप से दूसरों की देखभाल करना सीखते हैं। नागरिक समाज अधिक जटिल है। इसमें अर्थव्यवस्था, कानूनी व्यवस्था और विभिन्न संगठन सम्मिलित हैं जो व्यक्तियों को व्यापक सामाजिक आवश्यकताओं से जुड़ने में सहायता करते हैं। हेगेल के लिए, राज्य केवल सरकार नहीं है। यह नैतिक जीवन का सर्वोच्च रूप है, जहाँ स्वतंत्रता उन कानूनों और संस्थाओं के माध्यम से वास्तविक बनती है जो व्यक्तिगत हितों का पूरे समुदाय के हित के साथ संतुलन स्थापित करते हैं।

जब हम इन सबको एक साथ रखते हैं, तो हम देख सकते हैं कि हेगेल का चिंतन समय के साथ किस प्रकार परिपक्व होता है। मान्यता, निर्भरता और सामाजिक निर्माण के प्रारंभिक विचार इस बात के एक विस्तृत चित्र में विकसित होते हैं कि मनुष्य केवल एक संगठित समुदाय के भीतर ही स्वतंत्र बनते हैं। जो दो व्यक्तियों के बीच संघर्ष के रूप में आरंभ होता है, वह अंततः पारिवारिक जीवन, आर्थिक संबंधों, कानून और आधुनिक राज्य के एक पूर्ण विवरण में प्रकट होता है। यह प्रगति—प्रारंभिक चिंतनों से एक पूर्ण दार्शनिक व्यवस्था तक—हेगेल के इस विश्वास को दर्शाती है कि स्वतंत्रता कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो हमारे पास अकेले होती है, बल्कि ऐसी चीज़ है जिसका निर्माण हम साझा संस्थाओं और नैतिक प्रथाओं के माध्यम से मिलकर करते हैं।

5.11 हेगेल की राजनीतिक संरचना

हेगेल के लिए, एक आधुनिक राजनीतिक समुदाय केवल समाज के ऊपर बैठी एक सरकार नहीं है। बल्कि, इसकी एक अत्यंत **सावधानीपूर्वक स्तरित संरचना** है, जहाँ प्रत्येक स्तर अगले स्तर का समर्थन करता है। इस संरचना के केंद्र में वह है जिसे वे **नैतिक जीवन** कहते हैं—यह विचार कि लोग वास्तव में तभी स्वतंत्र बनते हैं जब वे उन संस्थाओं में भाग लेते हैं जो उनके समाज के साझा मूल्यों को अभिव्यक्त करती हैं।

राज्य के नीचे पहली प्रमुख परत **नागरिक समाज** है। यह दैनिक जीवन का विश्व है— काम, बाज़ार, व्यावसायिक संघ, गिल्ड, स्थानीय समुदाय, और वे सभी संगठन जो लोगों को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करते हैं। नागरिक समाज इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह लोगों को पृथक व्यक्ति बनने से रोकता है। यह ऐसे क्षेत्र बनाता है जहाँ हितों का प्रतिनिधित्व किया जा सकता है, संघर्षों का प्रबंधन किया जा सकता है, और सदस्य स्वयं से बड़ी किसी चीज़ में भाग ले सकते हैं। हेगेल के लिए, नागरिक समाज अराजक नहीं है। यह **संगठित मध्यस्थता** का एक रूप है, अर्थात् यह व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों को व्यापक हित से जोड़ने में सहायता करता है।

इसी संगठित विश्व से **"सार्वभौमिक वर्ग"** उभरता है। ये कुलीन या पूँजीपति नहीं, बल्कि **प्रशासक** हैं, ऐसे लोग जो लोक सेवा में कार्य करते हैं—न्यायाधीश, सिविल सेवक और अन्य निष्पक्ष अधिकारी। हेगेल का मानना है कि वे एक अनूठी स्थिति रखते हैं: वे नागरिक समाज के संघों के व्यापक जाल के प्रति उत्तरदायी हैं, और साथ ही वे राजा तथा कार्यपालिका के उच्चतर राजनीतिक प्राधिकार के प्रति जवाबदेह हैं। चूँकि उन्हें सार्वभौमिक संदर्भ में सोचने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, इसलिए वे यह सुनिश्चित करने में सहायता करते हैं कि राज्य के कानून और नीतियाँ निष्पक्ष और तर्कसंगत बनी रहें।

हेगेल पूरी व्यवस्था की कल्पना एक **संवैधानिक राजतंत्र** के भीतर संचालित होते हुए करते हैं। इसका अर्थ कोई निरंकुश शासक नहीं है। बल्कि, राजा एक प्रतीकात्मक व्यक्तित्व है जो राष्ट्र की एकता और निरंतरता को अभिव्यक्त करता है। हेगेल अपेक्षा करते हैं कि राजा भूस्वामी वर्ग से आए—इसलिए नहीं कि यह वर्ग "बेहतर" है, बल्कि इसलिए कि वे व्यवसाय के दैनिक दबावों में कम संलग्न होते हैं और इसलिए निष्पक्ष रूप से कार्य करने में अधिक सक्षम होते हैं।

विधि-निर्माण के लिए, हेगेल एक ऐसी विधायिका को प्राथमिकता देते हैं जो आधुनिक चुनावों के माध्यम से नहीं, बल्कि **नागरिक समाज के संगठित समूहों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों** के माध्यम से बनी हो। उनका मानना है कि व्यावसायिक संघ, गिल्ड, आर्थिक समूह और अन्य संगठित निकाय अपने सदस्यों के हितों को अनाम जन-मतदान की तुलना में बेहतर समझते हैं। इसलिए विधायिका एक ऐसा सदन बन जाती है जहाँ समाज के विभिन्न भाग अपने संरचित प्रतिनिधियों के माध्यम से बोलते हैं।

राजा की मुख्य राजनीतिक भूमिका सीमित परंतु महत्त्वपूर्ण है: **विदेश नीति और युद्ध की घोषणा**। हेगेल तर्क देते हैं कि इन क्षणों में एक ऐसी एकल प्रतीकात्मक आवाज़ की आवश्यकता होती है जो राष्ट्र की एकता का प्रतिनिधित्व

करे। तथापि, दैनिक घरेलू मामलों में राजा के पास बहुत कम प्रत्यक्ष शक्ति होती है। अधिकांश निर्णय प्रशासन और विधायिका द्वारा लिए जाते हैं।

अंत में, हेगेल का मानना है कि प्रत्येक नागरिक को इस समग्र संरचना में **स्वयं को देख** पाने में सक्षम होना चाहिए। नागरिक समाज में अपनी भागीदारी के माध्यम से, संगठित प्रतिनिधियों द्वारा बनाए गए कानूनों के प्रति सम्मान के माध्यम से, और राजा द्वारा अभिव्यक्त प्रतीकात्मक एकता के माध्यम से, लोगों को यह अनुभव होना चाहिए कि राज्य कोई बाहरी प्राधिकार नहीं, बल्कि उनके अपने साझा जीवन का राजनीतिक रूप है। इस प्रकार, राज्य वह क्षेत्र बन जाता है जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक एकता अंततः एक साथ आती हैं।

5.12 हेगेल का नैतिक जीवन, अंतरराष्ट्रीय मान्यता और मार्क्स की ओर मार्ग

हेगेल स्पष्ट करते हैं कि नैतिक जीवन—वह संगठित, तर्कसंगत संरचना जिसके माध्यम से लोग एक समुदाय के रूप में साथ रहते हैं—केवल एक राज्य के **भीतर** ही विद्यमान होता है, क्योंकि केवल राज्य ही साझा कानून, संस्थाएँ और एक नैतिक ढाँचा प्रदान करता है जिसे व्यक्ति अपना मान सकते हैं। एक बार हम राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर जाते हैं, तो यह नैतिक संरचना विघटित हो जाती है, और राज्य एक "प्राकृतिक अवस्था" में एक-दूसरे का सामना करते हैं, जहाँ शांति बनाए रखने या सार्वभौमिक कानूनों को लागू करने के लिए कोई उच्चतर प्राधिकार विद्यमान नहीं होता। इसी कारण, राष्ट्र प्रायः कूटनीति, संघर्ष या यहाँ तक कि युद्ध के माध्यम से एक-दूसरे से **मान्यता** चाहते हैं; जब कोई जनसमूह स्वयं को उपेक्षित या हीन माने जाने का अनुभव करता है, तो वह बल या औपनिवेशिक विस्तार के माध्यम से स्वयं को स्थापित कर सकता है, और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता के उसी संघर्ष को दोहरा सकता है जो व्यक्तियों के बीच संबंधों को आकार देता है। इस पृष्ठभूमि में, हेगेल नैतिक जीवन के कई केंद्रीय विषयों की पहचान करते हैं: श्रम वह पहली गतिविधि है जिसके माध्यम से मनुष्य प्रकृति को आकार देते हैं और अपनी क्षमताओं को रूप प्रदान करते हैं; संपत्ति व्यक्तियों को अपनी स्वतंत्रता और पहचान को अभिव्यक्त करने का एक स्थिर तरीका देती है; मान्यता तभी वास्तविक बनती है जब उसे कानून और संस्थाओं का समर्थन प्राप्त हो; और परिवार, नागरिक समाज तथा राज्य मिलकर वह नैतिक विश्व बनाते हैं जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सामान्य हित के साथ जोड़ता है। विभिन्न सामाजिक समूह विभिन्न सद्गुणों को अभिव्यक्त करते हैं—सेना में साहस, वाणिज्यिक क्षेत्र में ईमानदारी, कृषि-जगत में विश्वास—और सरकार सरल पारंपरिक शासन से एक तर्कसंगत, संवैधानिक व्यवस्था तक विकसित होती है जो व्यक्तिगत और सार्वजनिक हितों में संतुलन स्थापित करती है। हेगेल के लिए, आधुनिक राज्य स्वतंत्रता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है, इसलिए नहीं कि वह व्यक्तियों को नियंत्रित करता है, बल्कि इसलिए कि वह उन्हें सार्वजनिक कानूनों और संस्थाओं में अपनी स्वयं की तर्कसंगत इच्छा को पहचानने देता है। उनका *सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* इस विकास को एक तार्किक प्रगति के रूप में दिखाता है: श्रम संपत्ति की ओर ले जाता है, संपत्ति मान्यता की ओर, मान्यता कानून की ओर, कानून नागरिक समाज की ओर, नागरिक समाज सरकार की ओर, और अंततः सरकार पूर्ण विकसित राज्य की ओर। यही संरचना फिर कार्ल मार्क्स के लिए नींव बन जाती है, जो चरणों

और संघर्ष के माध्यम से विकास के विचार को स्वीकार करते हैं, परंतु उसकी भौतिक संदर्भ में पुनर्व्याख्या करते हैं। जहाँ हेगेल श्रम को स्वतंत्रता को साकार करने वाली एक आध्यात्मिक गतिविधि के रूप में देखते हैं, वहीं मार्क्स उसे स्वामित्व, शोषण और वर्ग-संरचनाओं द्वारा आकार दी गई एक भौतिक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। और जहाँ हेगेल का मानना है कि स्वतंत्रता नैतिक संस्थाओं में वास्तविक बनती है, वहीं मार्क्स तर्क देते हैं कि वास्तविक स्वतंत्रता के लिए उन आर्थिक परिस्थितियों को रूपांतरित करना आवश्यक है जो लोगों के जीवन को आकार देती हैं। इस प्रकार, मार्क्स हेगेल की द्वंद्वात्मक गति को बनाए रखते हैं परंतु उसे **उत्पादन, आर्थिक शक्ति और वर्ग-संघर्ष** पर आधारित करते हैं, जो हेगेल के आध्यात्मिक दर्शन से समाज के भौतिकवादी विश्लेषण की ओर एक निर्णायक बदलाव को चिह्नित करता है।

5.13 सारांश

हेगेल का *सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* इस बात का पहला व्यापक विवरण प्रस्तुत करता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल सामाजिक संबंधों के एक जाल के भीतर ही वास्तविक बनती है। पृथक व्यक्तिवाद और अमूर्त नैतिकतावाद, दोनों को अस्वीकार करते हुए, हेगेल दिखाते हैं कि स्वतंत्रता **श्रम, संपत्ति, मान्यता, कानून और नैतिक जीवन की संस्थाओं** के माध्यम से विकसित होती है।

प्रारंभिक संरचना (1802–03):

- मानवीय गतिविधि (व्यवहार) **प्राकृतिक नैतिक जीवन** से आरंभ होती है, जहाँ आवश्यकता और श्रम व्यक्तियों को विश्व से जोड़ते हैं।
- **श्रम-विभाजन** और **संपत्ति** के माध्यम से, व्यक्ति एक सार्वभौमिक सामाजिक व्यवस्था के सदस्यों के रूप में मान्यता प्राप्त करते हैं।
- **मुद्रा और विनिमय** का उदय मान्यता को सार्वभौमिक बनाता है, परंतु असमानता भी लाता है, जिससे आर्थिक असंतुलन के उत्पाद के रूप में **स्वामित्व और दासता** की परिस्थितियाँ बनती हैं।
- प्राकृतिक व्यवस्था का पतन **स्वतंत्रता के नकारात्मक पक्ष** की ओर ले जाता है—विनाश, प्रतिशोध और आद्य-न्याय के रूप में सम्मान के जन्म का एक चरण।
- अव्यवस्था से **सरकार** उभरती है, पहले **निरपेक्ष शासन** के रूप में, फिर अपनी तीन व्यवस्थाओं—आवश्यकताएँ (अर्थव्यवस्था), न्याय और अनुशासन—के साथ **सार्वभौमिक सरकार** के रूप में, और अंततः **स्वतंत्र सरकार** (राजतंत्र, अभिजाततंत्र, लोकतंत्र) की ओर।

आध्यात्मिक समग्रता के रूप में नैतिक जीवन:

सद्गुण व्यापक सामाजिक वर्गों से उत्पन्न होते हैं:

- सैन्य वर्ग में **साहस**,
- व्यावसायिक वर्ग में **ईमानदारी**,
- कृषक वर्ग में **विश्वास**।

ये सद्गुण इस बात को मूर्त रूप देते हैं कि नैतिक जीवन व्यक्तिगत चरित्र को सामुदायिक कार्य के साथ किस प्रकार एकीकृत करता है। हेगेल इस बात पर बल देते हैं कि नैतिक जीवन **बुद्धि और सामाजिक व्यवस्था की एकता** है, जहाँ "आत्मा की आँखें और शरीर की आँखें" एक साथ मेल खाती हैं।

परिपक्व रूप (1821):

फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट में, हेगेल नैतिक जीवन को **वस्तुनिष्ठ आत्मा** के भीतर व्यवस्थित करते हैं, जो इनके माध्यम से प्रकट होती है:

1. **अमूर्त अधिकार** – संपत्ति और अनुबंध: बाहरी रूप में व्यक्त स्वतंत्रता।
2. **नैतिकता** – अंतरात्मा और अभिप्राय: आंतरिक चिंतन।
3. **नैतिक जीवन (ज़िटलिखकाइट)** – दोनों का संश्लेषण, जो इनके माध्यम से साकार होता है:
    - **परिवार:** प्रेम और स्वाभाविक विश्वास की एकता।
    - **नागरिक समाज:** आवश्यकताओं, काम, कानून और स्वैच्छिक संघों का क्षेत्र जो निजी और सार्वजनिक हितों के बीच मध्यस्थता करता है।
    - **राज्य:** तर्कसंगत स्वतंत्रता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति, जो संवैधानिक संरचनाओं के माध्यम से वैयक्तिकता का सार्वभौमिकता के साथ सामंजस्य स्थापित करता है।

राजनीतिक संरचना:

- हेगेल प्रशासकों के एक **सार्वभौमिक वर्ग** पर टिके **संवैधानिक राजतंत्र** की कल्पना करते हैं, जो नागरिक समाज और राज्य के बीच मध्यस्थता करता है।
- **राजा** एकता का एक प्रतीकात्मक व्यक्तित्व है, जबकि संगठित सामाजिक समूहों के प्रतिनिधि **विधायिका** का निर्माण करते हैं।

- नागरिक राज्य की संस्थाओं में अपनी स्वयं की तर्कसंगत इच्छा को पहचानते हैं—स्वतंत्रता भागीदारी के रूप में, अलगाव के रूप में नहीं।

अंतरराष्ट्रीय आयाम और मार्क्स की ओर संक्रमण:

राज्य से परे, राष्ट्र एक **प्राकृतिक अवस्था** में बने रहते हैं, और कूटनीति या युद्ध के माध्यम से मान्यता चाहते हैं। इस प्रकार नैतिक जीवन राज्य की सीमा पर समाप्त हो जाता है।

मार्क्स का रूपांतरण:

मार्क्स हेगेल की द्वंद्वात्मक संरचना—श्रम ⟶ संपत्ति ⟶ मान्यता ⟶ कानून ⟶ नागरिक समाज ⟶ राज्य—को अपनाते हैं, परंतु उसकी भौतिक रूप से पुनर्व्याख्या करते हैं। मार्क्स के लिए, स्वतंत्रता मौजूदा आर्थिक संरचनाओं के भीतर पूर्णतः साकार नहीं हो सकती; नैतिक व्यवस्था को उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तनों पर आधारित होना चाहिए। हेगेल का आध्यात्मिक सामंजस्य, मार्क्स में, एक क्रांतिकारी रूपांतरण बन जाता है।

5.14 शब्दावली

ज़िटलिखकाइट (नैतिक जीवन)

नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं की वह एकीकृत व्यवस्था जिसके माध्यम से व्यक्ति स्वतंत्रता को साकार करते हैं।

आनरकेनुंग (मान्यता)

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति पारस्परिक स्वीकृति और कानूनी अधिकारों के माध्यम से आत्म-चेतना और सामाजिक स्थिति प्राप्त करते हैं।

फ़रमित्लुंग (मध्यस्थता)

विरोधी तत्त्वों को जोड़ने की गतिविधि—विशेष रूप से यह कि व्यक्तिगत और सार्वभौमिक हितों का संस्थाओं के माध्यम से किस प्रकार सामंजस्य स्थापित होता है।

वस्तुनिष्ठ आत्मा हेगेल का वह शब्द जो उस क्षेत्र के लिए है जहाँ मन या आत्मा कानून, नैतिकता और सामाजिक संस्थाओं में मूर्त रूप लेती है।

अमूर्त अधिकार वस्तुनिष्ठ आत्मा का सबसे मूलभूत रूप, जहाँ स्वतंत्रता संपत्ति और अनुबंध के रूप में प्रकट होती है।

नागरिक समाज परिवार और राज्य के बीच का मध्यवर्ती क्षेत्र, जिसमें अर्थव्यवस्था, कानून और स्वैच्छिक संघ सम्मिलित हैं जो निजी और सार्वजनिक जीवन के बीच मध्यस्थता करते हैं।

सार्वभौमिक वर्ग निष्पक्ष प्रशासकों और लोक सेवकों का वह वर्ग जो निजी हित के बजाय सामान्य हित के प्रति समर्पित है।

नकारात्मक स्वतंत्रता प्रतिबंध के अभाव के रूप में समझी गई स्वतंत्रता, जो तर्कसंगत नैतिक जीवन में रूपांतरित होने तक अव्यवस्था की ओर ले जाती है।

स्वामित्व और दासता

असमानता से उत्पन्न प्रभुत्व और निर्भरता का एक संबंध, जिसकी बाद में आत्म-चेतना के एक चरण के रूप में पुनर्व्याख्या की गई।

संवैधानिक राजतंत्र आधुनिक सरकार का वह तर्कसंगत रूप जहाँ राजतंत्र, अभिजाततंत्र और लोकतंत्र कानून में सामंजस्य प्राप्त करते हैं।

नैतिक सद्गुण सामाजिक वर्गों से जुड़े गुण—साहस (सैन्य), ईमानदारी (वाणिज्यिक) और विश्वास (कृषि)।

5.15 अभ्यास प्रश्न

A. लघु उत्तरीय / बोध

1. "नैतिक जीवन" से हेगेल का क्या अभिप्राय है?
2. हेगेल **प्राकृतिक नैतिक जीवन** और **वास्तविक नैतिक जीवन** के बीच किस प्रकार भेद करते हैं?
3. हेगेल के सामाजिक विकास के सिद्धांत में **मान्यता** की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
4. **स्वामित्व और दासता** का संबंध बाज़ार से किस प्रकार उत्पन्न होता है?
5. *द सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* में रेखांकित सरकार के तीन स्तर कौन-से हैं?
6. हेगेल "नकारात्मक स्वतंत्रता" को विनाशकारी क्यों बताते हैं?
7. साहस, ईमानदारी और विश्वास के सद्गुण नैतिक जीवन की एकता को किस प्रकार प्रतिबिंबित करते हैं?
8. हेगेल की **सार्वभौमिक सरकार** की अवधारणा के भीतर तीन उप-व्यवस्थाओं की पहचान कीजिए और उनका वर्णन कीजिए।

B. विश्लेषणात्मक / निबंधात्मक

1. चर्चा कीजिए कि हेगेल की तार्किक पद्धति सामाजिक विकास की ऐतिहासिक या मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं से किस प्रकार भिन्न है।

2. वाणिज्यिक वर्ग की हेगेल की आलोचना और उनके इस दावे का आकलन कीजिए कि उसमें "सद्गुण या साहस" का अभाव है।

3. स्पष्ट कीजिए कि *द सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* किस प्रकार *फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट* की संरचना (परिवार, नागरिक समाज, राज्य) का पूर्वानुमान करता है।

4. हेगेल के इस दृष्टिकोण का मूल्यांकन कीजिए कि नागरिक समाज सार्वभौमिकता का स्रोत और नैतिक एकता के लिए खतरा, दोनों है।

5. हेगेल की राज्य की अवधारणा की तुलना आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाओं से कीजिए—कौन-सी समानताएँ और तनाव विद्यमान हैं?

6. परखिए कि हेगेल की **सार्वभौमिक वर्ग** की अवधारणा निष्पक्ष शासन सुनिश्चित करने का प्रयास किस प्रकार करती है।

7. मार्क्स किन तरीकों से हेगेल की श्रम और मान्यता की द्वंद्वात्मकता को अपनाते हैं, और वे उसके अर्थ को किस प्रकार उलट देते हैं?

8. "स्वतंत्रता प्रतिबंध का अभाव नहीं, बल्कि तर्कसंगत संस्थाओं में भागीदारी है।" स्वतंत्रता पर समकालीन वाद-विवादों के प्रकाश में इस हेगेलवादी विचार की चर्चा कीजिए

5.16 अतिरिक्त पठन सामग्री

- हेगेल, *द फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट* (1821) – विशेष रूप से भाग III: "एथिकल लाइफ़।"
- हेगेल, *द सिस्टम ऑफ़ एथिकल लाइफ़* (1802–03), अनु. हैरिस और नॉक्स।
- अलेक्ज़ांद्र कोजेव, *इंट्रोडक्शन टू द रीडिंग ऑफ़ हेगेल*।
- चार्ल्स टेलर, *हेगेल एंड मॉडर्न सोसाइटी*।
- टेरी पिंकार्ड, *हेगेल्स फ़ेनोमेनोलॉजी: द सोशियलिटी ऑफ़ रीज़न*।
- कार्ल मार्क्स, *इकोनॉमिक एंड फ़िलॉसॉफ़िक मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ़ 1844* (तुलना के लिए)।

अध्याय 6

कार्ल मार्क्स — ऐतिहासिक भौतिकवाद और मूल्य की अवधारणा

6.1 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद, शिक्षार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. हेगेलवादी आदर्शवाद की मार्क्स की आलोचना और द्वंद्वात्मक पद्धति के **ऐतिहासिक भौतिकवाद** में उनके रूपांतरण की व्याख्या करना।
2. **उत्पादन-प्रणाली (मोड ऑफ़ प्रोडक्शन)** का **उत्पादक शक्तियों** और **उत्पादन-संबंधों** की गतिशील एकता के रूप में वर्णन करना।
3. **अधोसंरचना** (आर्थिक आधार) और **अधिरचना** (राजनीतिक, कानूनी और वैचारिक रूप) के बीच भेद का विश्लेषण करना।
4. मानवता के सार और सामाजिक जीवन की नींव के रूप में **श्रम** की मार्क्स की अवधारणा का मूल्यांकन करना।
5. **मूल्य के श्रम सिद्धांत** और *कैपिटल* में **मूल्य-रूप सिद्धांत** के रूप में उसकी पुनर्व्याख्या को समझना।
6. **मूल्य सिद्धांत** पर चल रहे वाद-विवादों की चर्चा करना, जिसमें **डेविड हार्वे** और **माइकल रॉबर्ट्स** के बीच समकालीन संवाद सम्मिलित है।
7. **सामाजिक परिवर्तन**, **वर्ग-संघर्ष** और **क्रांति** की व्याख्या में मार्क्स द्वारा द्वंद्ववाद के उपयोग की पहचान करना।
8. आधुनिक पूँजीवाद और उत्तर-औद्योगिक समाज के लिए मार्क्स के सिद्धांत की **सीमाओं**, **पुनर्व्याख्याओं** और **प्रासंगिकता** का आलोचनात्मक आकलन करना।

6.2 प्रस्तावना

अध्याय 5 में, हमने रेखांकित किया कि हेगेल ने मानवीय स्वतंत्रता की कल्पना तर्कसंगत संस्थाओं के भीतर नैतिक जीवन की प्राप्ति के रूप में किस प्रकार की। हेगेल के लिए, नागरिक समाज के अंतर्विरोधों का सामंजस्य आधुनिक संवैधानिक राज्य में होता था, जहाँ व्यक्तिगत और सार्वभौमिक इच्छा कानून के माध्यम से एक हो जाती है।

कार्ल मार्क्स इतिहास की इस द्वंद्वात्मक दृष्टि को विरासत में पाते हैं परंतु उसकी दिशा को उलट देते हैं। उनके हाथों में, **द्वंद्वात्मकता "अपने पैरों पर खड़ी"** हो गई—स्वतंत्रता और तर्क अब राज्य में प्रकट होने वाले आध्यात्मिक आदर्श नहीं, बल्कि श्रम, उत्पादन और वर्ग में निहित भौतिक प्रक्रियाएँ हैं।

मार्क्स का तर्क है कि चेतना, कानून और नैतिकता की संरचनाएँ आत्मा (स्पिरिट) के आत्म-विकास से नहीं, बल्कि **सामाजिक उत्पादन की ऐतिहासिक परिस्थितियों** से उत्पन्न होती हैं। जिस तरीके से लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम करते हैं—वे अपने भौतिक उत्पादों को किस प्रकार संगठित, वितरित और विनिमय करते हैं—वह मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आकार देता है।

विचार से *पदार्थ* की ओर, *आत्मा* से *श्रम* की ओर यह बदलाव **ऐतिहासिक भौतिकवाद** के जन्म को चिह्नित करता है, जो सामाजिक चिंतन के सबसे प्रभावशाली ढाँचों में से एक है। इसके माध्यम से, मार्क्स स्पष्ट करते हैं कि अर्थव्यवस्था में रूपांतरण किस प्रकार नए सामाजिक संबंधों, विचारधाराओं और राजनीतिक संस्थाओं को जन्म देते हैं।

मार्क्स की दूसरी निर्णायक अवधारणा **मूल्य** है—वह सामाजिक रूप जिसके माध्यम से पूँजीवाद में श्रम मापने योग्य, विनिमय-योग्य और शोषण-योग्य बन जाता है। राजनीतिक अर्थव्यवस्था की उनकी आलोचना यह उजागर करती है कि पूँजीवादी उत्पादन मानवीय श्रम को किस प्रकार एक माल (कमोडिटी) में बदल देता है, और किस प्रकार अधिशेष मूल्य—श्रमिक जो सृजित करते हैं और जो उन्हें प्राप्त होता है, उनके बीच का अंतर—संचय और संकट का इंजन बन जाता है।

इसलिए यह अध्याय चार चरणों में प्रकट होता है:

1. **हेगेल से मार्क्स तक:** आदर्शवाद का भौतिकवाद में उलटाव।
2. **ऐतिहासिक भौतिकवाद:** उत्पादन-प्रणालियों और ऐतिहासिक परिवर्तन का तर्क।
3. **मूल्य की अवधारणा:** श्रम, मुद्रा और पूँजीवादी उत्पादन।
4. **मूल्य पर समकालीन वाद-विवाद:** डेविड हार्वे की पुनर्व्याख्या और मार्क्स की विरासत पर जारी विवाद।

6.3 हेगेल की द्वंद्वात्मकता से मार्क्स के भौतिकवाद तक

मार्क्स ने अपनी बौद्धिक यात्रा "युवा हेगेलवादियों" के मंडल के भीतर आरंभ की, एक ऐसा समूह जो हेगेल के इस विश्वास से गहराई से प्रभावित था कि इतिहास का एक आंतरिक तर्क होता है और वह अधिक स्वतंत्रता की ओर बढ़ता है। परंतु मार्क्स को धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगा कि हेगेल ने विचारों की शक्ति पर बहुत अधिक और दैनिक जीवन की ठोस वास्तविकताओं पर बहुत कम बल दिया।

हेगेल ने तर्क दिया था कि इतिहास विचारों के विकास के माध्यम से प्रकट होता है—जिसे उन्होंने आत्मा की गति कहा। उनके लिए, परिवार, नागरिक समाज और राज्य जैसी संस्थाएँ तर्क के इसी प्रकटीकरण को अभिव्यक्त करती हैं। मार्क्स ने गति और परिवर्तन के हेगेल के बोध की प्रशंसा की, परंतु उनका मानना था कि इस व्याख्या को सही दिशा में पलटने की आवश्यकता है। मार्क्स के अनुसार, विचार विश्व का निर्माण नहीं करते; बल्कि, जिस विश्व में लोग रहते हैं, वह उनके द्वारा बनाए जाने वाले विचारों को आकार देता है।

यह बदलाव उनके इस सुप्रसिद्ध कथन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है:

"मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है।"

सरल शब्दों में, दैनिक जीवन में लोग जिस प्रकार काम करते हैं, उत्पादन करते हैं, जीवित रहते हैं और एक-दूसरे से संबंध रखते हैं, उसका उनके विचारों पर अमूर्त दर्शन की तुलना में अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है। मार्क्स हेगेल के उपकरण—द्वंद्वात्मकता—को लेते हैं और उसे वास्तविक ऐतिहासिक परिस्थितियों में स्थापित करते हैं। अंतर्विरोध अब विचारों के बीच के संघर्ष नहीं, बल्कि आर्थिक जीवन के भीतर के तनाव हैं: श्रमिकों और स्वामियों के बीच टकराव, किसी वस्तु का जिस काम के लिए उपयोग होता है और जिस मूल्य पर वह बेची जाती है उनके बीच का अंतर, विकसित होती प्रौद्योगिकियों और पुरानी सामाजिक संरचनाओं के बीच का संघर्ष।

हेगेल की "नैतिक जीवन" की दृष्टि, जहाँ सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से सामंजस्य प्राप्त होता है, मार्क्स में इस बात का चित्र बन जाती है कि समाज वास्तव में स्वयं का उत्पादन और पुनरुत्पादन किस प्रकार करता है। अर्थव्यवस्था केंद्र में स्थित है, जो कानून, राजनीति और संस्कृति को आकार देती है। ऐतिहासिक परिवर्तन दार्शनिक अंतर्दृष्टि का विकास नहीं, बल्कि उस तरीके का रूपांतरण है जिससे लोग श्रम करते हैं, धन का सृजन करते हैं और अलगाव का अनुभव करते हैं।

इस दृष्टिकोण से, मार्क्स हेगेल को पूरी तरह अस्वीकार नहीं कर रहे—वे प्रकाश की दिशा मोड़ रहे हैं। इतिहास का नाटक शुद्ध चिंतन के क्षेत्र में नहीं, बल्कि काम, संघर्ष और सामाजिक व्यवस्थाओं के दैनिक विश्व में प्रकट होता है। और मार्क्स के लिए, प्रगति इस बात से मापी जाती है कि ये भौतिक परिस्थितियाँ असमानता को कम करने और मानवीय स्वतंत्रता को पुनर्स्थापित करने के लिए किस प्रकार विकसित होती हैं।

6.4 ऐतिहासिक भौतिकवाद: सामाजिक विकास का विज्ञान

(a) मूल प्रस्थापना

मार्क्स एक सरल परंतु सशक्त विचार से आरंभ करते हैं: किसी भी समाज को समझने के लिए, हमें यह देखना होगा कि लोग जीने के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन किस प्रकार करते हैं। प्रत्येक ऐतिहासिक काल अपनी **उत्पादन-प्रणाली** द्वारा आकार लेता है, जो दो तत्त्वों को एक साथ लाती है:

- **उत्पादक शक्तियाँ**: औज़ार, मशीनें, कौशल, ज्ञान और मानवीय श्रम-शक्ति।
- **उत्पादन-संबंध**: स्वामित्व, नियंत्रण और सहयोग के वे प्रतिरूप जिनके माध्यम से लोग काम को संगठित करते हैं।

जब नए औज़ार, प्रौद्योगिकियाँ या उत्पादक कौशल उभरते हैं, तो वे अंततः पुरानी स्वामित्व-संरचनाओं के साथ सहजता से मेल नहीं खाते। तनाव बढ़ते हैं। मार्क्स के अनुसार, ये आंतरिक दबाव सामाजिक संघर्षों, सुधारों और कभी-कभी क्रांतियों को जन्म देते हैं। इस प्रकार, इतिहास स्वयं समाज के भीतर के अंतर्विरोधों के माध्यम से आगे बढ़ता है—महान व्यक्तियों के विचारों के माध्यम से नहीं, बल्कि लोग किस प्रकार उत्पादन करते हैं और समाज उस उत्पादन को किस प्रकार संगठित करता है, इनके बीच टकराव के माध्यम से।

(b) आधार–अधिरचना संबंध

मार्क्स समाज का वर्णन दो परस्पर जुड़ी परतों वाले समाज के रूप में करते हैं।

- **आर्थिक आधार** में उत्पादक शक्तियाँ और उत्पादन-संबंध सम्मिलित हैं—प्रौद्योगिकी, श्रम और स्वामित्व।
- **अधिरचना** में राजनीतिक व्यवस्था, कानून, सांस्कृतिक प्रथाएँ, धार्मिक विश्वास, मूल्य, कला और दर्शन सम्मिलित हैं।

आधार वे समग्र परिस्थितियाँ निर्धारित करता है जिनके भीतर अधिरचना विकसित होती है। उदाहरण के लिए, प्रौद्योगिकी या आर्थिक संगठन में परिवर्तन प्रायः सरकारों, कानूनों और सांस्कृतिक विचारों को अनुकूलित होने के लिए विवश करते हैं। साथ ही, अधिरचना सार्वजनिक विश्वासों को आकार देकर और आर्थिक व्यवस्थाओं को स्थिर करके या चुनौती देकर आधार को प्रभावित कर सकती है। इसलिए मार्क्स इस संबंध को अंतःक्रियात्मक मानते हैं, परंतु वे इस बात पर बल देते हैं कि भौतिक आधार सबसे मूलभूत दिशा प्रदान करता है।

(c) इतिहास के चरण

इस ढाँचे का उपयोग करते हुए, मार्क्स ऐतिहासिक चरणों के एक व्यापक क्रम को रेखांकित करते हैं। प्रत्येक चरण काम और संपत्ति को संगठित करने के एक विशेष तरीके को प्रतिबिंबित करता है:

1. **आदिम साम्यवादी समाज**, जहाँ समुदाय संसाधनों को साझा करते हैं और अधिशेष सीमित होता है।
2. **दास समाज**, जो एक कठोर स्वामी–दास संरचना पर निर्मित है।
3. **सामंती समाज**, जो भूमि पर केंद्रित है, जहाँ सामंत कृषि उत्पादन को नियंत्रित करते हैं और कृषि-दास (सर्फ़) श्रम प्रदान करते हैं।

4. **पूँजीवादी समाज**, जो कारखानों के निजी स्वामित्व, मज़दूरी-श्रम और अधिशेष मूल्य के निष्कर्षण से चिह्नित है।

मार्क्स एक भावी चरण—**समाजवाद या साम्यवाद**—की भी कल्पना करते हैं, जहाँ उत्पादक संसाधनों का सामूहिक रूप से प्रबंधन किया जाता है, और वर्ग-विभाजन समाप्त हो जाते हैं। उनके लिए, प्रत्येक संक्रमण तब घटित होता है जब उत्पादक शक्तियाँ पुराने संपत्ति-संबंधों से आगे बढ़ जाती हैं, जिससे परिवर्तन के लिए दबाव उत्पन्न होते हैं।

(d) श्रम की केंद्रीयता

मार्क्स के लिए, श्रम उस चीज़ के केंद्र में है जो हमें मनुष्य बनाती है। श्रम के माध्यम से, लोग विश्व को आकार देते हैं और अपनी सृजनात्मक ऊर्जाओं को अभिव्यक्त करते हैं। परंतु वे तर्क देते हैं कि पूँजीवाद इस सृजनात्मक गतिविधि को श्रमिक के विरुद्ध मोड़ देता है। श्रम के माध्यम से बने उत्पाद नियोक्ता के होते हैं; काम कुछ बाहरी, दोहरावपूर्ण और श्रमिक के आत्म-बोध से कटा हुआ बन जाता है। इसे ही मार्क्स **अलगाव (एलियनेशन)** कहते हैं।

उनके दृष्टिकोण में, मानव मुक्ति के लिए श्रम को एक सार्थक, आत्म-निर्देशित गतिविधि के रूप में पुनर्स्थापित करना आवश्यक है—एक ऐसी गतिविधि जिसमें लोग स्वयं को उस विश्व में प्रतिबिंबित देखते हैं जिसका वे सृजन करते हैं।

6.5 उत्पादन-प्रणालियाँ: शक्तियाँ और संबंध

मार्क्स तर्क देते हैं कि प्रत्येक समाज एक विशिष्ट उत्पादन-प्रणाली पर टिका होता है, जो उत्पादक शक्तियों—जैसे औज़ार, मशीनें, प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक ज्ञान और मानवीय श्रम—और उत्पादन-संबंधों, अर्थात् स्वामित्व, प्राधिकार और श्रम-विभाजन के उन प्रतिरूपों को एक साथ लाती है जो आर्थिक जीवन को संगठित करते हैं। जब उत्पादक शक्तियाँ उस गति से अधिक तेज़ी से विस्तृत होती हैं जिसे मौजूदा सामाजिक व्यवस्थाएँ समायोजित कर सकती हैं—जब नई प्रौद्योगिकियाँ, कौशल या उत्पादक क्षमताएँ पुरानी संपत्ति-संरचनाओं द्वारा रोकी जाती हैं—तो समाज के भीतर तनाव बनने लगते हैं। ये तनाव अंततः संकट उत्पन्न करते हैं और समय के साथ बड़े परिवर्तन या क्रांतियाँ लाते हैं जो उन्नत उत्पादक शक्तियों के लिए बेहतर अनुकूल नए उत्पादन-संबंध स्थापित करती हैं। पूँजीवादी समाजों में, यह प्रक्रिया विशेष रूप से दिखाई देती है: प्रौद्योगिकीय नवाचार उत्पादकता को बहुत बढ़ाता है, परंतु शोषण को भी तीव्र करता है, श्रमिकों को विस्थापित करता है, और मुनाफ़े में उतार-चढ़ाव तथा बार-बार आने वाले आर्थिक संकट उत्पन्न करता है। ये दबाव निजी स्वामित्व पर आधारित व्यवस्था और आधुनिक श्रम के बढ़ते सामूहिक स्वरूप के बीच अंतर्निहित अंतर्विरोध को उजागर करते हैं, एक ऐसा अंतर्विरोध जिसके बारे में मार्क्स का मानना है कि वह ऐतिहासिक रूपांतरण को प्रेरित करता है।

6.6 अधोसंरचना और अधिरचना: कानून, विचारधारा और चेतना

मार्क्स आधार–अधिरचना ढाँचे का उपयोग यह स्पष्ट करने के लिए करते हैं कि कानूनी, राजनीतिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ समाज के आर्थिक संगठन से किस प्रकार उत्पन्न होती हैं और उसके साथ अंतःक्रिया करती हैं। उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-संबंधों से बना आर्थिक आधार वह अंतर्निहित संरचना प्रदान करता है जिसके भीतर कानून, संपत्ति-व्यवस्थाएँ, धर्म, शिक्षा और सांस्कृतिक प्रथाएँ जैसी संस्थाएँ आकार लेती हैं। ये संस्थाएँ प्रायः उन समूहों के हितों को प्रतिबिंबित और स्थिर करती हैं जो आर्थिक संसाधनों को नियंत्रित करते हैं, और मौजूदा व्यवस्थाओं को सामाजिक प्राधिकार तथा वैधता प्रदान करती हैं। साथ ही, वैचारिक व्यवस्थाएँ—नैतिक विश्वासों से लेकर दैनिक सामान्य बोध तक—इन व्यवस्थाओं को प्राकृतिक, स्थायी या सार्वभौमिक रूप से लाभकारी के रूप में प्रस्तुत कर सकती हैं, और इस प्रकार अंतर्निहित सामाजिक संघर्षों को नरम या अस्पष्ट कर सकती हैं। फिर भी मार्क्स अधिरचना को केवल भ्रामक या शक्तिहीन न मानने के प्रति सावधान रहते हैं। कानून, राजनीति, विज्ञान और कला के रूपों की अपनी सापेक्ष स्वायत्तता होती है; वे जन-चेतना को प्रभावित करते हैं, राजनीतिक वाद-विवादों पर प्रभाव डालते हैं और कभी-कभी आलोचना या समाज की वैकल्पिक दृष्टियों के लिए स्थान खोलते हैं। फिर भी, उनकी समग्र दिशा और वे सीमाएँ जिनके भीतर वे कार्य करते हैं, अंततः उस आर्थिक संरचना से जुड़ी रहती हैं जो उन्हें बनाए रखती है।

6.7 मूल्य की अवधारणा

(a) श्रम और मूल्य

मार्क्स मूल्य की अपनी समझ का विकास शास्त्रीय मूल्य के श्रम सिद्धांत पर पुनर्विचार करके और उसे एक ऐतिहासिक रूप से निर्मित सामाजिक संबंध के रूप में प्रस्तुत करके करते हैं। उनके दृष्टिकोण में, मालों को मूल्य इसलिए प्राप्त नहीं होता कि उनमें कोई प्राकृतिक गुण होता है, बल्कि इसलिए कि उनमें मानवीय श्रम अंतर्निहित होता है। प्रत्येक माल का दोहरा स्वरूप होता है: वह उपयोग-मूल्य के रूप में व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और विनिमय-मूल्य के रूप में बाज़ार में एक निश्चित मूल्य रखता है। बाज़ार में विभिन्न मालों को आपस में जोड़ने वाली चीज़ वह श्रम है जो उनका उत्पादन करता है, जिसे सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-समय के रूप में समझा जाता है, अर्थात् प्रचलित औज़ारों, कौशलों और प्रौद्योगिकी के साथ किसी वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक औसत समय। इस प्रकार, मूल्य अमूर्त श्रम का एक रूप बन जाता है जो मालों में भौतिक आकार लेता है, जिससे विभिन्न प्रकार के काम की तुलना और विनिमय संभव होता है।

(b) मुद्रा और मूल्य-रूप

इसके बाद मार्क्स स्पष्ट करते हैं कि मुद्रा वह रूप है जिसके माध्यम से मूल्य दृश्यमान होता है और परिचालित होता है। मुद्रा को एक साधारण सुविधा मानने के बजाय, वे दिखाते हैं कि यह मालों के विनिमय से स्वाभाविक रूप से किस प्रकार विकसित होती है। समाज वस्तुओं के बीच प्रत्यक्ष विनिमय से उन लेन-देनों की ओर बढ़ते हैं जो

सार्वभौमिक समतुल्य के रूप में मुद्रा पर निर्भर होते हैं, और अंततः एक ऐसी व्यवस्था की ओर जिसमें मुद्रा को इस उद्देश्य से निवेश किया जाता है कि वह वृद्धि के साथ लौटे। इस चरण में, मूल्य एक निश्चित मात्रा के रूप में नहीं, बल्कि ऐसी चीज़ के रूप में प्रकट होता है जो गतिशील होती है, विस्तृत होती है और आगे संचय की खोज करती है, जो पूँजी के विशिष्ट तर्क को प्रतिबिंबित करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से, मुद्रा स्वयं मूल्य की अभिव्यक्ति और वाहन बन जाती है।

(c) अधिशेष मूल्य और शोषण

मार्क्स के विश्लेषण का एक प्रमुख घटक अधिशेष मूल्य की उनकी व्याख्या है। जब एक पूँजीपति श्रम-शक्ति खरीदता है, तो दी गई मज़दूरी का उद्देश्य श्रमिक के भरण-पोषण की लागत को पूरा करना होता है। तथापि, कार्य-दिवस के दौरान, श्रमिक अपनी श्रम-शक्ति की लागत से अधिक मूल्य का उत्पादन करता है। यह अतिरिक्त भाग अधिशेष मूल्य बन जाता है, जो मुनाफ़े, लगान और ब्याज का आधार बनता है। मार्क्स इसकी व्याख्या किसी व्यक्तिगत नैतिक विफलता के रूप में नहीं, बल्कि पूँजीवाद के अंतर्गत उत्पादन-प्रक्रिया की एक संरचनात्मक स्थिति के रूप में करते हैं। अधिशेष श्रम और भुगतान किए गए श्रम के बीच का अनुपात यह उजागर करता है कि अधिशेष मूल्य किस सीमा तक उत्पन्न होता है, और यह रेखांकित करता है कि आर्थिक व्यवस्था स्वयं को किस प्रकार बनाए रखती है और विस्तृत करती है।

6.8 मूल्य-रूप और मूल्य पर वाद-विवाद

मार्क्स के मूल्य के विश्लेषण ने व्याख्याओं की एक विस्तृत श्रृंखला को जन्म दिया है, विशेष रूप से तब जब विद्वानों ने यह समझने का प्रयास किया है कि समकालीन पूँजीवादी व्यवस्थाओं में मूल्य किस प्रकार कार्य करता है। सबसे सक्रिय वाद-विवादों में से एक इस बात से संबंधित है कि क्या मार्क्स को मुख्य रूप से श्रम-समय पर आधारित मूल्य की एक शास्त्रीय, मात्रात्मक समझ के माध्यम से पढ़ा जाना चाहिए, या एक "मूल्य-रूप" दृष्टिकोण के माध्यम से जो उन सामाजिक और प्रतीकात्मक रूपों पर बल देता है जिनके माध्यम से मूल्य प्रकट होता है। इस वाद-विवाद का एक उल्लेखनीय नवीनीकरण 2018 में डेविड हार्वे और माइकल रॉबर्ट्स तथा पॉल कॉकशॉट जैसे अर्थशास्त्रियों के बीच एक संवाद के माध्यम से हुआ। उनकी असहमति दर्शाती है कि मार्क्स की मूल्य की अवधारणा एक स्थापित सिद्धांत के बजाय एक जीवंत विश्लेषणात्मक उपकरण बनी हुई है।

(a) हार्वे का पक्ष

हार्वे उन तर्कों पर निर्माण करते हैं जिन्हें उन्होंने अपनी कृति *मार्क्स, कैपिटल एंड द मैडनेस ऑफ़ इकोनॉमिक रीज़न* (2017) में प्रस्तुत किया था। वे रिकार्डो से जुड़े पुराने मूल्य के श्रम सिद्धांत और मार्क्स के व्यापक सिद्धांत के बीच भेद करते हैं, जो उनकी व्याख्या में मूल्य को एक गतिशील सामाजिक प्रक्रिया के रूप में केंद्र में रखता है। हार्वे के लिए, किसी माल में तब तक किसी अंतिम अर्थ में मूल्य नहीं होता जब तक वह बिक न जाए; उसका मूल्य केवल

विनिमय में ही साकार होता है। इसलिए मुद्रा वह विशिष्ट रूप बन जाती है जिसमें मूल्य प्रकट होता है और अपनी गति पूरी करता है। इस व्याख्या के अनुसार, संकट केवल उत्पादन की समस्याओं के कारण नहीं, बल्कि इसलिए उत्पन्न होते हैं क्योंकि मूल्य परिचालित होने या साकार होने में विफल हो सकता है, जिससे उत्पादन से परिचलन और फिर बिक्री के अंतिम कार्य तक जाने वाला चक्र बाधित हो जाता है। हार्वे का दृष्टिकोण मूल्य-विश्लेषण के क्षेत्र को नगरीय स्थानों, भौतिक अवसंरचनाओं, ऋण-व्यवस्थाओं और उपभोग-प्रतिरूपों तक विस्तृत कर देता है, और मूल्य को केवल कारखाने के बजाय पूँजी की संपूर्ण गति की एक विशेषता बना देता है।

(b) रॉबर्ट्स और कॉकशॉट की प्रति-आलोचना

रॉबर्ट्स और कॉकशॉट उसका बचाव करके उत्तर देते हैं जिसे वे मार्क्स के सिद्धांत की मात्रात्मक नींव मानते हैं। वे तर्क देते हैं कि श्रम-समय ही इस बात की एकमात्र सुसंगत व्याख्या बना हुआ है कि अर्थव्यवस्था में मूल्य किस प्रकार उत्पन्न और वितरित होता है। उनके अनुसार, अनुभवजन्य अध्ययन श्रम-आगतों और कीमतों के बीच मज़बूत सहसंबंध दिखाते हैं, जो मूल्य के निर्धारण में श्रम की केंद्रीयता की पुष्टि करते हैं। उनका तर्क है कि हार्वे का दृष्टिकोण मूल्य के रूप और उसके अंतर्निहित सार के बीच के भेद को धुँधला कर देता है, और मापने योग्य श्रम-समय के बिना शोषण या पूँजीवादी उत्पादन की नियमितताओं की व्याख्या करना कठिन हो जाता है। वे हार्वे की इस बात के लिए भी आलोचना करते हैं कि वे विश्लेषणात्मक बल को माँग, उपभोग और बाज़ार में साकार होने की ओर स्थानांतरित करते हैं, जो उनके विचार में न्यून-उपभोगवादी (अंडर-कंज़म्प्शनिस्ट) व्याख्याओं को दोहराने का जोखिम उठाता है, जो स्वयं उत्पादन के भीतर अधिशेष मूल्य के सृजन की मूल प्रणाली की उपेक्षा करती हैं।

(c) केंद्रीय मुद्दे

हार्वे और रॉबर्ट्स–कॉकशॉट के बीच का वाद-विवाद कई मूल प्रश्नों के इर्द-गिर्द घूमता है जो इस बात से संबंधित हैं कि मार्क्स के ढाँचे के भीतर मूल्य को किस प्रकार समझा जाना चाहिए। हार्वे के लिए, मूल्य तब तक कभी पूर्ण नहीं होता जब तक माल वास्तव में बिक न जाए, जिसका अर्थ है कि मूल्य उत्पादन के साथ-साथ उतना ही परिचलन और विनिमय के माध्यम से भी सृजित होता है। इसके विपरीत, रॉबर्ट्स और कॉकशॉट इस बात पर बल देते हैं कि मूल्य पूरी तरह उत्पादन के क्षेत्र में सृजित होता है, और विनिमय केवल इस पहले से उत्पादित मूल्य को अभिव्यक्त करता है। उनकी असहमति मुद्रा की भूमिका तक विस्तृत है: हार्वे मुद्रा को मूल्य-रूप का संघटक मानते हैं, अर्थात् मूल्य केवल मौद्रिक अभिव्यक्ति के माध्यम से ही दृश्यमान और वास्तविक बनता है, जबकि रॉबर्ट्स और कॉकशॉट मुद्रा को मुख्य रूप से उस मूल्य का माप और समतुल्य मानते हैं जिसका उत्पादन श्रम द्वारा पहले ही किया जा चुका है। ये अंतर इस बात को आकार देते हैं कि प्रत्येक पक्ष आर्थिक संकटों की व्याख्या किस प्रकार करता है—हार्वे परिचलन में व्यवधानों और बाज़ार में साकार होने की विफलताओं पर बल देते हैं, जबकि रॉबर्ट्स और कॉकशॉट संकटों का स्थान लाभ की दर के गिरने की प्रवृत्ति में मानते हैं, जो उत्पादन में निहित एक प्रक्रिया है। अंत में, दोनों दृष्टिकोण श्रम-समय की स्थिति पर भिन्न हैं। हार्वे श्रम-समय को पूँजीवाद के संगठन द्वारा आकार दिए गए एक

गुणात्मक सामाजिक संबंध के रूप में देखते हैं, जबकि रॉबर्ट्स और कॉकशॉट इसे एक मात्रात्मक निर्धारक के रूप में देखते हैं जो विभिन्न उद्योगों में कीमतों और मुनाफ़ों के प्रतिरूपों की व्याख्या कर सकता है।

(d) व्यापक महत्त्व

इस चर्चा के केंद्र में मार्क्सवादी सिद्धांत के भीतर दो स्थायी तनाव हैं: क्या मूल्य केवल उत्पादन के क्षेत्र में उभरता है या उसे परिचलन में पूर्णता की आवश्यकता होती है, और अमूर्त श्रम को मापने योग्य श्रम-समय के संबंध में किस प्रकार समझा जाना चाहिए। ये तनाव इस बारे में गहरे प्रश्नों को प्रतिबिंबित करते हैं कि आधुनिक परिस्थितियों में मार्क्स की व्याख्या किस प्रकार की जाए। हार्वे मार्क्स के विश्लेषण को वित्तीय व्यवस्थाओं, ऋण-संरचनाओं, नगरीय विकास और अवसंरचनात्मक जालों तक विस्तृत करते हैं, जिन्हें वे ऐसे स्थलों के रूप में देखते हैं जहाँ मूल्य साकार होता है और कभी-कभी बाधित भी होता है। इस बीच, रॉबर्ट्स और कॉकशॉट औद्योगिक उत्पादन को समस्त मूल्य के आवश्यक स्रोत के रूप में महत्त्व देते हैं और श्रम-समय को केंद्रीय व्याख्यात्मक श्रेणी के रूप में बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देते हैं। दोनों दृष्टिकोण मार्क्सवादी चिंतन के निरंतर विकास में योगदान देते हैं, और यह प्रदर्शित करते हैं कि मार्क्स का सिद्धांत संवाद, पुनर्व्याख्या और अनुभवजन्य संलग्नता के माध्यम से विकसित होता रहता है।

6.9 प्रति-मूल्य, अवमूल्यन और समकालीन पूँजी

अपनी बाद की कृतियों में, डेविड हार्वे समकालीन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में संकट किस प्रकार प्रकट होते हैं, इसकी व्याख्या के लिए प्रति-मूल्य (एंटी-वैल्यू) और अवमूल्यन (डीवैल्यूएशन) की अवधारणाएँ प्रस्तुत करते हैं। प्रति-मूल्य उन बिंदुओं की ओर संकेत करता है जहाँ पूँजी का चक्र बाधित या धीमा हो जाता है, जैसे जब माल गोदामों में बिना बिके पड़ा रहता है, कारखाने निष्क्रिय पड़े रहते हैं, ऋण रुक जाता है, या ऋण-भुगतान विनिमय की पूर्णता को स्थगित कर देते हैं। ये अवरोध मूल्य को बाज़ार में साकार होने से पहले ही रोक लेते हैं, और स्थगित या असाकार पूँजी के क्षेत्र बना देते हैं। इसके विपरीत, अवमूल्यन संभावित मूल्य की उस वास्तविक हानि को दर्शाता है जो तब होती है जब माल, मशीनें, अवसंरचना या वित्तीय परिसंपत्तियाँ बहुत लंबे समय तक निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। हार्वे के लिए, यह प्रक्रिया केवल आकस्मिक नहीं है; यह संचय की गतिशीलता में अंतर्निहित है। पूँजीवाद समय-समय पर मूल्य के विनाश या ह्रास के माध्यम से लाभप्रदता को पुनर्स्थापित करता है—जो ऐतिहासिक रूप से दिवालियापन, श्रम के प्रौद्योगिकीय विस्थापन, अचल-संपत्ति बाज़ार के पतन और व्यापक वित्तीय पतनों में दिखाई देता है, जो नए निवेश-चक्रों के लिए ज़मीन तैयार करते हैं।

यद्यपि आलोचक यह मानते हैं कि हार्वे की शब्दावली मार्क्स की मूल श्रेणियों को खींचकर विस्तृत करती है, फिर भी उनका ढाँचा इक्कीसवीं शताब्दी के पूँजीवाद की उन विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित करता है जिन्हें मार्क्स प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते थे: वैश्विक निवेश-शृंखलाएँ, डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, त्वरित ऋण-सृजन, और सीमाओं

तथा डेटा-जालों के पार पूँजी की गति। यह रेखांकित करके कि इन जटिल क्षेत्रों में मूल्य किस प्रकार रुक सकता है, विलंबित हो सकता है या घट सकता है, हार्वे मार्क्स की इस अंतर्दृष्टि को विस्तारित करते हैं कि पूँजी को स्वयं को बनाए रखने के लिए निरंतर गति में रहना चाहिए। इसलिए उनका विश्लेषण विद्यार्थियों को संकटों को असामान्यताओं के रूप में नहीं, बल्कि ऐसे आवर्ती क्षणों के रूप में समझने का एक तरीका प्रदान करता है जिनके माध्यम से व्यवस्था स्वयं को पुनर्गठित करती है और संचय को पुनः आरंभ करती है।

6.10 संकट और परिवर्तन की मार्क्स की द्वंद्वात्मकता

मार्क्स के लिए, संकट असाधारण विघटन नहीं, बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था में अंतर्निहित तनावों की आवर्ती अभिव्यक्तियाँ हैं। वे उन अंतर्विरोधों से उत्पन्न होते हैं जो दैनिक आर्थिक जीवन को संरचित करते हैं। एक प्रमुख तनाव उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य के बीच है, जहाँ मुनाफ़े की प्राथमिकता सामाजिक आवश्यकताओं पर हावी हो सकती है। दूसरा तब उभरता है जब उत्पादक शक्तियाँ— प्रौद्योगिकी, कौशल, वैज्ञानिक ज्ञान—उन उत्पादन-संबंधों की तुलना में अधिक तेज़ी से आगे बढ़ती हैं जिनके भीतर वे कार्य करती हैं, जिससे समाज जो उत्पादन कर सकता है और उत्पादन को शासित करने वाले संपत्ति-रूपों के बीच असंगति उत्पन्न होती है। तीसरा अंतर्विरोध अधिशेष मूल्य के निष्कर्षण और वितरण को लेकर पूँजी और श्रम के बीच चल रहे संघर्ष में प्रकट होता है। ये दबाव समय के साथ संचित होते जाते हैं, और अति-उत्पादन, गिरती लाभप्रदता, वित्तीय तनाव और अंततः संकट के चक्र उत्पन्न करते हैं।

मार्क्स इस बात पर बल देते हैं कि ऐसे संकट केवल व्यवस्था को बाधित नहीं करते; वे परिवर्तन के अवसर भी उत्पन्न करते हैं। जैसे-जैसे उत्पादक क्षमताएँ विस्तृत होती हैं और सामाजिक जागरूकता गहरी होती है, मौजूदा संबंध अधिकाधिक प्रतिबंधात्मक प्रतीत हो सकते हैं, जिससे संगठन के नए रूपों की संभावना खुलती है। क्रांतियाँ या बड़े सामाजिक रूपांतरण तब घटित होते हैं जब पुरानी व्यवस्थाएँ श्रम, प्रौद्योगिकी या सामूहिक आकांक्षाओं के विकास का समर्थन नहीं कर पातीं। इस अर्थ में, मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद इस विचार को कि पूँजीवाद के गति के पहचाने जा सकने वाले नियम हैं, इस मान्यता के साथ जोड़ता है कि मनुष्य इन संरचनाओं के भीतर कार्य करते हैं, और सामूहिक संघर्ष तथा राजनीतिक निर्णय-निर्माण के माध्यम से परिणामों को आकार देते हैं। इस ढाँचे में, स्वतंत्रता अमूर्त स्वाधीनता नहीं, बल्कि उन सामाजिक परिस्थितियों को नया रूप देने में लोगों की सचेत भागीदारी है जो उनके जीवन को शासित करती हैं।

6.11 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य और समकालीन प्रासंगिकता

A. वेबरवादी आलोचना

वेबर तर्क देते हैं कि केवल आर्थिक वर्ग आधुनिक सामाजिक पदानुक्रमों की व्याख्या नहीं कर सकता। शक्ति **वर्ग**, **प्रतिष्ठा (स्टेटस)** और **दल (पार्टी)** में फैली होती है, जिनमें से प्रत्येक जीवन-अवसरों को अलग-अलग ढंग से

आकार देता है। इस दृष्टिकोण में, पूँजीवाद केवल श्रम का शोषण करके नहीं, बल्कि तर्कसंगत प्रशासन, कानूनी प्राधिकार और नौकरशाही समन्वय के माध्यम से स्वयं को पुनर्गठित करके जीवित रहता है।

B. प्रकार्यवादी आलोचना

प्रकार्यवादी (फ़ंक्शनलिस्ट) दृष्टिकोण से, सामाजिक स्तरीकरण सदैव प्रभुत्व का चिह्न नहीं होता। यह भूमिकाओं का आवंटन करके, प्रोत्साहन उत्पन्न करके और निरंतरता सुनिश्चित करके समाजों को स्थिर भी कर सकता है। पदानुक्रम को अंतर्निहित रूप से शोषणकारी मानने के बजाय, यह परंपरा उसे सामाजिक व्यवस्था के आंतरिक संतुलन के एक अंग के रूप में देखती है।

C. नव-मार्क्सवादी विकास

बीसवीं शताब्दी के सिद्धांतकारों ने शक्ति के नए रूपों का परीक्षण करके मार्क्स की अंतर्दृष्टियों का विस्तार किया:

1. **ग्राम्शी:** सांस्कृतिक प्रभुत्व (हेजेमनी) यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा, मीडिया और धर्म जैसी संस्थाओं के माध्यम से सहमति का निर्माण किस प्रकार किया जाता है।
2. **अल्थूसर:** संरचनावाद विचारधारा को भौतिक के रूप में पुनर्परिभाषित करता है, जो उन तंत्रों में अंतर्निहित है जो पूँजीवादी संबंधों का पुनरुत्पादन करते हैं।
3. **नारीवादी मार्क्सवाद:** लैंगिक श्रम, प्रजनन-संबंधी कार्य और अवैतनिक देखभाल केंद्रीय अंतर्विरोध बन जाते हैं।
4. **पारिस्थितिक मार्क्सवाद:** चयापचयी दरार (मेटाबॉलिक रिफ़्ट) पारिस्थितिक व्यवस्थाओं के साथ पूँजीवाद के विच्छेद को रेखांकित करती है।

मिलकर, ये धाराएँ शास्त्रीय औद्योगिक पूँजीवाद से परे उभरते अंतर्विरोधों को समझने के लिए **आधार–अधिरचना** संबंध की पुनर्व्याख्या करती हैं।

D. इक्कीसवीं शताब्दी की वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रासंगिकता

व्यापक प्रौद्योगिकीय और संगठनात्मक परिवर्तनों के बावजूद, मार्क्स की मूल अंतर्दृष्टियाँ वर्तमान गतिशीलता को आज भी प्रकाशित करती हैं:

- **मूल्य** अभी भी सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-समय पर आधारित है, तब भी जब श्रम डिजिटल जालों, प्लेटफ़ॉर्म-कार्यों और स्वचालित प्रक्रियाओं में वितरित हो।
- **संकट** अभी भी अति-संचय, वित्तीयकृत विस्तार और अवमूल्यन की परवर्ती लहरों से उत्पन्न होते हैं।

- **वर्ग-संघर्ष** बना हुआ है, जो अब नए पात्रों के माध्यम से प्रकट होता है: प्लेटफ़ॉर्म निगम, डेटा एकाधिकार, गिग-आधारित श्रमिक, एल्गोरिथमिक प्रबंधन और अस्थिर वैश्विक पूँजी-प्रवाह।

इस परिवर्तित परिदृश्य पर विस्तृत मार्क्स का ढाँचा एक पुराने कम्पास की तरह कार्य करता है जो बदलते नक्शों वाले विश्व में भी दिशा खोजने में सक्षम है।

6.12 विश्लेषणात्मक सिंहावलोकन

अवधारणा	मार्क्स में अर्थ	आज प्रासंगिकता
ऐतिहासिक भौतिकवाद	सामाजिक अस्तित्व चेतना से पहले आता है; उत्पादन संरचना को निर्धारित करता है	वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकीय-आर्थिक परिवर्तन की व्याख्या करता है
उत्पादन-प्रणाली	उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-संबंधों की एकता	आर्थिक संक्रमणों (औद्योगिक ⟶ उत्तर-औद्योगिक) को रूपरेखा देता है
मूल्य और अधिशेष	मूर्त अमूर्त श्रम, जिसका निष्कर्षण मज़दूरी-संबंध के माध्यम से होता है	डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों में छिपे शोषण को उजागर करता है
अलगाव	उत्पाद, प्रक्रिया, आत्म और समुदाय से पृथक्करण	थकान (बर्नआउट), अनिश्चितता और वस्तुकृत पहचान के रूप में पुनः प्रकट होता है
संकट	मूल्य के विनाश के माध्यम से अंतर्विरोधों का आवधिक समाधान	वित्तीय पतनों और प्रौद्योगिकीय अप्रचलन में दिखाई देता है
वर्ग-संघर्ष	ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रेरक इंजन	सामाजिक आंदोलनों और श्रमिक राजनीति में पुनः अभिव्यक्त

6.13 सारांश

इस अध्याय में, हमने समझा कि मार्क्स ने हेगेल की द्वंद्वात्मकता को आत्मा के एक अमूर्त विकास से समाज के एक भौतिकवादी विज्ञान में किस प्रकार रूपांतरित किया, जो वास्तविक जगत की परिस्थितियों पर केंद्रित है। हमने देखा कि ऐतिहासिक भौतिकवाद इतिहास की व्याख्या उत्पादन-प्रणालियों के एक क्रम के रूप में करता है, जिनमें से प्रत्येक उत्पादक शक्तियों और सामाजिक संबंधों के बीच अंतर्विरोधों द्वारा आकार लेती है, और प्रगति इन तनावों के समाधान के माध्यम से होती है। श्रम मूल्य की नींव के रूप में उभरा, और पूँजीवाद के अंतर्गत मानवीय सृजनात्मकता अलगावग्रस्त और वस्तुकृत हो जाती है, तथा काम के उत्पाद मालों का रूप ले लेते हैं जो उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य को जोड़ते हैं। हमने अन्वेषण किया कि मूल्य किस प्रकार मुद्रा द्वारा मध्यस्थित एक सामाजिक संबंध है, जो मालों की बिक्री के माध्यम से साकार होता है, और अधिशेष मूल्य किस प्रकार मुनाफ़े और

शोषण का सार बनता है। पूँजीवाद में संकट उत्पादन और साकार होने के बीच के संघर्षों से, तथा संचय और अवमूल्यन की प्रक्रियाओं से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं, जो व्यवस्था की अंतर्निहित अस्थिरताओं को रेखांकित करते हैं। अध्याय ने समकालीन वाद-विवादों का भी परीक्षण किया, जिनमें डेविड हार्वे, माइकल रॉबर्ट्स और पॉल कॉकशॉट के बीच के वाद-विवाद सम्मिलित हैं, जो दर्शाते हैं कि मार्क्स का मूल्य सिद्धांत आधुनिक पूँजीवादी संरचनाओं के विश्लेषण में गतिशील और प्रासंगिक बना हुआ है। अंत में, हमने पहचाना कि मार्क्स की अंतर्दृष्टियाँ असमानता, प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, वैश्विक पूँजी-प्रवाह और वर्ग-संघर्ष जैसे समकालीन मुद्दों को आज भी प्रकाशित करती हैं, और यह दर्शाती हैं कि उनकी आलोचना, यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न हुई, आधुनिक विश्व के अंतर्विरोधों और रूपांतरणों को समझने के लिए स्थायी उपकरण प्रदान करती है।

6.14 शब्दावली

पद	परिभाषा
ऐतिहासिक भौतिकवाद	वह सिद्धांत कि भौतिक उत्पादन और वर्ग-संबंध समाज की संरचना और विकास को निर्धारित करते हैं।
उत्पादन-प्रणाली	उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-संबंधों का वह संयोजन जो किसी ऐतिहासिक युग को परिभाषित करता है।
उत्पादक शक्तियाँ	उत्पादन में प्रयुक्त औज़ार, मशीनरी, तकनीकें और मानवीय श्रम-शक्ति।
उत्पादन-संबंध	उत्पादन के स्वामित्व और नियंत्रण के इर्द-गिर्द बने सामाजिक संबंध।
अधोसंरचना / आधार	समाज की आर्थिक नींव जो अधिरचना को आकार देती है।
अधिरचना	आर्थिक आधार द्वारा अनुकूलित कानून, राजनीति, संस्कृति और विचारधारा।
श्रम-शक्ति	श्रमिक की काम करने की क्षमता, जिसे पूँजीवाद के अंतर्गत एक माल के रूप में बेचा जाता है।
मूल्य	मालों में अंतर्निहित सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम-समय।
अधिशेष मूल्य	पूँजीपतियों द्वारा मुनाफ़े के रूप में हस्तगत किया गया अवैतनिक श्रम।
अमूर्त श्रम	मानवीय श्रम, जिसे उसके ठोस रूप से रहित करके विशुद्ध रूप से प्रयास के व्यय के रूप में देखा जाता है।
अलगाव	पूँजीवाद के अंतर्गत उत्पाद, प्रक्रिया, आत्म और दूसरों से श्रमिकों का विलगाव।
अवमूल्यन / प्रति-मूल्य	संकटों में पूँजी-परिचलन बाधित होने पर मूल्य की हानि या उसका स्थगन।
न्यून-उपभोगवाद	यह सिद्धांत कि संकट अपर्याप्त उपभोक्ता माँग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

लाभ की गिरती दर	मार्क्स का यह सिद्धांत कि पूँजी-संचय लाभप्रदता में दीर्घकालिक गिरावट को प्रेरित करता है।

6.15 अभ्यास प्रश्न

A. लघु उत्तरीय / वैचारिक

1. "ऐतिहासिक भौतिकवाद" को परिभाषित कीजिए। यह हेगेल के आदर्शवाद से किस प्रकार भिन्न है?
2. उत्पादन-प्रणाली के मुख्य घटक कौन-से हैं?
3. उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-संबंधों के बीच अंतर की व्याख्या कीजिए।
4. मार्क्स श्रम को "मनुष्य का सार" क्यों बताते हैं?
5. मालों में उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य किस प्रकार संबंधित हैं?
6. श्रम और श्रम-शक्ति के बीच भेद कीजिए।
7. अधिशेष मूल्य क्या है और यह किस प्रकार उत्पन्न होता है?
8. मूल्य की हार्वे और रॉबर्ट्स की व्याख्या के बीच दो अंतर लिखिए।
9. "चेतना को निर्धारित करने वाला सामाजिक अस्तित्व" से मार्क्स का क्या अभिप्राय है?
10. किस अर्थ में संकटों को पूँजीवाद के लिए आवश्यक माना जा सकता है?

B. विश्लेषणात्मक / निबंधात्मक

1. मार्क्स द्वारा हेगेल की द्वंद्वात्मकता के उलटाव और सामाजिक सिद्धांत के लिए उसके महत्त्व का परीक्षण कीजिए।
2. ऐतिहासिक परिवर्तन की कुंजी के रूप में उत्पादन-प्रणाली की संरचना और गतिशीलता की चर्चा कीजिए।
3. विचारधारा और कानून को आकार देने में आधार और अधिरचना के बीच संबंध का मूल्यांकन कीजिए।
4. "मूल्य कोई वस्तु नहीं, बल्कि एक सामाजिक संबंध है।" *कैपिटल* के संदर्भ में इस दावे की व्याख्या कीजिए।
5. रिकार्डो के मूल्य के श्रम सिद्धांत की तुलना मार्क्स की मूल्य-रूप की अवधारणा से कीजिए।
6. मूल्य सिद्धांत पर डेविड हार्वे और माइकल रॉबर्ट्स के बीच 2018 के वाद-विवाद का विश्लेषण कीजिए। यह आधुनिक पूँजीवाद के बारे में क्या उजागर करता है?

7. पूँजीवादी व्यवस्था के स्व-नियमन में अवमूल्यन और संकट की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
8. डिजिटल या वित्तीयकृत अर्थव्यवस्था में मार्क्स के मूल्य सिद्धांत की समकालीन प्रासंगिकता का आकलन कीजिए।

6.16 अतिरिक्त पठन सामग्री

- **कार्ल मार्क्स,** *इकोनॉमिक एंड फ़िलॉसॉफ़िक मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ़ 1844*
- **कार्ल मार्क्स,** *प्रीफ़ेस टू ए कॉन्ट्रिब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ़ पॉलिटिकल इकोनॉमी* (1859)
- **कार्ल मार्क्स,** *कैपिटल* खंड I – III (विशेष रूप से भाग I और भाग III)
- **फ़्रेडरिक एंगेल्स,** *सोशलिज़्म: यूटोपियन एंड साइंटिफ़िक*
- **डेविड हार्वे,** *मार्क्स, कैपिटल एंड द मैडनेस ऑफ़ इकोनॉमिक रीज़न* (2017)
- **माइकल रॉबर्ट्स,** *द लॉन्ग डिप्रेशन* (2016)
- **पॉल कॉकशॉट और एलिन कॉटरेल,** *क्लासिकल इकोनॉमिक थ्योरी एंड द लेबर थ्योरी ऑफ़ वैल्यू*
- **आर. रॉसडोल्स्की,** *द मेकिंग ऑफ़ मार्क्स'स "कैपिटल"*
- **टी. बॉटमोर**, *मार्क्सिस्ट सोशियोलॉजी*
- **डायन एल्सन,** "द वैल्यू थ्योरी ऑफ़ लेबर" (1979)
- **पीट ग्रीन**, "डिबेटिंग वैल्यू थ्योरी: हार्वे एंड हिज़ क्रिटिक्स" (2018)